CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्य मकरन्द

करुणापति त्रिपाठी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्य मकरन्द

करुणापति त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नं. ३५८

हिन्दी साहित्य

हि. ६३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्य-मकरंद

(उत्तर माध्यमिक कक्षाओं के लिए)

संग्रहकर्त्ता
करुणापति त्रिपाठी
एम० ए०, व्याकरणाचार्य,
प्राध्यापक हिन्दी-विभाग,
हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
इलाहाबाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
इलाहाबाद ।

मूल्य २।)

मुद्रक
अमलकुमार बसु,
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
बनारस-ब्रांच ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो शब्द

प्रस्तुत कविता-संग्रह उन विद्यार्थियों के निमित्त निर्मित हुआ है जो पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में हिन्दी-कविता और कवियों का सामान्य परिचय प्राप्त करके आगे बढ़ रहे हैं। योग्यता-क्रम से अब विभिन्न काव्य-निर्माताओं की बहुमुखी कृतियों और उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना आवश्यक होना चाहिए। इसलिए यहाँ प्रतिनिधि कवियों की व्यक्तित्व परिचायक रचनाओं को ही संगृहीत किया गया है—पर पात्रों की योग्यता का पूरा विचार कर के, न सरल और न कठिन। माध्यमिक कक्षा के विद्यार्थियों के लिए मध्यम वर्ग की कविताएँ ही उचित हैं। यदि कहीं प्रसंगप्राप्त कोई उक्ति या अभिव्यंजना कुछ दुरूह मालूम पड़ा है वहाँ अर्थ-प्रकाशन की पूरी व्यवस्था कर दी गई है, जिसमें विद्यार्थी को पढ़ने और अध्यापक को पढ़ाने में कोई अवरोध न हो। कविताओं को चुनने में जहाँ एक ओर नए प्रसंगों और प्रतिनिधि-स्थलों के संग्रह का ध्यान रखा गया है वहीं कोई आवश्यक और सुन्दर कृति केवल इसलिए नहीं छोड़ दी गई कि वह साधारणतः अन्य अनेक लोग अपने संकलनों में दे चुके हैं।

आरंभ में कविता का ऐतिहासिक विकास-क्रम दे दिया गया है और अंत में कठिन शब्दों का अर्थ ही केवल नहीं दिया गया वरन् सौन्दर्य-विधायक और आवश्यक सभी प्रकार की बातों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्पष्ट कर देने का पूरा उद्योग हुआ है। संग्रह में जिन कवियों को रखा गया है उनके संक्षिप्त जीवन-वृत्त के साथ ऐसी आलोचना भी दे दी गई है जिसमें कृतिकार की रचना—सम्बन्धी प्रमुख विशेषताएँ साफ समझ में आ जाएँ।

करुणापति त्रिपाठी

हिन्दी-विभाग,
हिन्दू विश्वविद्यालय काशी।
९-१-५२

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी-कविता का विकास-क्रम

जीवन और जगत् के साथ साहित्य का अन्योन्य सम्बन्ध है। ऐसी अवस्था में एक का प्रभाव दूसरे पर अवश्य पड़ता है। समय की गतिविधि के अनुरूप जब एक में परिवर्त्तन होता है तो तदनुरूप प्रतिक्रिया दूसरे में भी होती है। इसीलिए साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन का आधार जगत् का परिवर्त्तन है; और जगत् के परिवर्त्तन का तात्पर्य है—जीवन के आधारभूत सिद्धान्तों अथवा मान्यताओं में उतार-चढ़ाव। हमारे सामान्य जीवन में जब किसी प्रकार की नूतनता प्रवेश पाती है तब उसके अनुसार हमारी आन्तरिक भावनाओं, विचारों और क्रिया-कलापों में भी नवीनता के स्वरूप लक्षित होने लगते हैं। हमारे आदर्श, आकांक्षाएँ और चिन्तना में भी नई लहर और नवीन भंगिमा दिखाई पड़ने लगती है। एक प्रकार से हमारी सम्पूर्ण बौद्धिक बनावट और सांस्कृतिक संघटन में इस परिवर्त्तन का प्रभाव भर उठता है। देश काल अथवा समाज की इसी प्रभाव-स्थिति के साथ साहित्य की संगति और सामंजस्य का निरूपण साहित्य के इतिहास का मुख्य विषय है। अतएव देश के इतिहास में जिस तरह शासन, परंपरा और सामाजिक गतिविधि के विचार से एक काल का नामकरण हो जाता है उसी तरह उसके प्रभाव की समष्टि को वहन करनेवाले साहित्य का भी काल-निर्णय होता है। इस पद्धति के आधार पर हिन्दी-साहित्य का विभाजन चार भागों में किया जा सकता है :—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि काल—संवत् १०५० से १३७५ तक।

पूर्व मध्यकाल—संवत् १३७५ से १७०० तक।

उत्तर मध्यकाल—संवत् १७०० से १९०० तक।

आधुनिक काल—संवत् १९०० से आज तक।

उक्त चारों कालों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। उनमें रचना-शैली और विषय का पार्थक्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसी पार्थक्य के कारण पृथक् संज्ञाएँ निर्धारित की गई हैं। आदि काल अथवा वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीति अथवा शृंगार अथवा अलंकरण काल और आधुनिक काल। इन विभिन्न कालों में विषय और रचना-पद्धति के विचार से अनेक प्रकार की भेदकता मिलती है। भेदाभेद की सम्पूर्ण विशेषताओं का इतिहास-क्रम से तारतमिक कथन ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। हिन्दी साहित्य के अनेक प्रामाणिक इतिहास तैयार हो चुके हैं जिनमें प्रमुख मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास और अयोध्यासिंह उपाध्याय के लिखे इतिहास हैं। इनके अतिरिक्त काल और प्रवृत्ति विशेष के आधार पर भी अलग-अलक अनेक सुन्दर कृतियाँ अभी तक प्रकाशित हो चुकी हैं और इस समय भी निरन्तर लिखी-पढ़ी जा रही हैं।

यों तो जहाँ तक हिन्दी-साहित्य और भाषा के आरम्भ का प्रश्न है उस विषय में सामान्य मत तो वही है जिसका स्थापन पं० रामचन्द्र शुक्ल कर गए हैं। प्राकृत भाषाओं के पर्यवसान काल में विविध अपभ्रंशों का प्रयोग साहित्य के क्षेत्र में चल रहा था। प्राकृत की गाथाओं की तरह अपभ्रंश के दोहे प्रचलित हो गए थे और धर्म-मूलक विषयों के अतिरिक्त उसमें शृंगार और वीर रस की फुटकल रचनाएँ चल रही थीं। इस समय की प्रयुक्त होनेवाली भाषा से ही हिन्दी का रूप गठित हुआ। आगे चलकर, जिस समय राज-रियासतों की परम्परा चली उस समय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजाश्रित कवियों में ऐसी समानताएँ मिलीं कि उन्हें एक वर्ग की संज्ञा दी गई—वीरगाथा अथवा रासो, जैसे—पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो और बीसलदेव रासो। इन सबों में विषय और भाषा-शैली का ऐसा साम्य दिखाई पड़ता है कि अवश्य ही उनका एक भेद अलग हो जाता है। साधारण रूप में तो इनमें यही रहता है कि 'राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन' उत्साहमयी वाणी में करे। युग के अनुरूप यह बात थी इसलिए उमंग-उद्दीपन में बड़ा योग मिला। इन रासोकृतियों का रूप अवश्य ही संदिग्ध था और कवि द्वारा प्रयुक्त वाणी-विलास में भी अपभ्रंश और प्राकृत का पर्याप्त पुट था।

इस समय अपभ्रंश के प्रवाह में चलकर मिथिला के कोकिल विद्यापति ने जहाँ एक ओर 'कीर्तिलता' का निर्माण किया, वहीं भागवत से अथवा जयदेव के माध्यम से प्राप्त पद्धति पर अनेकानेक गेय पदों की रचना भी की। मधुर भावों की यह पदावली साहित्य की अनूठी चीज है और हिन्दी की कविता-शैली के लिए ऐतिहासिक महत्त्व से पूर्ण हैं। इसमें साहित्य है और उसकी परंपरा विचित्र रूपों में चली दिखाई पड़ती है। साहित्य के क्षेत्र से पृथक् बोलचाल में जो भाषा प्रयुक्त हो रही थी उसमें खड़ी बोली के प्रयोग चल रहे थे। सामान्य जनता के व्यवहार में आनेवाले मनोरंजक ढंग से खुसरो ने तत्कालीन बोली में अपनी पहेलियाँ लिखीं। दूसरी ओर देश काल की आकांक्षाओं से संकेत पाकर संत कबीर ने समाज के सुधार की बात उठाई। बौद्ध-धर्म के ध्वसांवशेष विभिन्न सम्प्रदायों से तथ्य-संग्रह कर कबीर और उनके अन्य अनुयायी एक ओर साधनापरक अनुभूतियों का कविता की भंगिमा से कथन और दूसरी ओर समाज की अनेक दुर्बल नीतियों को हटाने का उद्योग करने लगे। इन संतों में साहित्य का यथार्थ स्वरूप उतना स्फुट नहीं हुआ जितना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साम्प्रदायिक अनुभूतिवाद अथवा सुधारवाद का। इस पद्धति पर काम करनेवालों में कबीर, रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास प्रभृति अनेक संत साधु हुए। इन्हें निर्गुण-पंथ के प्रमुख उपदेशक मानना चाहिए। इनकी भाषा में विषय के अनुरूप कहीं सांकेतिकता का प्राधान्य है, कहीं बोलचाल की व्यावहारिकता और अक्खड़पन का। इस पंथवालों में दार्शनिक चिंतन की किसी सुव्यवस्थित पद्धति की ढूँढ़-खोज निरर्थक है, क्योंकि इस अभिप्राय को लेकर वे नहीं चले थे। उनका लक्ष्य था तात्कालिक धर्मगत विषमता के कारण उत्पन्न सामाजिक कटुता का उन्मूलन और इस क्षेत्र में अवश्य ही उन्हें अपने युगमें सफलता मिली।

इन निर्गुनिए सुधारकों से मूलतः पृथक् उन सूफ़ी कवियों का एक वर्ग था जिसने राजा-रानियों की प्रेम-गाथाएँ लिखकर सामान्य जनता के हृदय तक पहुँचने की चेष्टा की। प्रत्यक्षतः तो वे 'प्रेम-कथा'—लोक भाषा में कहते थे पर व्यंजना उससे अलौकिक प्रेम की भी होती चलती थी। वस्तुतः इस वर्ग के कवियों में कविता की विशेषताओं का विकास अच्छी तरह हुआ, क्योंकि प्रचलित मतमतान्तरों के झगड़े से ये लोग अलग रहे और जनता के सामान्य भावों को अपनाने की ही आकांक्षा उनमें अधिक दिखाई पड़ी। यों तो इनके प्रेम-प्रबंधों में भी, यत्र-तत्र हठयोग और रसायन की चलती बातें मिलती हैं पर कथा की धारा में वे घुलमिल कर ही चली हैं। इसलिए उनमें वह रूक्षता अथवा एकांगिता नहीं घुस पाई जो कबीर आदि में दिखाई पड़ी थी। प्रेम-मार्गी कवियों में कुतुबन, मंझन, मलिक मुहम्मद जायसी, उसमान, शेख नबी प्रमुख थे। मूलतः कविता की यह परिपाटी भी एक कालिक ही बनकर रह गई। काव्य-रचना के क्षेत्र में उसकी परंपरा चली नहीं। अवश्य ही कुछ दिनों तक हिन्दू-मुसलमान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की कटुता दूर करने और सामाजिक ऐक्य-स्थापन में उसका काव्यात्मक योग अच्छा चला।

निर्गुण और प्रेम मार्गवाले संप्रदायों से सर्वथा पृथक् काव्य-सर्जना का वस्तुतः शुद्ध भारतीय और सांस्कृतिक स्वरूप सगुण भक्त कवियों में दिखाई पड़ा। शांकर अद्वैतवाद की अगोचरता, व्यवहार के क्षेत्र में प्रायः पंगु सी रह गई। बौद्धिक चिंतना और साधना-परक अनुभूतिवाद के रूप में उसका प्रसार हुआ अवश्य पर सामान्य जनता के व्यापक क्षेत्र में उसका प्रवेश संभव नहीं था। इसलिए रामानुजाचार्य (सन् १०१६) और माध्वाचार्य (सन् १२००) ने आसमान में टँगे निराकार 'ब्रह्म' को नाना गुण-धर्मों से सुसज्जित करके और उनकी शास्त्रीय व्यवस्था निरूपित कर उसे सामान्य उपासना-भूमि पर ला खड़ा किया। उन लोगों की सगुण-भावना की पद्धति में अपने को ढालने की योग्यता पाकर जन-मन अधिक प्रभावित हुआ और भक्ति के व्यवहार-प्रधान रूप का विस्तार सरल हो गया। यही कारण है कि इस पद्धति पर चलनेवाली भक्ति की जो धारा समाज के हृदय को अधिकाधिक आन्दोलित कर सकी और हिन्दी कवियों की वाणी का माध्यम लेकर आरम्भ से चली वह युग-युग को रसमय बनाती, अपनी परंपराओं का भव्य प्रासाद खड़ा करती आधुनिक युग तक अक्षुण्ण चली आई है। वास्तव में काव्य-निर्माण की यही सच्ची और प्रतिनिधि धारा है जिसका हमारे जीवन और हमारी संस्कृति से अटूट संबंध बना रहा है और आज भी हम उससे पृथक् नहीं दिखाई पड़ते।

सगुणोपासना की इसी परंपरा में और इसी भावभूमि पर ईसा की पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में रामानन्द और बल्लभाचार्य ने अपनी-अपनी सगुण भक्ति का निर्माण किया। अवश्य ही इन लोगों ने अपने ढंग के कुछ परिष्कार उपस्थित किए और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदनुरूप उपासना की अपनी विशिष्ट पद्धति निरूपित की। कालक्रम से इन्हीं की प्रेरणाओं को ग्रहण कर हिन्दी के दो अमर और प्रतिनिधि कवि तुलसी और सूर सामने आए। राम और कृष्ण के ये दोनों परम भक्त कवि हुए और अपने इष्टदेवों के इतिवृत्त को लेकर नाना रूपों से उसका उपयोग किया। तुलसी की भक्ति में सर्वांगीण पूर्णता है। उसमें लोकधर्म की मर्यादा के साथ कर्म, ज्ञान और उपासना का अपूर्व सामंजस्य मुखरित मिलता है। उनकी भक्ति का स्वरूप धर्ममूलक है। इसीलिए राम की धर्मालंकृत नानारूपता को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया। कृष्णोपासक कवियों में लोक-संग्रह के प्रति कोई ललक नहीं दिखाई पड़ती। इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध को आदर्श मानकर कृष्ण की मधुर-भावना से पोषित कोमल वृत्तियों को ही अपनी रचनाओं में उद्घाटित किया है और भिन्न-भिन्न लीलाओं का हृदयस्पर्शी मधुरिमा के साथ गेय पदों में चित्रण किया है। इस वर्ग के सर्वश्रेष्ठ महाकवि सूरदास में शृंगार और वात्सल्य रसों की जैसी पूर्णता मिलती है वैसी विश्व-साहित्य में असम्भव है। इस प्रकार तुलसी की भक्ति-भावना में लोक-संग्रह और जीवन के नानात्व का प्रसार दिखाई पड़ता है और सूरदास में जीवन के मधुर पक्षों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यंजना ही मुख्य आधार है।

तुलसी और सूर के द्वारा स्थापित की गई काव्य-सर्जना की पद्धति अपनी तन्मयता को बटोरे, एक रस और एकोन्मुख होकर इतिहास के सारे विस्तार का अतिक्रमण करती हुई आज-तक साहित्य और समाज में जीवन का संचार करती मिलती है। इन महाकवियों के पवित्र हृदयों से निकल कर भाव और प्रतिभा की जो सुरसरिता उस समय बही वह संस्कृति को संसरणशील बनाती, कविता-वनिता की संपूर्ण साज-सज्जा का संयोजन करती आज तक जनमन के रंजन और परितोष का कारण बनी है। आधुनिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कविता की राम और कृष्ण-विषयक रचनाएँ इस परम सत्य के प्रकाशन में योग दे रही हैं और उद्घोषित कर रही हैं कि हिन्दी-साहित्य के प्राचीन और वर्तमान युगों को एक सूत्र में ग्रथित करनेवाली मूल परंपरा और आधार-भित्ति एक ही है। थोड़े में कहा जा सकता है कि जिन विषयों और पद्धतियों का उन लोगों ने वरदान दिया था उनका मंगल-विधायक रूप हिन्दी कविता में आज भी गृहीत है और उससे समाज शक्ति-संचय कर रहा है।

आगे चलकर समय की गतिविधि में परिवर्तन होने के कारण काव्य रचना का स्वरूप बदलने लगा और भक्ति के एकांगी प्रवाह के कारण जो अवसाद पैदा हुआ उसकी प्रतिक्रिया ने विकृत रूप धारण किया। राम और कृष्ण—नाम को तो वही रहे पर माध्यम बन गए शास्त्र-चिंतन के और भक्ति रस का आकर्षण तो समाप्त-सा हो गया। उसके स्थान पर कवियों की प्रवृत्ति, धीरे-धीरे काव्य-शास्त्र-संबंधी विवेचना की ओर बढ़ी और कविजन संस्कृत के काव्यांग-निरूपण के प्रसार में से अपनी अभिरुचि के अनुसार अलंकार, रस, शब्दशक्ति आदि विभिन्न रीतियों की कुछ बातें लेकर पद्य रचने लगे। परिपाटी यह चली कि आरम्भ में परिभाषा विषयक कुछ अस्फुट संकेत करने के बाद स्वनिर्मित उदाहरण उपस्थित करने में ही कवि का अपनापन दिखाई पड़ता था। काव्य-निर्माण की इस प्रवृत्ति और परंपरा के कारण ही इस युग को रीतिकाल अथवा अलंकृत-काल की संज्ञा दी जाती है। यहाँ रीति और अलंकार को शास्त्रीय अर्थ में न लेकर सामान्य और व्यावहारिक अर्थ में ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि संस्कृत के अलंकार शास्त्र (जिसके अन्तर्गत रस, अलंकार, रीति आदि विभिन्न सभी वादों का एकत्रीकरण मानना चाहिए) को आधार मानकर किसी व्यवस्थित परिपाटी से हिन्दी के किसी कवि ने उस समय काव्यांग निरूपण नहीं किया। सभी ने शास्त्र-विषयक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किसी अंग को लेकर कविता लिखने का अपना-अपना ढंग निकाला, जिसमें सिद्धांत का सामान्य सा स्पर्श भले ही मिल जाता था पर मुख्य रहती थी कवि-विशेष की अपनी रचना ही। परिणाम इसका यह हुआ कि इस युग में न तो शास्त्र की ही सम्यक् मीमांसा हो पाई और न उच्च कोटि का काव्य ही निर्मित हो सका।

यों तो पहले कृपाराम, मोहनलाल मिश्र, करनेस कवि और केशवदास आदि ने इस प्रकार की रचनाओं का श्रीगणेश किया था, पर रीति-ग्रंथों की रचना की अखंड परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली। फिर तो निरन्तर एक से एक प्रौढ़ और कुशल शिल्पी सामने आए। इनमें—बेनी, महाराजा जसवंतसिंह, बिहारी मतिराम, भूषण, कुलपति-मिश्र, कालिदास त्रिवेदी, देव, सूरति मिश्र, श्रीपति, भिखारीदास, तोषनिधि, रसलीन, दूलह, बेनीबंदीजन, बेनी प्रवीन, करन कवि, पद्माकर, ग्वाल कवि, प्रतापसाहि—रीतिकालीन परंपरा के प्रतिनिधि काव्य-सर्जक हुए। पर ये लोग आचार्य पदवी के अधिकारी नहीं कहे जा सकते क्योंकि काव्य की आधार-शिलाओं की मीमांसा इनकी मुख्य देन नहीं है। मूलतः ये सभी उत्तम कोटि के रसिक और कवि थे;—भले ही काव्य-शास्त्र अथवा उसके विविध उपांगों का सामान्य सहारा ग्रहण कर लिया था।

रीति का पल्ला पकड़कर चलनेवालों के अतिरिक्त भी श्रेष्ठ कवियों के दो वर्ग उस समय थे जो रीति-विषयों—नायिका-भेद, रस, अलंकार, शब्द-शक्ति आदि के लक्षण नहीं लिखते थे। एक वे थे जो स्वतंत्र ढंग से शृंगार-संबंधी विविध प्रकार की अनुभूतियों को चमत्कारपूर्ण उक्ति-भंगिमा के साथ अभिव्यंजित करते थे। दूसरा वर्ग नीति संबंधी और भक्ति-ज्ञान-विषयक बातों को लेकर फुटकल पद्य लिखा करता था। रसखान, घनानन्द, आलम, ठाकुर, बोधा, पजनेस, द्विजदेव आदि प्रथम प्रकार के कवियों में हैं और वृंद,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गिरधर, घाघ, वैताल आदि को दूसरे प्रकार में समझना चाहिए। इन्हें सूक्तिकार भी कहा जा सकता है क्योंकि साधारणतः इनमें तथ्य-निवेदन ही अधिक है।

आधुनिक काल में भी कुछ दूर तक रीतिकालीन विषय-विस्तार और परंपरा हो चली थी पर धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन प्रवेश पाते गए। अँगरेजी राज्य के स्थापित होते ही शिक्षा का प्रसार बढ़ा और नवागता जाति के सम्पर्क में आने के कारण भारतीयों में भी अपने स्वत्वाधिकारों के प्रति एक प्रकार का जागरण उत्पन्न हुआ। साथ ही गद्य-साहित्य की सर्जना ने भी इस दशा में सहायता की। लिखनेवालों का सारा ध्यान अभी तक केवल कविता की ओर था पर गद्य के व्यापक क्षेत्र के सामने आते ही अधिक कृतिकार तो एक रस होकर उसी ओर झुक गए। इससे कविता का एकाधिपत्य कुछ तो यों ही कम हो गया, और जो चला भी उसमें जीवन से व्यवहारतः सम्बद्ध विषयों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा। अभी तक जो केवल रीति और शृङ्गार तक ही लोगों की दृष्टि पहुँच पाती थी वह अब व्यापक होने लगी। जीवन और जगत् के दैनिक एवं व्यावहारिक पक्षों की ओर भी कभी-कभी कवि लोग ताकने लगे।

यों तो प्रतापसाहि तक आते-आते रीति की रूढ़िवादी परम्परा और शृङ्गार की सारी साज-सज्जा सिकुड़ने-सी लगी थी पर फिर भी अभी बू-बास वही चल रही थी और काशी में सेवक कवि, रीवाँ-नरेश, महाराज रघुराजसिंह, सरदार, लछिराम, गोविन्द गिल्ला भाई आदि अनेक प्रसिद्ध कवि अभी भी पीछे ताकते हुए आगे चल रहे थे। भारतेन्दुजी के और उनके मण्डल-वाले अन्य कवि भी साधारणतः प्राचीन पद्धति पर ही कहते-सुनते चल रहे थे। पं० प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघनजी, ठाकुर जगमोहन-सिंह, पं० अम्बिकादत्त व्यास, बख्शी हंसराज, नकछेद तिवारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय की कविताओं में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का स्वरूप देखा जा सकता है। इन लोगों की समस्यापूर्तिवाली परम्परा का निर्वाह तो अबाध रूप से आगे भी चलता ही रहा। जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', पं० श्रीधर पाठक, बा० जगन्नाथदास रत्नाकर, पं० नाथूराम शंकर शर्मा, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', लाला भगवान 'दीन', पं० रामचन्द्रशुक्ल, श्री वियोगी हरि, पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि अनेक अच्छे कवि बीसवीं शताब्दी के ब्रजभाषा-काव्य के सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त आज भी न जाने कितने सुन्दर कृतिकार, ध्वंसावशेष की भाँति, कोने-अँतरे में पड़े ब्रजभाषा के कवित्त-सवैये में अपना दिमाग मारा करते हैं। पर ऐसा मालूम पड़ता कि बात समाप्त हो गई है।

ईसा की बीसवीं शताब्दी के आरम्भ होते-होते पं० श्रीधर पाठक, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने एक स्वर से यह आवाज उठाई कि कविता को जीवन के मेल में लाने के लिए यह परम आवश्यक है कि माध्यम खड़ी बोली बनाई जाय। विषय-संग्रह का क्षेत्र भी बदल दिया गया। जीवन से सम्बद्ध सामान्य विषय—प्रकृति-सौंदर्य—नागरिक, ग्रामीण और बन्य-जीवन, देश और राष्ट्रगत उद्बोधन इत्यादि को लेकर कविगण खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। पौराणिक, ऐतिहासिक और वर्तमान इतिवृत्तों की ओर उनकी विशेष अभिरुचि हुई। छोटे-छोटे कथात्मक प्रबन्ध तो लिखे ही गए, बड़े-बड़े प्रबन्धों के प्रयोग भी बड़ी सफलता के साथ किए गए। जहाँ जयद्रथवध रंग में भंग, मौर्यविजय, मिलन, पथिक इत्यादि ऐसे अनेक खण्ड-काव्य लिखे गए वहीं रामचरित चिन्तामणि, प्रियप्रवास ऐसे प्रबन्ध काव्यों की भी सृष्टि हुई। इस समय की प्रतिनिधि रचनाओं का एक अच्छा संग्रह 'कविता-कलाप' छपा था। उक्त गुरु,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कवियों के अतिरिक्त पं० लोचन प्रसाद पाण्डेय, बा० मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामचरित उपाध्याय, बा० जयशंकर प्रसाद, पं० रामनरेश त्रिपाठी, बा० सियारामशरण गुप्त, ठा० गोपालशरण सिंह आदि अनेकानेक श्रेष्ठ कवियों ने खड़ीबोली में कविताएँ लिखीं। फिर तो धीरे-धीरे खड़ीबोली का प्राधान्य कविता के क्षेत्र में बढ़ता और व्रजभाषा का स्वरूप निरंतर क्षीणकाय होता गया।

इस द्विवेदी-युग की कविता सर्वथा नवीन कही जायगी। विषय, छन्द-योजना, भाषा इत्यादि काव्य के स्थूल विधान में नूतनता का स्वरूप स्फुट हो गया और पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार के साथ-साथ इस नवयुगी गद्य-पद्य के साहित्य का खूब प्रचार बढ़ा। इस युग के दो कवि प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय और बा० मैथिलीशरण गुप्त। प्रथम ने संस्कृत के पद-विन्यास और वर्णवृत्तों के रूप को अपनाया, दूसरे ने हरिगीतिका, गीतिका आदि मात्रिक छन्दों का योग लिया। विषय दोनों के इतिवृत्त प्रधान ही होते थे। प्राचीन रूढ़ियों और काव्य-परंपराओं के प्रति दोनों में सद्भावनापूर्ण स्वीकृति दिखाई पड़ती थी। इस प्रकार इस युग की कविता में कथात्मकता और संस्कृत-बहुल खड़ी बोली का आधिक्य दिखाई पड़ा।

इतिवृत्तों की प्रधानता से लोग जल्दी ही ऊब उठे और काव्य-रचना के क्षेत्र में भिन्न प्रकार की आकांक्षा प्रकट होने लगी। इसके लिए दो नवीन मार्ग सामने दिखाई पड़े। कुछ लोग देश में उत्पन्न राजनीतिक वस्तुस्थिति से प्रेरित होकर स्वतंत्रता-आन्दोलन की ओर बढ़े। राजनीतिक जागरण के साथ-साथ किसान, मजदूर और अछूत के आंदोलन उत्पन्न हुए और कवियों का एक वर्ग जीवन और जगत् के साथ कविता का योग बैठाने लगा। इन नए विषयों के अनुरूप भाषा, भाव, छंद सभी का रूप गठित होने लगा और पं० माखनलाल चतुर्वेदी, सुश्री सुभद्राकुमारी चौहान,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' आदि अनेक राष्ट्रप्रेमी कवि नव-जागरण के गीत गाने लगे। तत्कालीन समाज को इनकी वाणी से बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ और जन-मन-भावना के साथ देश की गतिविधि का मेल बैठता गया। किसी भी गौरवपूर्ण राष्ट्र के स्फूर्ति-प्रदान करने वाले कवियों की तरह हिन्दी के इन देशप्रेम के प्रतिनिधि काव्य-कर्ताओं में तपस्या और साधना से अनुप्राणित निर्भीकता और त्याग की भावना भरी थी। इस प्रकार की रचनाओं का ठीक अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि सन् १९२१ के लगभग की पत्र-पत्रिकाएँ देखी जायँ।

द्विवेदी युग की स्थूल कथात्मकता से ऊबे हुए लोगों के लिए दूसरा मार्ग दिखानेवाले 'प्रसाद', 'निराला', महादेवी, पंत आदि छायावादी और रहस्योन्मुखी महाकवि थे। जीवन और जगत्-विषयक नाना रूपता से उद्भूत अनेकानेक भाव और कल्पना-परक अनुभूतियों के बल पर इन स्वर्गीय-संगीतवाले काव्य-सर्जकों ने एक नूतन परिपाटी को जन्म दिया। ये लोग व्यक्तिगत हृदय की छायावादी चेतना को विविध रंगीन अभिव्यंजनाओं से सजाकर उपस्थित करने लगे। बात स्थूल ढंग से न तो कही जाय और न समझी जाय, इसका इनको विशेष ध्यान रहता था। इसलिए प्रतीकों के अवगुण्ठन की आकांक्षा इनमें मुख्य दिखाई पड़ी। भाषा का काव्योचित्त परिष्कार भी उनमें निरन्तर होता गया और द्विवेदी-युग वाली कठोर खड़ी बोली अब सरस, भावव्यंजकता में पूर्ण समर्थ और प्रतीक-पद्धति में प्रयुक्त होने के कारण अधिक लाक्षणिक होती गई। इन कवियों की प्राणपोषिणी वृत्ति परोक्ष-चिंतन में निरत रहती थी, इसलिए इस प्रकार की कविता में वायवी तत्वों का स्फुरण अधिक होने लगा और लोक-जीवन कुछ दूर पड़ता गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूर पड़ने की बात विशेष रूप में इसलिए खटकती रही कि एक ओर राष्ट्रीय-भावना में रँगे कुछ कृतिकार राजनीतिक आन्दोलन के स्वर में बोल रहे थे और अपनी वाणी द्वारा त्याग एवं तपस्या में निरत देशवासियों की आकांक्षा तथा उद्वेग का पोषण करने में लगे थे; दूसरी ओर अव्यक्त एवं अनंत तक दौड़ लगानेवाले रहस्योन्मुखी ये छायावादी कवि गण रीति-कालीन पूर्वजों की अत्यधिक शृंगारप्रियता पर भली बुरी बातें भी सुना रहे थे और "प्रेम-क्षेत्र कहीं आध्यात्मिक, कहीं लौकिक के भीतर ही कल्पना की चित्रविधायिनी क्रीड़ा के साथ प्रकांड वेदना, औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यंजना तथा वीड़ा से दौड़ी हुई प्रिय के कपोलों पर की ललाई, हाव-भाव, मधुस्राव तथा अश्रुप्रवाह" इत्यादि के रंगीले चित्रों के सृजन में स्वयं लग गए। इस प्रकार "रीतिकाल की शृंगारी कविता की भरमार की तो इतनी निंदा की गई पर वही शृंगारी कविता—कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान—अपनी कुछ अदा बदलकर" फिर आने लगी। इस समय 'लक्षणाशक्ति के सहारे अभिव्यंजना-प्रणाली या काव्य-शैली का अवश्य बहुत अच्छा विकास हुआ' पर एक नवीन प्रकार की रूढ़िवादिता पनप उठी।

'छायावाद' जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम लेकर चला है वहाँ तक तो रहस्यवाद के ही अन्तर्गत रहा है। उसके आगे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद (Symbolism) नाम की काव्य-शैली के रूप में गृहीत होकर भी वह अधिकतर प्रेम-गान ही करता रहा है। पर धीरे-धीरे जब मधुचर्या की बरसाती बाढ़ उतार पर आई तो श्रेष्ठ कवियों की दृष्टि यथार्थ की ठोस भूमि पर जमी और 'प्रसाद' 'जले जगत्' को वृंदावन बनाने की आकांक्षा प्रकट करने लगे, 'पंत' जीवन की गति में भी लय, देखने लगे, और 'निराला' ने 'इलाहाबाद के पथ पर' पत्थर तोड़ती स्त्री के मस्तक पर करुण श्रम-सीकर की ओर दृष्टि उठाई। इस प्रकार ये छायावादी कला-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार अव्यक्त और अनन्त की ओर से ऊब कर स्वयं संघर्ष-पूर्ण मानव जगत् का विचार करने लगे। इन पुरानों के साथ कुछ नए भी आकर मिल गए और एक नवीन लहर उत्पन्न हुई।

इस लहर में युग की राजनीतिक परिस्थितियों का योग मिला। सन् १९३१ के आन्दोलन का प्रभाव भारत के कोने-कोने में छा गया था और देश की कोटि-कोटि जनता में नव स्फूर्ति एवं जागरण के भाव पैदा हो गए। उसे अपनी शक्ति का ज्ञान हो गया था। इसलिए उसमें अपने सम्पूर्ण विस्तार को एक सूत्र में बाँधने की आकांक्षा उत्पन्न हुई और सारे देश का ध्यान उस अस्सी प्रतिशत जनता की ओर गया जिसमें अधिकांश कारीगर, मजदूर, कृषक, अछूत, दलित, उपेक्षित और दरिद्र दिखाई पड़ते थे। मानव-धर्म के नाते, सामाजिक और राजनीतिक वस्तु-स्थिति से प्रेरित होकर सामान्य कहे जानेवाले जन-वर्ग को आत्मीयता के सम्बन्ध-सूत्र में बाँधना आवश्यक हो गया। जैसे राजकीय नौकरियों में और विविध सामाजिक क्षेत्रों में अछूत-दलित और मजदूर-कृषक को सुनिश्चित प्रश्रय दिया जाने लगा उसी तरह साहित्य में भी उनकी कथा, जीवन की गति-विधि, आकांक्षा, संघर्ष आदि की अधिकाधिक चर्चा बढ़ी। उच्च वर्गीय समाज का जो चित्रण भरा था—सम्पूर्ण साहित्य में 'वही सब कुछ है' इसका प्रबल विरोध आरम्भ हुआ, इसी विरोध मूलक भावना का साहित्यिक नाम पड़ा 'प्रगतिवाद'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी-कविता का सारा इतिहास उस तथ्य का स्वरूप है जो यह प्रकट करता है कि किसी जाति और देश का साहित्य प्रतिबिंब है युग-धर्म का और समय की सामान्य दशा के साथ उसमें निरन्तर परिवर्तन होते चलते हैं; वह काल की गति के अनुरूप स्वरूप ग्रहण करता चलता है।

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ
कबीरदास				
साखी	...	...	...	४
सबद	...	...	...	८
मलिकमुहम्मद जायसी				
गोरा-बादल युद्ध		...	...	१५
सूरदास				
नयन	...	...	...	२५
मुरली	...	...	...	३१
विरह और भ्रमरगीत		...	...	३४
तुलसीदास				
रामचरित-मानस		...	...	४५
विनय-पत्रिका		...	...	५५
कवितावली		...	...	५८
गीतावली		...	...	६२
केशवदास				
बंदना		...	...	७०
रामाश्वमेध		...	...	७१
सेनापति				
ऋतु-वर्णन		...	...	८४
बिहारीदास				
सतसई के दोहे		...	...	९२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय			पृष्ठ
भूषण			
शिवाबावनी	...	...	१०१
छत्रसाल-दसक	...	...	१०४
पद्माकर			
भक्ति	...	...	११०
गंगालहरी	...	...	,,
फुटकल	...	...	११४
अयोध्यासिंह उपाध्याय			
शरत् की रास-क्रीड़ा	...	...	११६
जगन्नाथदास 'रत्नाकर'			
भगीरथ की तपस्या	...	...	१३०
मैथिलीशरण गुप्त			
पंचवटी की सुषमा	...	...	१४०
गोपियों के प्रति उद्धव की उक्ति		...	१४५
माखनलाल चतुर्वेदी			
उन्मूलित वृक्ष	...	...	१५२
पुष्प की अभिलाषा	...	...	१५३
स्मृति के मधुर बसन्त	...	...	१५४
झरने को देखकर	...	...	१५५
जयशंकर प्रसाद			
वे दिन ...	...	...	१६१
खोलो द्वार	...	...	१६२
किरण ...	...	...	१६३
श्रद्धा और मनु	...	...	,,
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'			
तरंगों के प्रति	...	...	१६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय			पृष्ठ
विफल वासना	...	...	१७१
बन-कुसुमों की शय्या	...	...	१७२
संध्या-सुन्दरी	...	...	१७४
गीत	...	...	१७५
सुमित्रानन्दन पंत			
प्रार्थना	...	...	१७९
प्रथम रश्मि	...	...	१८०
कुसुम-जीवन	...	...	१८२
शुभाशंसा	...	...	१८३
बापू के प्रति	...	...	१८४
ताज	...	...	१८५
नवदृष्टि	...	...	१८६
महादेवी वर्मा			
सपने सपने में सत्य पला	...	...	१८९
रश्मि	...	...	१९०
परिचय क्या !	...	...	१९१
बसन्त-रजनी	...	...	१९२
मैं	...	...	१९३
पिक से	...	...	१९४
रामधारी सिंह 'दिनकर'			
महाभारत की ज्वाला	...	...	१९८
फूलों के पूर्व जन्म	...	...	२०२

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीरदास

हिन्दी के संत कवियों में कबीरदास का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। यद्यपि उनकी जीवनी का प्रामाणिक इतिवृत्त अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है, तथापि उनकी रचनाएँ अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

उनके जन्म के बारे में ठीक-ठीक विवरण तो ज्ञात नहीं है, पर ऐसा प्रसिद्ध है कि उनका लालन-पालन एक मुसलमान जुलाहे के घर में हुआ था और उसी के यहाँ उनका बचपन बीता। उस जुलाहे का नाम नीरू कहा जाता है। काशी के 'लहरतारा' नामक स्थान पर नीरू को कबीर नवजात शिशु के रूप में पड़ा मिला था। उस परित्यक्त बच्चे को अपने घर लाकर जुलाहे ने अपनी संतान की भाँति उसका पालन-पोषण किया। कुछ लोग उनका जन्मकाल संवत् १४५६ और कुछ लोग संवत् १४९७ मानते हैं। निधन-वर्ष भी इसी भाँति कुछ लोग संवत् १५०७ स्वीकार करते हैं और कुछ लोग संवत् १५७५। पर इतना प्रायः सभी मानते हैं कि काशी में नीरू और उसकी स्त्री, नीमा के यहाँ कबीर का बचपन व्यतीत हुआ था।

सुना जाता है कि बाल्यकाल से ही कबीर को साधु-संतों का सत्संग बड़ा प्रिय था। बचपन से ही हिन्दू-संतों और उनके उपदेशों की ओर कबीर का झुकाव था। तभी से उन पर हिन्दुओं के धर्म का प्रभाव पड़ने लगा और उस धर्म की ओर उनका झुकाव भी दिखाई देने लगा। उनकी रहन-सहन में हिन्दूपन अधिक झलकता था। कबीर जब बहुत छोटे बालक थे तभी से वे 'राम-राम' जपा करते थे। माता-पिता के रोकने का भी उन पर प्रभाव न पड़ा। उसी समय से कबीर के मन में संसार के प्रति विराग हो गया और वे सदा भजन किया करते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन दिनों स्वामी रामानन्द नाम के एक बहुत बड़े महात्मा थे। उनके उपदेशों की और नवीन भक्तिमार्ग की चारों ओर धूम मची हुई थी। उनका मुख्य केन्द्र काशी था। बालक कबीर पर उनके उपदेशों का बहुत प्रभाव पड़ा। कबीर के हृदय में ज्ञान की लालसा जगी। उन्होंने स्वामीजी का शिष्य बनना चाहा। पर शायद मुसलमान होने से उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पा रही थी। स्वामीजी ब्राह्म-मुहूर्त्त में नित्य पंचगंगा घाट पर स्नान करने जाया करते थे। कबीर एक दिन वहीं घाट पर स्वामीजी के आने के पूर्व जा लेटे। अँधेरे में स्वामीजी का पैर कबीर को लग गया और उन्होंने 'राम-राम' कहा। कबीर ने इसी को गुरुमंत्र मान लिया और इसी का जप करने लगे। अंत में उनकी सच्ची लगन देखकर स्वामीजी ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। कबीर गृहस्थ थे, उनकी स्त्री का नाम 'लोई' और पुत्र का 'कमाल' कहा जाता है। वे अपना जुलाहे का काम भी करते और साधु-संतों के सत्संग में अपना सारा बचा समय भी बिताते। मुसलमान फकीरों का भी वे सत्संग करते। संतों के उपदेशों को ध्यान से सुनकर, दूर-दूर देशों तक यात्रा किया करते थे। इस तरह महा-पुरुषों के सेवा-सत्संग से उनका ज्ञान बहुत बढ़ गया।

वे विद्वान् नहीं थे, पढ़ना-लिखना तक नहीं जानते थे। पर उनकी प्रतिभा, उनकी समझ और सूझ अलौकिक थी। वे सच्चे संत और महात्मा थे। संत-सत्संग, गुरु-उपदेश और महापुरुषों की वाणियों को सुन-सुनकर उन्होंने अपना ज्ञान और अनुभव बढ़ाया। वे निष्पक्ष विचारक भी थे। धर्म, सम्प्रदाय और समाज की कुरीतियों, सारहीन रूढ़ियों और अंधपरंपराओं के वे कट्टर विरोधी थे। अपठित होने पर भी वे मननशील थे, चिन्तनशील थे। उनकी बुद्धि ने देखा कि धर्म सच्चा वही है जो मानव को मानव से प्रेम करना सिखाए, जो मनुष्य को द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध और लोभ की लपटों से दूर रहना सिखाए, मनुष्य में हत्या, क्रूरता और हिंसा से बचने की शक्ति उत्पन्न करे, उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दया, उदारता और सेवा के लिये प्रेरित करे तथा इस प्रकार भगवान् की ओर बढ़ाए। उनकी दृष्टि से धर्म का काम है मनुष्य को सच्चे अर्थ में मनुष्य बनाना। कबीर ने अपने इन विचारों को बड़ी निर्भीकता के साथ अपनी बानियों द्वारा जनता तक पहुँचाया।

कबीर सच्चे संत, महापुरुष, सुधारक, धर्मोपदेशक और विचारक थे। उन दिनों हिन्दू-मुसलमानों में बड़ा संघर्ष था। धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अत्याचार हुआ करते थे। दोनों धर्मों में बाहरी आडम्बर बढ़ता जा रहा था और भीतरी भावना—जिसे धर्म की आत्मा कह सकते हैं—उसकी ओर से ध्यान हटता जा रहा था। कबीर ने दोनों धर्मों के अंधविश्वासों और बाहरी आडम्बरों की कड़ी आलोचना की और साम्प्रदायिक विद्वेष त्यागकर प्रेम से रहने का उपदेश दिया। उनका कहना था कि मन शुद्ध रहना अधिक आवश्यक है, अशुद्ध मन से पूजा-पाठ करने या नमाज पढ़ने से कोई फल नहीं। कबीर का मत स्वतन्त्र था। वे सब धर्मों में प्रेम चाहते थे। धर्म के नाम पर लड़ाई को वे अत्यन्त अनुचित समझते थे।

वे भगवान् को एक समझते थे। सच्ची भक्ति से ही, उनके मतानुसार, भगवान् मिल सकते हैं। दुःखियों की सेवा, सबसे प्रेम, जीवों पर दया, सबके प्रति समत्व-बुद्धि, जातिगत या धर्मगत ऊँच-नीच के भाव का त्याग आदि को ही वे सच्चा धर्म मानते थे। मानसिक पूजा, सच्ची भक्ति और प्रेम तथा सच्चे विरह से भगवान् का मिलना वे संभव समझते थे। वे निर्गुण, निराकार ब्रह्म के उपासक थे। उनके अनुसार राम-रहीम में कोई भेद न था। रहस्यात्मक उपासना, प्रेममयी भक्ति, यौगिक चक्रादि की साधना आदि उनके मत की विशेषताएँ हैं। सिद्धों की साधना, सूफियों का प्रेम और प्रेम की पीर, वैष्णवों की दया एवं अहिंसा और शंकराचार्य की माया तथा अद्वैत-भावना आदि को लेकर उन्होंने 'कबीर-पंथ' चलाया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कविता की दृष्टि से हिन्दी के संत रहस्यवादी कवियों में उनका स्थान सर्वोच्च है। लौकिक उपमाओं और रूपकों के आधार पर उन्होंने सरल शब्दों में बड़े महत्त्व की आध्यात्मिक, अलौकिक और ज्ञान की बातों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। उनकी बानी कहीं-कहीं रहस्यात्मकता अथवा गूढ़ साधना की बातों के कारण अटपटी अवश्य है, पर साधारणतः उनकी साखियाँ सरल हैं। जनता में उनकी साखियों और पदों का बड़ा प्रचार दिखाई देता है।

उनकी भाषा और शैली में एक-रूपता कम मिलती है। इसका कारण यह है कि वे अपठित थे। कबीर के शिष्यों ने उनकी बानियों का संग्रह किया और भिन्न-भिन्न देशों में पहुँचकर उनकी भाषा में प्रादेशिक प्रभाव से पंजाबी, खड़ीबोली, ब्रजभाषा और (सबसे अधिक) राजस्थानी आदि के रूप मिश्रित हो गए।

'बीजक' नामक ग्रंन्थ में उनकी रचनाएँ संगृहीत हैं, जिनके तीन भाग हैं—साखी, सबद और रमैनी। पढ़ने-लिखने से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी रचना में भाषा, व्याकरण और छन्दःशास्त्र की गड़बड़ियाँ प्रायः दिखाई पड़ जाया करती हैं। साथ ही उनकी रचनाओं में शिष्यों की अनेक रचनाएँ ऐसी घुलमिल गई हैं कि उन्हें अलग करना असंभव हो गया है। पर जितना कुछ है, उसमें मानव-कल्याण की भावना भरी हुई है और उसके लिये कबीर का महत्त्व सदा बना रहेगा।

साखी

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माहिँ।
तिहिँ घर किसकौ चाँ निणौं, जिहिँ घर गोविँद नाहिँ ? ॥१॥
सो साईं तन मैं बसै, ज्यूँ पुहपन मैं बास।
कसतूरी कै मिरग ज्यूँ, फिरि फिरि सूँघै घास ॥२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनपै गोविँद बीछुटे, तिनिकै कवन हवाल ?॥ ३ ॥
अंबर घनहर छाइया, बरखि भरे सब ताल।
चातक ज्यौं तरसत रहैं, तिनकौं कवन हवाल ?॥ ४ ॥
साँझ पड़ी, दिन आँथव्यो, चकवी दीन्ही रोइ।
चल चकवा वा देस मैं, साँझ कदे नहिं होइ ॥ ५ ॥
चकवी बिछुटी रैण की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिलैं न राति ॥ ६ ॥
विरह-कमंडल कर लियैं, वैरागी दो नैण।
माँगै दरस-मधुकरी, छक्या रहै दिन-रैण ॥ ७ ॥
बिरहिनि ऊभी पंथ-सिर पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहु पीव का, कबर मिलैंगे आइ ?॥ ८ ॥
आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ॥ ९ ॥
नैना नीझर लाइया, रहट बहै निसि-जाम।
पपिहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबर मिलौगे राम ?॥१०॥
सब रग ताँत, र वाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साँई, कै चित्त॥११॥
हिरदा भीतर दौं बलै, धुवाँ न परगट होइ।
जाके लागी सो लखै, कै जिहि लाई होइ॥१२॥
हँसि हँसि कंत न पाइया, जिनि पाया तिनि रोइ।
जौ हाँसे ही हरि मिलैँ नहीं दुहागिनि कोइ॥१३॥
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समानी समँद मैं, सो कत हेरी जाइ ?॥१४॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिट गया, दीपक देख्या माहिं॥१५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीर, बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।
अंतरि भीगी आतमा, हरी भई बनराइ ॥१६॥
हरिया जाँणै रूँखड़ा, उस पाणी का नेह।
सूका काठ न जाणई कबहूँ बूठा मेह ॥१७॥
झिरमिर झिरमिर बरखिया, पाँहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भई, पाँहण वोही तेह ॥१८॥
गरजि गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥१९॥
मान-सरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुगताइल मुगता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिँ ॥२०॥
हरि-रस-पीया जाँणियै, कबहुँ न जाइ खुमारि।
मैमंता घूमत रहै, नाहीँ तन की सारि ॥२१॥
छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तौ प्रेम न होइ।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोइ ॥२२॥
तन कौ जोगी सब करैं, मन कौ बिरला कोइ।
सब बिधि सहजै पाइयै, जे मन जोगी होइ ॥२३॥
हम घर जाल्या आपणा, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तासका, चलै हमारे साथि ॥२४॥
कोई ऐसा ना मिला, राम-भगति का मीत।
तन-मन सौंपै मिरग ज्यूँ, सुनै बधिक का गीत ॥२५॥
काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, रहै राम की ओट ॥२६॥
आसा एक ज राम की, दूजी आस निरास।
पानी माँहे घर करैं, ते भी मरैं पियास ॥२७॥
कबीर, सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।
एक दिनाँ भी सोवणा, लंबे पाँव पसारि ॥२८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबीर, निरभै राम जपि, जब लगि दीवै बाति।
तेल घट्या, बाती बुझी, सोवैगा दिन-राति ॥ २९ ॥
राम भजौ तौ अब भजौ, बहुरि भजौगे कब्ब।
हरियर हरियर रूँखड़ा, इंधण हो गए सब्ब ॥ ३० ॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जाति।
एक दिनाँ छिप जावसी, तारा ज्यूँ परभाति ॥ ३१ ॥
मंदिर माँहि झबूकती, दीबा कैसी जोति।
हंस-बटाऊ चलि गया, काढ़ौ घर की छोति ॥ ३२ ॥
चलती चक्की देखि करि, दिया कबीरा रोइ।
दुइ पाटन के बीच मैं, साबित बचा न कोइ ॥ ३३ ॥
उत थैँ कोइ न आवई, जासौं बूझूँ धाइ।
इत थैँ सबही जात हैँ, भार लदाइ लदाइ ॥ ३४ ॥
पात झड़ंता यौँ कहै, सुनि तरु-बर बन-राइ।
अब कै बिछुड़े ना मिलैँ, दूरि पड़ैंगे जाइ ॥ ३५ ॥
थली चरंत मिरग लै, बीँध्या एक ज सौँण।
हम तौ पंथी पंथ सिर, हर्‌या चरैगा कौँण ? ॥ ६६ ॥
मैँ भँवरा ! तोहि बरजिया, बन बन बास न लेइ।
अटकैगा कहुँ बेल सौँ, तड़पि तड़पि जिय देइ ॥ ३७ ॥
कबीर पगड़ा दूरि है, जिनिकै बिचि है राति।
का जाणौँ, का होइगा, उगवैँ तैँ परभाति ? ॥ ३८ ॥
काची काया, मन अथिर, थिर थिर काम करंत।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत ॥ ३९ ॥
हरि-जन सेती रूसणा, संसारी सूँ हेत।
ते नर कदै न नीपजै, ज्यूँ कालर का खेत ॥ ४० ॥
बाग बिछूटौ मिरग लौ, तिहिँ जिनि मारै कोइ।
आपैँ ही मरि जावसी, डाँवा डोलाँ होइ ॥ ४१ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सेमर सुअना सेइया, दुइ ढेंढी की आस।
ढेंढी फूटि चटाक दै, सुअना चला निरास ॥ ४२ ॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोइ।
जौ सुख साधू संग मैं, सो बैकुंठ न होइ ॥ ४३ ॥
पाहन पूजैं हरि मिलैं, तौ मैं पूजौं पहार।
तातैं यह चाकी भली, पीसि खाइ संसार ॥ ४४ ॥
काँकर-पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाइ।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दै, बहरा हुआ खुदाइ ? ॥ ४५ ॥
तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल, मन चोर।
एकौ पाप न उतर्‍या, दस मन लाया और ॥ ४६ ॥
कबीर, ऐसा बीज बो, बारह मास फलंत।
सीतल छाया, गहर फल, पंखी केल करंत ॥ ४७ ॥
राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवणा दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥ ४८ ॥
कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाइ ॥ ४९ ॥
जिहि सर मारी कालिह, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सचु पाऊँ नहीं ॥ ५० ॥
लंबा मारग, दूरि घर, बिकट पंथ, बहु भार।
कहौ संतो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार ॥ ५१ ॥

सबद

(१)

साधो, सो सतगुरु मोहिँ भावै।
सत्त-नाम का भर-भर प्याला आप पिबै, मोहि प्यावै ॥
मेले जाय न महंत कहावै, पूजा भेँट न लावै।
परदा दूर करै आँखिन का, निज दरसन दिखलावै ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाके दरसन साहब दरसैँ, अनहद सबद सुनावै।
माया के सुख दुख करि मानै, संग न सुपन चलावै॥
निस-दिन सतसंगति में राचै, सबद में सुरत समावै।
कह कबीर, ताको भय नाहीं, निरभय पद परसावै॥

(२)

भजु मन जीवन नाम सबेरा।
सुंदर देह देखि जिन भूलो, झपट लेत जस बाज बटेरा॥
या देही को गरब न कीजै, उड़ पंछी जस लेत बसेरा।
या नगरी में रहन न पैहो, कोइ रहि जाग न दूख घनेरा॥
कहै कबीर, सुनो भाई साधो, मानुख-जनम न पैहो फेरा।

(३)

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै॥
घर में भोग, जोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै।
बन के गए कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै?
घर में भुक्ति, मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै॥
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै।
घर में बस्तु, बस्तु में घर है, घर ही बस्तु मिलावै॥
कहै कबीर, सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै।

(४)

समझ देखु, मन मीत पियरवा, आसिक होकर सोना क्या रे॥
रूखा-सूखा गम का टुकड़ा, फीका और सलोना क्या रे।
पाया हो तो दे ले, प्यारे, पाय पाय फिर खोना क्या रे॥
जिन आँखिन में नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे।
कहै कबीर, सुनो भाई साधो, सीस दिया तब रोना क्या रे॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(५)

जागु, पियारी, अब का सोवै। रैन गई, दिन काहे को खोवै ?
जिन जागा तिन मानिक पाया। तैं बौरी सब सोइ गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर, मूरख तूँ नारी। कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हों। भर जोबन पिय अपन न चीन्हों ॥
जागु, देख, पिय सेज न तोरे। तोहि छाँड़ि उठ गए सबेरे ॥
कह कबीर, सोई धन जागै। सबद - बान उर - अंतर लागै ॥

(६)

बालहा आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे ॥
सब कोइ कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अँदेह रे ॥
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसो नेह रे ॥
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह-बन धरै न धीर रे ॥
ज्यूँ कामी कौं काम पियारा, ज्यूँ प्यासे कूँ नीर रे ॥
है कोइ ऐसा पर-उपकारी, हरि सूँ कहै सुनाइ रे ॥
ऐसे हाल कबीर भए हैं, बिन देखे जिव जाइ रे ॥

(७)

पी ले प्याला, हो मतवाला, प्याला नाम अमी-रस का रे ॥
बालपना सब खेलि गँवाया, तरुन भया नारी-बस का रे ॥
बिरध भया कफ-बाय ने घेरा, खाट पड़ा जाय न खसका रे ॥
नाभि कँवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरै बन का रे ॥
बिन सत गुरु इतना दुख पाया, बैद मिला नहिं इस तन का रे ॥
मात पिता बंधव सुत तिरिया, संग नहीं कोई जाय सका रे ॥
जब लग जीवै गुरु-गुन गा ले, धन-जोबन है दिन दस का रे ॥
चौरासी जो उबरा चाहै, छोड़ कामिनी का चसका रे ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नख-सिख पूर रहा बिस का रे ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(८)

चल चल, रे भौँरा, कँवल पास।
तेरी भौँरी बोलै अति उदास।।
वह करत चोज बार ही बार।
तन बन फूल्यौ कस डार डार।।
है लियो बनसपति केर भोग।
कुछ सुख न भयो, तन बढ्यो रोग।।
दिवस चार के सुरँग फूल।
तेहि लखि भौँरा रह्यो भूल।।
बनसपति जब लागै आगि।
तब, भँवरा कहँ जैहौँ भागि?
पुहुप पुराने गए सूख।
लगी भँवर का अधिक भूख।।
उड़ न सकत, बल गयो छूट।
तब भँवरा रोवै सीस कूट।।
चहुँ दिस चितवै महु पराइ।
ले चल भँवरी सिर चढ़ाइ।।
कहै कबीर, ये मन के भाव।
नाम बिना सब जम के दाँव।

(९)

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे का ताना, काहे का बाना, कौन तार से बीनी चदरिया?
इँगला-पिंगला ताना-बाना, सुखमन तार से बीनी चदरिया।।
आठ कँवल, दस चरखा डोलै, पाँच तत्त, गुन तीनि, चदरिया।
साँई को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया॥

(१०)

पानी बिच मीन पियासी। मोहिं सुन सुन आवत हाँसी॥
आतम-ग्यान बिना सब सूना। क्या मथुरा क्या कासी?
घर में बस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी॥
मृग की नाभि माहि कस्तूरी, बन बन खोजन जासी॥
कहै कबीर, सुनो भाई साधो, सहज मिलै अबिनासी॥

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मलिक मुहम्मद जायसी

प्रेममार्गी सूफी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अवध प्रान्त के अन्तर्गत 'जायस' नामक स्थान में ये रहते थे, इसी कारण 'जायसी' कहे जाते थे। इनके जन्म और मृत्यु-काल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। पर जायसी के सबसे प्रसिद्ध और सरस 'पद्मावत' महाकाव्य की रचना का समय उनके पद्मावत में ही निर्दिष्ट है। पद्मावत की रचना का आरम्भ हिजरी सन् ९२७ में (अर्थात् संवत् १५७७ के आसपास) हुआ था। पर इस समय ग्रन्थ का आरम्भमात्र हुआ था। पद्मावत का अधिकतः अंश दिल्ली के बादशाह शेरशाह के राज्यकाल संवत् १५९७ के आसपास लिखा गया। अतः उनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध मान लिया जाता है।

जायसी सूफी संप्रदाय के मुसलमान थे और तत्कालीन प्रसिद्ध सूफी फकीर मोहिदी (मुही-उद्दीन) के शिष्य थे। कहा जाता है कि जायसी के माता-पिता उनके बचपन में ही मर गए थे। अतः वे अनाथ होकर बचपन से ही फकीरों के साथ रहने लगे। साधु, संतों और फकीरों के सत्संग से उनका ज्ञान और अनुभव बहुत बढ़ गया। वे सच्चे जिज्ञासु थे और संतों-फकीरों के उपदेश बड़े ध्यान से सुनते और मनन किया करते थे। इतना ही नहीं, कहते हैं, वे स्वयं भी एक पहुँचे हुए फकीर थे। मुसलमान होने पर भी तत्कालीन अधिकतर मुसलमानों के समान उनमें धार्मिक कट्टरता न थी वरन् वे हिन्दुओं के प्रति बड़े ही उदार थे, उनके देवी-देवों की चर्चा श्रद्धा के साथ करते थे। शीतला की बीमारी में उनकी एक आँख जाती रही और एक कान के वे बहरे भी हो गए। उनकी कुरूपता पर जब अवध के एक राजा ने उनकी हँसी उड़ाई तब उन्होंने कहा था—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मोहिँ का हँसेसि कि कोहरहिँ ?

"अर्थात् मुझपर हँसते हो या मुझे बनानेवाले भगवान्‌रूपी कुम्हार पर ?" इस पर लज्जित होकर राजा ने क्षमायाचना की।

हिन्दी के प्रेममार्गी सूफी कवियों में जायसी के टक्कर का दूसरा कोई कवि नहीं हुआ है। उस भावुक कवि की कविता में कोमल भाव और प्रेम की पीर भरी पड़ी है। धार्मिक विचारों के क्षेत्र में वे उदार थे। मुसलमान होकर भी उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ काव्य 'पद्मावत' की रचना अवधी भाषा में की, अरबी या उर्दू-फारसी में नहीं। उन्होंने कथा भी ऐसी चुनी जो हिन्दुओं की है, जिनमें उन्होंने बड़े रस के साथ हिन्दू-नारियों के आदर्श पातिव्रत्य का मनोरम चित्र अंकित किया है। हृदय के सुकुमार और कोमल भावों का चित्रण करने में जायसी को बड़ी सफलता मिली है। प्राकृतिक दृश्यों और युद्ध में वीरों के शौर्य का वर्णन भी जायसी ने बड़ा रोचक किया है।

पद्मावत में जायसी ने लौकिक कथा के आधार पर सूफियों के प्रेममार्ग का सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने यह बतलाया है कि भगवान् को पाने का साधन है प्रेममार्ग पर चलना। प्रेम से ही भगवान् मिलते हैं। भगवान् का सच्चा प्रेमी वही है जो उसके वियोग में प्रेम की पीर सहकर, अनेक कष्टों, संकटों का सामना करे। घोर बाधाओं और विपत्तियों का सामना करता चलनेवाला साधक ही अपने प्रियतम को पाता है। 'पद्मावत' में रतनसेन और पद्मावती के लौकिक प्रेम के व्याज से आध्यात्मिक प्रेम का आभास दिया गया है। सूफियों का प्रीतम, 'भगवान्' परम प्रेममय है, उसकी सुन्दरता की झलक प्रकृति और मनुष्य की सुन्दरता में प्रतिबिम्बित दिखाई देती है। समस्त प्रकृति उसी के वियोग में व्यथा से व्याकुल रहती है। यही प्रेम की व्याकुलता भगवान् तक पहुंचाती है। जायसी का यह प्रेममार्गी रहस्यवाद कबीर के रहस्यवाद से अधिक व्यापक, चित्रात्मक और मधुर है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनका 'पद्मावत' एक प्रबन्ध काव्य है जो दोहों और चौपाइयों में लिखा गया है। इनकी एक रचना 'अखरावट' भी है जिसमें सूफियों के दार्शनिक सिद्धान्त बताए गए हैं। दोनों की भाषा ठेठ अवधी है। 'पद्मावत' सचमुच ही बड़ा ललित काव्य है। उसकी भाषा, शैली, अलंकार-योजना, भावों की व्यंजना और कथा की सरसता—सब कुछ अत्यन्त रमणीय है। जायसी निसन्देह उच्चकोटि के भावुक, सहृदय और रसिक कवि थे। [गोरा-बादल-युद्ध पद्मावत में से लिया गया है। इसमें उस समय का वर्णन है जब धोखे से कैद किए गए रतनसेन को छल से छुड़ाकर गोरा ने बादल को राजा के साथ भेज दिया और स्वयं लड़कर वीरगति को प्राप्त किया।]

गोराबादल युद्ध

मतैं बैठि बादल औ गोरा। सो मत कीज परै नहीं भोरा॥
पुरुष न करहिं नारि-मति काँची। जस नौशाबा कीन्ह न बाँची॥
परा हाथ दसकंदर बैरी। सो कित छोड़ि कै भई बँदेरी?
सुबुधि सौं ससा सिंह कँह मारा। कुबुधि सिंघ कूआँ परि हारा॥
देवहिँ छरा आइ अस आँटी। सज्जन कंचन, दुज्जन माटी॥
कंचन जुरै भए दस खंडा। फूटि न मिलै काँच कर भंडा॥
जस तुरकन्ह राजा छर साजा। तस हम साजि छोड़ावहिँ राजा॥

पुरुष तहाँ पै करै छर, जहँ बर किए न आँट।
जहाँ फूल तहँ फूल है, जहाँ काँट तहँ काँट॥ १॥

सोरह सै चंडोल सँवारे। कुँवर सजोइल कै बैठारे॥
पद्मावति कर सजा बिवानू। बैठे लोहार न जानै भानू॥
रचि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँदिसि चँवर करहिं सब ढारा॥
साजि सबै चंडोल चलाए। सुरँग ओहार, मोति बहु लाए॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भए सँग गोरा बादल बली। कहत चले पदमावति चली॥
हीरा रतन पदारथ झूलहिं। देखि बिमान देवता भूलहिं॥
सोरह सै सँग चलीं सहेली। कँवल न रहा, और को बेली?॥

राजहि चलीं छोड़ावै, तहँ रानी होइ ओल।
तीस सहस तुरि खिचीं सँग, सोरह सै चंडोल॥ २॥

राजा बँदि जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहि पहँ अगमना॥
टका लाख दस दीन्ह अँकोरा। बिनती कीन्हि पायँ गहि गोरा॥
बिनवा बादसाह सौं जाई। अब रानी पदमावति आई॥
बिनती करै, आइ हौं दिल्ली। चितउर कै मोहि स्यो है किल्ली॥
बिनती करै, जहाँ है पूँजी। सब भँडार कै मोहि स्यो कूँजी॥
एक घरी जौ आज्ञा पावौं। राजहि सौंपि मँदिर महँ आवौं॥
तब रखवार गए सुलतानी। देखि अँकोर भए जस पानी॥

लीन्ह अँकोर हाथ जेहि, जीउ दीन्ह तेहि हाथ।
जहाँ चलावै तहँ चलै, फेरे फिरै न माथ॥ ३॥

लोभ-पाप कै नदी अँकोरा। सत्त न रहै हाथ जौ बोरा॥
जहँ अँकोर तहँ नीक न राजू। ठाकुर फेर बिनासै काजू॥
भा जिउ घिउ रखवारन्ह केरा। दरब-लोभ चंडोल न हेरा॥
जाइ साह आगे सिर नावा। ए जगसूर! चाँद चलि आवा॥
जावत हैं सब नखत तराईं। सोरह सौ चंडोल सो आई॥
चितउर जेति राज कै पूँजी। लेइ सो आइ पदमावति कूँजी॥
बिनती करै जोरि कर खरी। लेइ सौंपौं राजा एक घरी॥

इहाँ उहाँ कर स्वामी, दुऔ जगत मोहिं आस।
पहिले दरस देखावहु, तौ पठवहु कबिलास॥ ४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आज्ञा भई, जाइ एक घरी। छूँछि जो घरी, फेरि बिधि भरी ॥
चलि बिवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत सब छावा ॥
पदमावति के भेस लोहारू। निकस काटि बँदि कीन्ह जोहारू ॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा ॥
गोरा बादल खाँड़े काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े ॥
तीख तुरंग गगन सिर लागा। केहुँ जुगुति करि टेकी बागा ॥
जो जिउ ऊपर खड्ग सँभारा। मरनहार सो सहसन्ह मारा ॥

भई पुकार साह सौं, सीस औ नखत सो नाहिं।
छर कै गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं ॥५॥

लेइ राजा चितउर कहँ चले। छूटेउ सिंघ, मिरिग खलभले ॥
चढ़ा साहि, चढ़ि लागि गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी ॥
फिरि गोरा बादल सौं कहा। गहन छूटि पुनि चाहै गहा ॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू। अब इहै गोइ, इहै मैदानू ॥
तुइ अब राजहि लेइ चलु गोरा। हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा ॥
वह चौगान तुरुक कस खेला। होइ खेलार रन जुरौं अकेला ॥
तौ पावौं बादल अस नाऊँ। जौ मैदान गोइ लेइ जाऊँ ॥

आजु खड़ग चौगान गहि करौं सीस-रिपु गोइ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ ॥६॥

तब अगमन होइ गोरा मिला। तुइ राजहि लेइ चलु, बादला! ॥
पिता मरै जो सँकरे साथा। मीचु न देइ पूत के माथा ॥
मैं अब आउ भरी औ भूँजी। का पछिताव आउ जौ पूजी? ॥
बहुतन्ह मारि मरौं जो जूझी। तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी ॥
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हें। और बीर बादल सँग कीन्हे ॥
गोराहि सर्माद मेघ अस गाजा। चला लिए आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पूरुष देखि चाव मन बाढ़ा ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ।
परति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ ॥७॥

होइ मैदान परी अब गोई। खेल हार दहुँ काकरि होई॥
जोवन-तुरी चढ़ी जो रानी। चली जीति यह खेल सयानी॥
कटि चौगान, गोइ कुच साजी। हिय मैदान चली लेइ बाजी॥
हाल सो करै, गोइ लेइ बाढ़ा। कूरी दुवौ पैज कै काढ़ा॥
भइँ पहार वै दूनौ कूरी। दिस्टि नियर, पहुँचत सुठि दूरी॥
ठाढ़ बान अस जानहु दोऊ। सालै हिये न काढ़ै कोऊ॥
सालहिं हिय, न जाहिँ सहि ठाढ़े। सालहिँ मरै चहै अनकाढ़े॥

मुहमद खेल प्रेम कर गहिर कठिन चौगान।
सीस न दीजै गोइ जिमि, हाल न होइ मैदान ॥८॥

फिरि आगे गोरा तब हाँका। खेलौं, करौं आजु रन-साका॥
हौं कहिए धौलागिरि गोरा। टरौं न टारे, अंग न मोरा॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं। मेघ-घटा मोहि देखि बिलाहीं॥
सहसौ सीस सेस सम लेखौं। सहसौ नैन इंद्र सम देखौं॥
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू। कंस न रहा, और को साजू?॥
हौं होइ भीम आजु रन गाजा। पाछे घालि डुंगवै राजा॥
होइ हनुवँत जमकातर ढाहौं। आजु स्वामि साँकरे निबाहौं॥

होइ नल नील आजु हौं देहुँ समुद महँ मेंड़।
कटक साह कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेंड़ ॥९॥

ओनई घटा चहूँ दिसि आई। छूटहिँ बान मेघ-झरि लाई॥
डोलै नाहिँ देव जस आदी। पहुँचे आइ तुरुक सब बादी॥
हाथन्ह गहे खड़ग हरद्वानी। चमकहिं सेल बीजु कै बानी
सोझ बान जस आवहिं गाजा। बासुकि डरै सीस जनु बाजा॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नेजा उठे डरै मन इंदू। आइ न बाज जानि कै हिंदू॥
गोरै साथ लीन्ह सब साथी। जस मैमंत सूँड़ बिनु हाथी॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही। आवत आइ हाँक रन दीन्ही॥

रुंड मुंड अब टूटहिँ स्यो बखतर और कूँड़।
तुरय होहिँ बिनु काँधे, हस्ति होहिँ बिनु सूँड़॥१०॥

ओनवत आइ सेन सुलतानी। जानहुँ परलय आव तुलानी॥
लोहे सेन सूझ सब कारी। तिल एक कहूँ न सूझ उघारी॥
खड्ग फोलाद तुरुक सब काढ़े। धरे बीजु अस चमकहिँ ठाढ़े॥
पीलवान गज पेले बाँके। जानहुँ काम करहिँ दुइ फाँके॥
जनु जमकात करहिँ सब भवाँ। जिउ लेइ चहहिं सरग अपसवाँ॥
सेल सरप जनु चाहहिं डसा। लेहिं काढ़ि जिउ मुख बिष-बसा॥
तिन्ह सामुँह गोरा रन कोपा। अंगद सरिस पावँ भुइँ रोपा॥

सुपुरुष भागि न जानै, भुइँ जौ फिरि फिरि लेइ।
सूर गहे दोऊ कर स्वामि-काज जिउ देइ॥११॥

भइ बगमेल, सेल घन घोरा। ओ गज-पेल, अकेल सो गोरा॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा। भार-पहार जूझ कर काँधा॥
लगे मरै गोरा के आगे। बाग न मोर घाव मुख लागे॥
जैस पतंग आगि धँसि लेई। एक मुवै, दूसर जिउ देई॥
टूटहिँ सीस, अधर धर मारै। लोटहिँ कंधहिँ कंध निरारै॥
कोई परहिँ रुहिर होइ राते। कोई घायल घूमहिँ माते॥
कोइ खुर खेह गए भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी॥

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल॥१२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोरैं देखि साथि सब जूझा। आपन काल नियर भा, बूझा ॥
कोपि सिंधु सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यो घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहिँ सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ॥

भइ अज्ञा सुलतानी, "बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ" ॥१३॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंघ जाइ नहिँ टेका ॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाव न आवा ॥
तुरुक बोलावहिँ, बोलै बाहाँ। गोरै मीचु धरी जिउ माहाँ ॥
मुए पुनि जूझि जाज, जगदेऊ। जियत न रहा जगत महँ कोऊ ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ के मोंछ हाथ को मेला ? ॥
सिंघ जियत नहिँ आपु धरावा। मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख-सोहहिँ दीठी। जौ लगि जियै देइ नहिँ पीठी ॥

रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुहिर न धोवौं, तौ लगि न होइ न रात ॥१४॥

सरजा वीर सिंघ चढ़ि गाजा। आइ सौंह गोरा सौं बाजा ॥
पहलवान सो बखाना बली। मदद मीर हमजा औ अली ॥
लँघउर धरा देव जस आदी। और को बर बाँधै, को बादी ? ॥
मदद अयूब सीस चढ़ि कोपे। महामाल जेइ नावँ अलोपे ॥
औ ताया सालार सो आए। जेइ कौरव पंडव पिँड पाए ॥
पहुँचा आइ सिंध असवारू। जहाँ सिंघ गोरा बरियारू ॥
मारेसि साँग पेट मँह धसी। काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाँट कहा, धनि गोरा ? तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै तुरय देत है पाव ॥ १५ ॥

कहेसि अंत अब भा भुइँ परना। अंत त खसे खेह सिर भरना ॥
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा ॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। परा खड़ग जनु परा निहाऊ ॥
ब्रज्र क साँग, बज्र कै डाँड़ा। उठी आगि तस बाजा खाँड़ा ॥
जानहु बज्र बज्र सौं बाजा। सब ही कहा परी अब गाजा ॥
दूसर खड़ग कंध पर दीन्हा। सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा ॥
तीसर खडग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत, घाव न आवा ॥

तस मारा हठि गोरै, उठी बज्र कै आगि।
कोइ नियरे नहिं आवै सिंघ सदूरहि लागि ॥ १६ ॥

तब सरजा कोपा बरिवंडा। जनहु सदूर केर भुजदंडा ॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु परी टूटि सिर गाजा ॥
ठाँठर टूट, फूट सिर तासू स्यो सुमेरु जनु टूट अकासू ॥
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिर गइ दीठि, फिरा संसारू।
भइ परलय अस सबही जाना। काढ़ा खड़ग सरग नियराना ॥
तस मारेसि स्यो घोड़ै काटा। धरती फाटि, सेस-फन फाटा ॥
जौ अति सिंह बरी होइ आई। सारदूल सौं कौनि बड़ाई ॥

गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान ॥ १७ ॥

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूरदास

मथुरा और आगरे के बीच रुनकता नामक गाँव में संवत् १५४० के लगभग भक्तवर सूरदास का जन्म हुआ था। इनके पिता रामदास सारस्वत ब्राह्मण कहे जाते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार सूरदास 'पृथ्वीराज-रासो' के रचयिता कविवर चन्दबरदाई के वंशज माने जाते हैं। सूरदास जन्मान्ध थे या बाद में अंधे हुए—यह ठीक पता नहीं चलता।

कहा जाता है कि कृष्ण की लीलाभूमि में वे आश्रम बनाकर रहते थे। एक बार वहाँ महाप्रभु वल्लभाचार्य पधारे। सूर की कृष्ण-भक्ति देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सूरदास को अपना शिष्य बना लिया। महाप्रभु पुष्टिमार्ग के प्रवर्त्तक थे। विक्रम की १५वीं और १६वीं शताब्दी में वैष्णव मत की अनेक शाखाओं की भारत के कोने-कोने में धूम मची हुई थी। उन्हीं में कृष्ण की मधुर भक्ति को लेकर चलनेवाला वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग या शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय भी था।

आचार्य वल्लभ के पूर्व आचार्य शंकर के अद्वैतवाद या मायावाद ने बड़े तर्कपूर्ण ढंग से निर्गुण ब्रह्म की सर्वतोऽधिक महत्ता सिद्ध की थी। उनके अनुसार निर्गुण, निराकार ही ब्रह्म का पारमार्थिक या वास्तविक रूप है और उसके अतिरिक्त समस्त दृश्यादृश्य, सूक्ष्म-स्थूल विश्व मिथ्या या मायामय है। भगवान् का सगुण रूप भी माया का ही प्रपंच है!

पर महाप्रभु वल्लभ ने ब्रह्म के सगुण रूप को ही पारमार्थिक स्वरूप सिद्ध करते हुए बताया कि निर्गुण रूप में ब्रह्म की कुछ विभूतियाँ तिरोहित (लुप्त) हैं। इस सगुण ब्रह्म के सान्निध्य-प्राप्ति का मार्ग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्होंने प्रेममयी मधुरा या प्रेमा भक्ति को बताया। आचार्य ने मथुरा में अपने संप्रदाय की गद्दी स्थापित की और उसका प्रचार करने लगे।

इन्हीं आचार्य के उपदेश से सूर के हृदय में कृष्णभक्ति का आविर्भाव हुआ, हृदय भक्तिभाव से भर उठा, सोई हुई कवित्व की सहज प्रतिभा जाग उठी। बाह्य दृष्टि के बन्द रहने पर भी अन्तर्दृष्टि खुल गई। आचार्य से भागवत की सरस एवं ललित कथाओं को सूर तन्मय होकर सुनते और उसी के आधार पर भगवान् की चरित्र-गाथा के पद रच-रच कर भक्तिविभोर हो गाया करते। उन्हीं पदों का संग्रह 'सूर-सागर' कहा जाता है। और सुना जाता है कि सूर ने सवा लाख पद बनाए, यद्यपि सूरसागर के उपलब्ध विभिन्न संस्करणों में कुल पदों की संख्या छः-सात हजार से अधिक नहीं मिलती। राग-रागिनियों में बँधे हुए ब्रजभाषा के ललित गेय पदों में 'सूर-सागर' की रचना हुई है। इसके अतिरिक्त 'सूर-सारावली' और 'साहित्य-लहरी' भी उनकी रचनाएँ बताई जाती हैं—यद्यपि अन्तिम कृति को सूर की रचना मानने में अभी मतभेद बना हुआ है।

महाप्रभु के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने पिता के और अपने चुने हुए आठ शिष्यों का एक मंडल बनाया था जो अष्टछाप के नाम से विख्यात हैं। उनके नाम हैं—सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्ददास, नंददास तथा चतुर्भुजदास। अष्टछाप के ये आठों कवि महाप्रभु के शिष्य थे, उनके मत के प्रचारक थे और मधुरा कृष्णभक्ति को लेकर ब्रजभाषा में मनोहर काव्यों के रचयिता थे। भक्त शिरोमणि सूरदास अष्टछाप के इन कवियों में अग्रगण्य माने जाते हैं।

निःसंदेह सूर और तुलसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कुछ लोग गोस्वामी तुलसीदास को श्रेष्ठ मानते हैं। कुछ लोग सूरदास को बड़ा कहते। पर यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो अपने-अपने क्षेत्र में दोनों ही अनुपम हैं। यह अवश्य है कि गोस्वामीजी की कविता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का जितना व्यापक प्रभाव है उतना सूर का नहीं है। पर इसका कारण यह है कि तुलसी का काव्यक्षेत्र विस्तृत है। लोक-संग्रह और समाज-मर्यादा का ध्यान रखते हुए मानव जीवन की नाना परिस्थितियों का तुलसी ने चित्रण किया है और एक व्यक्ति का अन्य व्यक्ति से विभिन्न परिस्थितियों में कैसा व्यवहार हो इसका आदर्श उपस्थित किया है।

पर सूर मर्यादावादी लोकसंग्राहक नहीं थे, वरन् आत्मानंदी थे। उनकी मधुरा या प्रेमाभक्ति का क्षेत्र भगवान् की मधुर लीलाओं तक ही —विशेषतः वात्सल्य और शृंगार के संयोग-वियोग तक ही परिमित था। पर अपने इस शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में सूर अनुपम हैं, अद्वितीय हैं। कृष्ण की बाललीला, शिशुकृष्ण का चरित्र, दधिमाखन चोरी, गोचारण, मुरलीवादन, कुंजविहार, गोपीप्रेम, राधाकृष्ण-प्रेम, रासलीला, दानलीला, चीरहरण, बनविहार, गोपी-विरह और भ्रमरगीत आदि विषयों को लेकर सूर ने बड़े सरस और मर्मस्पर्शी पदों की रचना की है। सूर के विनय के पद भी भक्ति की सरस विकलता से ओतप्रोत है। उन पदों में भक्त की दीनता के साथ-साथ प्रगाढ़ प्रेम की मधुर व्यंजना हुई है।

सूर ने बालकृष्ण की मधुर, पर साथ ही साथ सहज और स्वाभाविक लीलाओं का जो मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा है वह अत्यंत रमणीय और अन्यत्र दुर्लभ है। बालकों की जिन साधारण, पर सहज सुंदर नाना चेष्टाओं का मधुर चित्रण सूर ने किया है, कवि की पैनी दृष्टि से छोटी-छोटी बालक्रीड़ा के द्वारा बालकों के व्यवहारों, मनोभावों और कार्यों का जो चित्राङ्कन सूर ने किया है, वह हिन्दी-साहित्य क्या कदाचित् विश्वसाहित्य में बेजोड़ है। बालमनोवृत्तियों के उद्घाटन के साथ-साथ बालक्रीड़ाओं का ऐसा वर्णन किसी ने नहीं किया है।

गोपियों का विरह-वर्णन भी अनुपम है। इस वर्णन में जितनी मानसिक वृत्तियों का प्रत्यक्षीकरण सूर ने किया है वह अद्वितीय है। उनमें वर्णन की स्वाभाविकता और सरसता के साथ-साथ प्रेमानुभूति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की तीव्रता भरी हुई है। भ्रमरगीत के पदों में 'प्रेम' नामक मुख्यभाव से प्रेरित गोपियों की उक्तियों में जो व्यंग्य, दीनता, वक्रता आदि की अभिव्यक्ति हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। सूरदास सचमुच ही काव्य-गगन के सूर्य हैं। सूर-काव्य के इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर किसी ने कहा है—

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करहिं प्रकास।

सूरदास की रचना ब्रजभाषा में हुई है। उनकी ब्रजभाषा बहुत ही स्वाभाविक, प्राञ्जल, ब्रज की मिठास से भरी और संगीतमय है। उनकी भाषा में प्रवाह है। भावों को ठीक-ठीक व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है तथा हृदय को स्पर्श करने की शक्ति है। कहीं-कहीं छन्द के बंधनवश शब्दों में अधिक तोड़-मरोड़ करना पड़ा है, व्याकरण-दोष भी आ गए हैं और कहीं-कहीं क्लिष्टता भी आ गई है पर सामान्यतः उनकी भाषा सुसंघटित, सुबोध, प्रवाहमय और मुहावरेदार है। उनकी रचना में अलंकारों का बहुत ही अच्छा प्रयोग हुआ है। उनकी भाव-व्यंजना की शैली प्रसादगुणमय है तथा उनके वर्णन स्वाभाविक हैं। कहने का सारांश यह कि सभी दृष्टियों से सूर को ब्रजभाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि कह सकते हैं, और उनका 'सूर-सागर' ब्रजभाषा की सर्वश्रेष्ठ रचना है।

नयन

(१)

देखिरी ! हरि के चंचल नैन।
खंजन-मीन-मृगज-चपलाई नहिं पटतर इक सैन।
राजिव-दल इंदीवर सतदल कमल कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहिं वे बिगसत, ये बिगसित दिनराति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरुन स्याम सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनौ सरस्वति जमुन-गंग मिलि आश्रम कीन्हौ आइ।
अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठहराइ।
सूरस्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरमाइ।

(२)

नैन-भए बोहित के काग।
उड़ि उड़ि जात पार नहिं पावैं फिरि आवत नहिं लाग।
ऐसी दशा भई री इनकी अब लागे पछितान।
मो बरजत-बरजत उठि धाए नहिं पायौ अनुमान।
वह समुद्र ओछे बासन ये, धरे कहा सुखरासि।
सुनहु सूर ये चतुर कहावत, वह छबि महाप्रकासि।

(३)

खंजन नैन सुरँग रसमाते।
अति सब चारु बिमल दृग चंचल पल-पिंजरा न समाते।
बसे कहूँ सोइ बात कही सखि रहे इहाँ किहि नातैँ।
सोइ संज्ञा देखति औरासी बिकल उदास कलातैँ।
चलि-चलि आवत स्रवन निकट अति सकुचत तटंक फँदाते।
सूरदास अंजन-गुन अटके नतरु कबै उड़ि जाते।

(४)

निसि-दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस-रितु हम पैँ जब तैँ स्याम सिधारे।
दृग अंजन न रहत निसि-बासर कर कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिँ कबहूँ उर बिच बहत पनारे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसैं सिथिल सबै भइ काया पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु यही परेखौ काहैं गोकुल बिसारे।

(५)

सखी इन नैननि तैं घन हारे।
बिनु ही रितु बरसत निसि-बासर सदा सजल दोउ तारे।
उरध स्वास समीर तेज अति सुख अनेक द्रुम डारे।
बदन-सदन मैं बसे बचन-खग, रितु पावस के मारे।
ढरि ढरि बूँद परत कंचुकि पर मिलि अंजन सौं कारे।
मनहुँ सिव की परन-कुटी बिच धारा स्याम निनारे।
घुमरि घुमरि बरसत जल छाँड़त डर लागत अँधियारे।
बूड़त ब्रजहिं सूर को राखै बिनु गिरिवर-धर प्यारे।

(६)

अति रस-लंपट मेरे नैन।
तृप्ति न मानत पियत कमल-मुख-सुंदरता-मधु ऐन।
दिन अरु रैनि दृष्टि-रसना-रस निमिख न मानत चैन।
सोभा-सिंधु समाइ कहाँ लौं हृदय-साँकरे-ऐन।
अब वह बिरह-अजीरन ह्वै कै बमि लाग्यौ दुख दैन।
सूर बैद ब्रजनाथ मधुपुरी काहि पठाऊँ लैन।

(७)

अँखियाँ करति हैं अति आरि।
सुंदर स्याम पाहुनैं कै मिस, मिल न जाहु दिन चारि।
बाहँ थकी बायमहिं उड़ावत कब देखौं उनहार।
राधा स्याम स्याम करि टेरति कालिंदी कैं करार।
कमल-बदन ऊपर दुइ खंजन मानौ बूड़त बारि।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सकैं न पंख पसारि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमा नैननि एक रही।

कविजन कहत कहत चलि आये सुधि करि नाहिं कही।
कहे चकोर, मुख-बिधु बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात।
हरि-मुख-कमल-कोस बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात।
आए बधन ब्याध ह्वै ऊधौ, जो मृग क्यौं न पलात।
भाजि जाहिं बन सघन स्याम मैं जहाँ न कोऊ घात।
खजन मनरंजन न होहिं ये कबहूँ नाहिं अकुलात।
पंख पसारि न होत चपलगति हरि-समीप मुकुलात।
प्रेमि न होहिं, कवन बिधि कहिए, झूठे ही तन आड़त।
सूरदास मीनता कछू इक जल भर संग न छाँड़त।

(९)

ब्रज बसि काके बोल सहौं।

इन लोभी नैननि के कारन परबस भई जु रहौं।
बिसरि लाज गई, सुधि नहिं तन की, अब धौं कहा कहौं।
मेरे जिय मैं ऐसी आवत जमुना जाइ बहौं।
इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढ़्यौं, कतहुँ न स्याम लहौं।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं यह दुख अधिक सहौं।

(१०)

अँखियाँ हरि कैं हाथ बिकानीं।

मृदु मुसुकानि मोल इनि लीन्ही यह सुनि पछितानी।
कैसे रहति रहीं मेरैं बस अब कछु औरै भाँति।
अब वै लाज मरतिं मोहिं देखत बैठिं मिली हार-पातिं।
सपने की सी मिलनि करति हैं कब आवतिं कब जातिं।
सूर मिलीं ढरि नंदनँदन कौं अनत नहीं पतियातिं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(११)

चितई चपल नैन की कोर।

मन्मथ-बान दुसह अनियारे निकसे फूटि हिऐँ उहिँ ओर।
अति ब्याकुल धुकि धरनि परे जिमि तरुन तमाल पवन कैँ जोर।
कहुँ मुरली, कहुँ लकुट मनोहर, कहुँ पट कहुँ चंद्रिका-मोर।
खन बूड़त खनहीँ खन उछरत बिरह-सिंधु कैँ परे झकोर।
प्रेम-सलिल भीज्यौ पीरौ पट, फट्यौ निचोरत अंचल-छोर।
फुरैँ न बचन, नैन नहिँ उघरत मानहुँ कमल भए बिनु भोर।
सूर सु अधर सुधारस सीँचहु मेटहु मुरछा नंदकिसोर।

(१२)

अँखिया हरि दरसन की भूखी।

कैसे रहैँ रूप-रस-राँची ये बतियाँ सुनि रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत, तब ये तौ नहिँ झूखी।
अब इन जोग-सँदेसनि ऊधौ अति अकुलानी दूखी।
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैँ सूखी।

(१३)

और सकल अंगनि लैँ ऊधौ अँखियाँ अधिक दुखारी।
अतिहिँ पिरातिँ, सिरातिँ न कबहूँ बहुत जतन करि हारी।
चितवत रहतिँ निमेष न लावतिँ बिथा-बिकल भइ भारी।
भरि गइँ बिरह बाइ माधौ के इकटक रहतिँ उघारी।
सुनि अलि अब ये ग्यानसलाकहिँ क्योँसहि सकहिँ तुम्हारी।
सूर सुअंजन आँजि रूप-रस आरति हरौ हमारी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१४)

हरि-मुख निरखत नैन भुलाने ।

ये मधुकर रुचि-पंकज-लोभी ताही तैं न उड़ाने ।
कुंडल मकर कपोलनि कैं ढिग जनु रबि रैन बिहाने ।
भ्रुव सुंदर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने ।
अरुन अधर दुज कोटि बज्र-दुति सीस घन रूप समाने ।
कुंचित अलक सिली मुख मिलि मनु लै मकरंद उड़ाने ।
तिलक ललाट, कंठ मुकतावलि, भूषन मनिमय साने ।
सूर स्याम रस-निधि नागर के क्यौं गुन जात बखाने ।

(१५)

कपटी नैननि तैं कोउ नाहीं ।

घर कौ भेद और के आगैं क्यौं कहिबे कौं जाहीं ।
आपु गए निरधक ह्वै हम तैं बरजि-बरजि पच हारी ।
मन कामना भई परिपूरन ढरि रीझे गिरधारी ।
इनहिं बिना वै उनहिं बिना ये अंतर नाहीं भावत ।
सूरदास यह जुग की महिमा कुटिल तुरत फल पावत ।

(१६)

लोचन टेक परे सिसु जैसें ।

माँगत हैं हरि-रूप-माधुरी खोज परे हैं नैसैं ।
बारंबार चलावत उतहीं रहन न पाऊँ वैसैं ।
जात चले आपुन हीं अब लौं राखे जैसें तैसैं ।
कोटि जतन करि-करि परबोधति कह्यौ न मानहिं कैसैं ।
सूर कहूँ ठग-मूरी खाई ब्याकुल डोलत ऐसैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१७)

अँखियनि यहई टेव परी।

कहा करौँ बारिज-मुख-ऊपर लागति ज्यौँ भ्रमरी।
चितवति रहतिँ चकोर चंद ज्यौँ बिसरति नहिँ न घरी।
जद्यपि हटकि-हटकि राखति हौँ तद्यपि होतिँ खरी।
गड़ि जु रहीँ वा रूप-जलधि मैँ प्रेम-पियूष भरी।
सूर तहाँ नग-अंग परस-रस लूटति निधि सिगरी।

(२) मुरली

(१)

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।

मोहे सुर नर नाग निरंतर ब्रज वनिता मिलि धाई।
जमुना-नीर-प्रवाह थकित भयो, पवन रह्यौ मुरझाई।
खग मृग मीन अधीन भये सब अपनी गति बिसराई।
द्रुम-बल्ली अनुराग पुलक तनु, ससि थक्यौ, निसि न घटाई।
सूर स्याम वृन्दाबन बिहरत चलहु सखी सुधि पाई।

(२)

मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।

अँचवति अधर-सुधा बस कीन्है, अब हम कहा करैँ कहि माई।
सरबसु हरी घरी, कबहूँ औसर देति न होति अघाई।
बाजति गाजति चढ़ी दुहूँ कर, अपनैँ सब्द न सुनति पराई।
जो जन अनल दह्यौ कुल अपनौ, तासौं कैसैँ होत भलाई।
अब कहि सूर कौन बिधि कीजै बन की ब्याधि माँझ घर आई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३)

स्याम कर मुरली अतिहि बिराजत।
परसत अधर, सुधारस प्रगटति, मधुर-मधुर सुर बाजत।
लटकत मुकुट, भौंह जब मटकत, नैन सैन अति छाजत।
ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर कोटि मदन छबि लाजत।
लोल कपोल झलक कुंडल की यह उपमा कछु लागत।
मानहुँ मकर सुधारस क्रीड़त आप आप अनुरागत।
वृन्दाबन बिहरत नँदनंदन ग्वाल सखा सँग सोहत।
सूरदास प्रभु की छबि निरखत सुर-नर-मुनि सब मोहत।

(४)

अधर-रस मुरली लूटन लागी।
जा रस कौँ षटऋतु तन गारयौ सो रस पियति सभागी॥
कहाँ रही कहँ तैँ यह आई कौनैँ याहि बुलाई।
चकृत भई कहतीँ ब्रजबासिनि यह तौ भली न आई॥
सावधान क्यौँ होतिँ नहीं तुम उपजी बुरी बलाइ।
सूरदास प्रभु हम पर याकौँ कीन्ही सौति बजाइ॥

(५)

मुरली स्याम कहाँ तैँ पाई।
करत नहीँ अधरनि तैँ न्यारी कहा ठगौरी लाई॥
ऐसी ढीठि मिलत हीँ ह्वै गई उनके मनहीँ भाई।
हम देखत वह पयति सुधारस देखौ री अविकाई॥
कहा भयौ मुख लागी हरि कैँ बचननि लिये रिझाई।
सूर स्याम कौँ बिबस करावति कहा सौति सी आई॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

मुरली हरि कौँ नाच नचावति ।
एते पर यह बाँस-बँसुरिया नंद-नँदन कौँ भावति ।।
ठाढ़े रहत बस्य ऐसे ह्वै सकुचत बोलन बात ।
वह निदरें आज्ञा करवावति नैँ कहुँ नाहिँ लजात ।।
जब जानति आधीन भए हैँ देखति ग्रीव नवावत ।
बैठत अधर, चालत-कर पल्लव रँध्र-चरन पलुटावत ।।
हम पर रिस करि-करि अवलोकत नासा-पुट फरकावत ।
सूर स्याम जब-जब रीझत हैँ तब-तब सीस डुलावत ।।

(७)

अधर-रस मुरली लूट करावति ।
आपुन बार-बार लै अँचवति जहाँ-तहाँ ढरकावति ।।
आजु महा चढ़ि बाजी वाकी जोइ-जोइ करै बिराजै ।
कर-सिंहासन बैठ अधर सिर छत्र धरे वह गाजै ।।
गनति नहीं अपनैँ बल काहुहिँ स्यामहिँ ढीठि कराई ।
सुनहु सूर बन की बनबासिनि ब्रज मैं भई रजाई ।।

(८)

मुरली तप कियौ तनु गारि ।
नैकुहूँ नहिँ अंग मुरकी जब सुलाखी जारि ।।
सरद ग्रीषम प्रबल पावस खरी इक पग भारि ।
करत हूँ नहिँ अंग मोर्‍यौ साहसिनि अति नारि ।।
रिझै लीन्हे स्याम सुंदर देति हौ कत गारि ।
सूर-प्रभु तब ढरे हैँ री गुननि कीन्ही प्यारि ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

मुरली अति चली इतराइ ।
अछय निधि जिनि लूटि पाई क्यौं नहीं सतराइ ।।
आदि जौ यह बड़ी होती चलति सीस नवाइ ।
सबनि कौं लै संग चलती दौरि मिलती आइ ।।
बाँस तैं उत्पत्ति जाकी कहा बुधि ठहराइ ।
सूर-प्रभुता बस्य जैसैं रहे तनु बिसराइ ।।

बिरह और भ्रमर गीत

(१)

मधुबन तुम कत रहत हरे ।
बिरह वियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यौं न जरे ।
मोहन बेनु बजावत द्रुम-तर साखा टेकि खरे ।
मोहे थावर अरु जड़-जंगम, मुनि गन ध्यान टरे ।
वह चितवनि तू मन न धरत है फिरि-फिरि पुहुप धरे ।
सूरदास प्रभु विरह-दवानल नख-सिख लौं पसरे ।।

(२)

पिय बिनु नागिन कारी रात ।
कबहुँक जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जाति ।
जंत न फुरत मंत्र नहिं लागत, आयु सिरानी जाति ।
सूर, स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि-मुरि लहरैं खाति ।।

(३)

सँदेशौ देवकी सौं कहियौ ।
हौं तौ धाइ तिहारे सुत की मया करत ही रहियौ ।
जदपि टेव तुम जानति उनकी तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहिं माखन-रोटी भावै ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उबटन तेल और तातौं जल देखत ही भज जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम करिकै न्हाते।
सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि-दिन बढ़्यौ रहत उर सोच।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन ह्वैहैं करत सँकोच॥

(४)

बिनु गुपाल बैरिन भइँ कुंजैं।

तब ये लता लगति अति सीतल, अब भइँ विषम ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि, घनसार, सजीवन, दधिसुत किरन भानु भइ भुंजैं।
ए ऊधौ! कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं।
सूरदास प्रभु कौ मग जोवत, अँखियाँ भईं बरन ज्यौं गुंजैं।

(५)

ऊधौ मन नहिं हाथ हमारे।

रथ चढ़ाइ हरि संग गए लै, मथुरा जबहि सिधारे।
ना तरु कहा जोग हम छाँड़हिं अति रुचि कै तुम ल्याए।
हम तौ झखतिं स्याम की करनी मन लै जोग पठाए।
अजहूँ मन अपनौ हम पावैं तुम तैं होइ तौ होइ।
सूर सपथ हमैं कोटि तिहारी कही करैंगी सोइ॥

(६)

बहुत दिन जीवौ पपिहा प्यारौ।

बासर-रैनि नावँ लै बोलत भयौ बिरह-जुर कारौ।
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय चातक नाम तिहारौ।
देखौ सकल बिचारि सखी! जिय बिछुरन कौ दुख न्यारौ!
जाहि लगै सोइ पै जानै प्रेम-बान अनियारौ।
सूरदास प्रभु स्वाति-बूँद लगि तज्यौ सिंधु करि खारौ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(७)

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कहा करौं निरगुन लैकै हौं, जीवहु कान्ह हमारे।
लोटत नीच पराग पंक मैं पचत न आपु सम्हारे।
बारंबार सरक मदिरा कौ अपरस कहा उघारे।
तुम जानत हमहूँ वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबकौं बिलमावत जेते आवत कारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन जसुमति-नंददुलारे।
सूर स्याम कौं सरबस अरप्यौ, का पै लेहिं उधारे॥

(८)

निरगुन कौन देश कौ बासी।
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसी बरन, भेष है कैसौ, केहि रस मैं अभिलाषी।
पावैगौ पुनि कियौ आपनौ जो रे कहैगौ गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठगौ सौ सूर सबै मति नासी॥

(९)

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह व्यापार तिहारै ऊधौ ऐसेंहीं फिरि जैहै।
जा पै लै आए हौ मधुकर ताकैं उर न समैहै।
दाख डारि कै कटुक निबौरी को आपनैं मुख खैहै।
मूरी कै पातनि के क्वैना को मुक्ताहल देहै।
गुन करि मोहे सूर साँवरे, को निरगुन निरबैहै॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१०)

ऊधौ मन नाहीँ दस बीस
एक हुतौ सो गयो स्याम सँग को अवराधै ईस।
सिथिल भईं सबहीँ माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वास अटकि रहि आसा लगि जीवहिँ कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के सकल जोग के ईस।
सूरदास रसिक की बतियाँ पुरवौ मन जगदीस॥

(११)

ऊधौ मन माने की बात।
दाख-छोहारा छाँड़ि अमृत-फल विष-कीरा विष खात।
जो चकोर कौं देइ कपूर कोउ तजि अंगार अघात।
मधुप करत घत कोरि काठ मैं बँधत कमल के पात।
ज्यौं पतंग हित जानि आपनौ दीपक सौं लपटात।
सूरदास जाकौ जासौं हित सोई ताहि सुहात॥

(१२)

ऊधौ जो तुम हमहिं सुनायौ।
सो हम निपट कठिनई हठ कै या मन कौँ समुझायौ।
जुगुति जतन करि, जीति अगह गहि जोग-पंथ लौँ ल्यायौ।
भटकि फिर्‌यौ बोहित के खग ज्यौँ फिरि हरि ही पैँ आयौ।
हमकौँ सबै अहित लागतु है तुम अति हितहिँ बतायौ।
सुर-सरिता-जल होम किए तैँ कहा अगिनि सचु पायौ।
अब ऐसौ उपाय उपदेसौ जिहिँ जिय जात जिआयौ।
बारक मिलैँ सूर के प्रभु पुनि करौ आपनौ भायौ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१३)

अब अति चकितवंत मन मेरौ।
आयौ हौ निरगुन उपदेसन भयौ सगुन कौ चेरौ।
जो मैं कह्यो ज्ञान गीता कौ तुम्हहिं न परस्यौ नेरौ।
अति अज्ञान न कुछ कहि आयौ दूत भयौं हरि केरौ।
निज जन जानि मानि जननी तुम कीजौ नेह घनेरौ।
सूर मधुप उठि चल्यौ मधुपुरी बोरि जोग कौ बेरौ॥

(१४)

मधुबनियाँ लोगनि को पतिआय ?
मुख औरे, अंतरगत औरे, पतियाँ लिखि पठवत हैं बनाय॥
ज्यौं कोइल-सुत काग जिआवत भाव-भगति-भोजनहिं खवाय।
कुहकुहाय आए बसंत ऋतु अंत मिले कुल अपने जाय॥
जैसे मधुकर पुहुप-बास लै फेरि न बूझै बातहु आय।
'सूर' जहाँ लौं स्यामगात हैं तिनसौं क्यौं कीजिए लगाय॥

(१५)

ऊधो ! मन माने की बात।
जरत पतंग दीप मैं जैसे, औ फिरि-फिरि लपटात॥
रहत चकोर पुहुमि पर, मधुकर ! सीस अकास भरमात।
ऐसो ध्यान धरौ हरि जू पै छन इत उत नहिँ जात॥
दादुर रहत सदा जल भीतर कमलहिं नहिं नियरात।
काठ फोरि घर कियौ मधुप पै बँधे अम्बुज के पात॥
वर्षा बरषत निसिदिन, ऊधो ! पुहुमी पूरि अघात।
स्वाति-बूँद के काज पपीहा छन-छन रटत अकास॥
सेहि न खात अमृत फल भोजन, तोमरि कौं ललचात।
'सूरज' कृष्ण कूबरी रीझे गोपिन देखि लजात॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१६)

तबतैं इन सबहिन सचु पायौ।
जबतैं हरि संदेश तिहारी सुनत ताँवरो आयौ॥
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायौ।
भूले मृगा चौंकि चरनन तैं, हुतो जो जिय बिसरायौ॥
ऊँचे बैठि बिहंग सभा बिच कोकिल मंगल गायौ।
निकसि कंदरा तैं केहरिहू माथे पूँछ डुलायौ॥
गहवर तैं गजराज निकसि कै अँग-अँग गर्व जनायौ।
'सूर' बहुरिहौ, कह राधा, कै करिहौ बैरिन भायौ॥

(१७)

ऊधो! इतनी कहियौ जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिनु बहुत दुखारी गाय॥
जल-समूह बरसत अँखियन तैं, हूँकत लीने नावँ।
जहाँ-जहाँ गोदोहन करते ढूँढ़त सोइ-सोइ ठावँ॥
परतिं पछार खाय तेहि-तेहि बल अति व्याकुल ह्वै दीन।
मानहुँ 'सूर' काढ़ि डारे हैं बारि मध्य तैं मीन॥

(१८)

देखियत कालिंदी अतिकारी।
कहियौ पथिक! जाय हरि सौ ज्यौं भई बिरह-जुर-जारी।
मनौ पलिका पै परी धरनि धँसि, तरँग तलफ तनु भारी।
तट बारू, उपचारू-चूर मनौ, पंकज कज्जल सारी।
भ्रमर मनौ मति भ्रमत चहूँ दिसि फिरति हैं अंग दुखारी।
निसदिन चकई ब्याज बकत मुख, किन मानहुँ अनुहारी।
'सूरदास' जो जमुना गति सो गति भई हमारी॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१९)

बिलग जनि मानहु, ऊधो प्यारे !
यह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे, सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके सँग अधिक छबि उपजत कमलनैन मनिआरे।
मनहु नील माँट तैं काढ़ै लै जमुना ज्यौं पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूरस्याम गुन न्यारे।

(२०)

सदेसनि मधुबन कूप भरे।
जे कोइ पथिक गये हैं ह्याते फिर नहिं गवन करे।
कै वै स्याम सिखाय समोधे, कै वै बीच मरे।
अपने नहिं पठवत नँदनंदन, हमरेउ फेरि धरे।
मसि खूँटी, कागर जल भीजे, सर दौ लागि जरे।
पाती लिखैं कहौ क्यौंकरि जो पलक कपाट अरे।

(२१)

निरखत अंक स्याम सुंदर के बार बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै, ह्वै गइ श्याम श्याम की पाती।
गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहुँ बयारि लगी नहिं ताती।
तब की कथा कहा कहौं ऊधो ! जब हम बेनु नाद सुनि जाती।
हरि के लाड़ गनति नहिं काहू निसिदिन सुदिन रास-रस-माती।
प्राणनाथ ! तुम कबधौं मिलौगे सूरदास प्रभु बाल-सँघाती।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुलसीदास

हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म चाँदा जिले के राजापुर नामक गाँव में सरयूपारीण ब्राह्मण के कुल में हुआ था। गोस्वामीजी के मित्र बाबा वेणीदास लिखित मूल गोसाईं-चरित के कुछ अंश (जिनकी प्रामाणिकता में अभी मतभेद है) प्राप्त हुए हैं। इसके वर्णनानुसार गोस्वामीजी का जन्मकाल संवत् १५५४ है। दूसरे मत से संवत् १५८३ या १५८९ में भी जन्म माना गया है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था और माता का नाम हुलसी, जिसकी मृत्यु तुलसी के जन्म के उपरान्त शीघ्र हो गई थी। अभुक्त मूल में उत्पन्न होने से कुलक्षणी समझकर पिता ने पुत्र का त्याग कर दिया था। 'मुनियाँ' नाम की दासी के यहाँ पाँच वर्षों तक गोस्वामीजी का पालन-पोषण हुआ।

उसके बाद स्वामी नरहर्यानन्द ने इन्हें अपने पास रख लिया। उस समय गोस्वामीजी का नाम 'रामबोला' था। स्वामीजी रामबोला को बहुधा रामायण की कथा सुनाया करते थे। वहीं इस बालक का नाम तुलसीदास पड़ा। तदनन्तर काशी के प्रसिद्ध विद्वान् शेष सनातन के यहाँ जाकर गोस्वामीजी ने विधिपूर्वक संस्कृत की विविध विद्याओं का अध्ययन किया। तत्पश्चात् अपने घर लौट आए। घर आने के पश्चात् दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से उनका विवाह हुआ।

गोस्वामीजी अपनी स्त्री में अत्यन्त अनुरक्त थे। एक दिन तुलसीदास की अनुपस्थिति में उनकी स्त्री अपने पीहर चली गई। घर लौटने पर उसे न पाकर तुलसीदास आधी रात को नदी पार कर बिना बुलाए ही स्त्री से मिलने अपनी ससुराल जा पहुँचे। तुलसीदास की अति प्रेमासक्ति से ऊबकर रत्नावली ने कहा—"मुझसे जितना प्रेम करते हो उतना यदि भगवान से करते तो भवसागर से तुम्हारा उद्धार हो जाता।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुलसी को यह बात लग गई। विरक्त होकर भगवान् में सारा प्रेम लगाकर सारे जीवन वे काशी, अयोध्या, चित्रकूट आदि-स्थानों में तीर्थाटन, साधु-संतों का सत्संग और भगवद्-भजन करते रहे। इसी बीच उन्होंने भक्तिभाव से प्रेरित होकर अपनी अमर कृतियों की रचना की। उनका अन्तिम समय काशी में बीता। भगवद्भजन, भक्ति-उपासना और भक्ति-साहित्य की रचना करते हुए गोस्वामीजी का नश्वर-शरीर संवत् १६८० में काशी-गंगा के तटस्थ अस्सीघाट पर छूटा। संवत् १६३१ में 'मानस' का आरंभ अयोध्या में हुआ था। पर उसकी समाप्ति काशी में हुई। गोस्वामीजी काशी में जहाँ रहते थे, उनकी स्मृति में वह स्थान आज भी तुलसीघाट के नाम से प्रसिद्ध है।

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं और उनका "रामचरित-मानस" हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ प्रबंध महाकाव्य है। इसकी जोड़ के प्रबंध महाकाव्य हिन्दी-साहित्य क्या विश्व-साहित्य में बहुत कम मिलेंगे। यह काव्य हिन्दू-संस्कृति का आदर्श-कोश है और हिन्दूधर्म एवं भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने और दृढ़ बनाने में इस काव्य ने जो उपकार किया है, भारत के इतिहास में वह चिरस्मरणीय रहेगा। हिन्दूधर्म और जनजीवन को इसने बड़ा ही प्रभावित किया है। घोर निराशा के महागर्त्त में पतनोन्मुख समाज के दुर्बल कलेवर में नवजीवन का प्राण फूँककर मानस ने देश, समाज और संस्कृति का अतुलनीय उपकार किया।

हिन्दू-समाज उस समय मत-मतान्तरों, मतभेदों, शैव, वैष्णव, तान्त्रिक, शाक्त आदि सहस्रों सम्प्रदाय और सामाजिक पारस्परिक विरोध तथा विद्वेष के कारण छिन्न-भिन्न होने लगा था। गोस्वामीजी ने विविध सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करके उनमें एकता की भावना को उद्बुध किया। भगवान् राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य से सम्पन्न मर्यादा-पुरुषोत्तम का आदर्श चरित्र सामने रखकर जनता के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हृदय का नैराश्य दूर किया। गोस्वामीजी महाकवि ही नहीं, सामाज-सुधारक और संस्कृति के रक्षक भी थे।

राम के आदर्श चरित्र द्वारा कौटुम्बिक, सामाजिक और राजनीतिक आदर्श-जीवन को लोगों के सामने रखकर जनता को दृढ़, सबल और चरित्रशील बनाने का प्रयास किया। तुलसी के राम का आदर्श-जीवन हिन्दू-समाज के रग-रग में व्याप्त है। राम की राज्यव्यवस्था, राम-राज्य का आदर्श शासन आज भी भारत के समस्त राजनीतिक दलों के आकर्षण का मुख्यकेन्द्र बना हुआ है। विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के व्यक्तिगत, कौटुम्बिक और सामाजिक कर्त्तव्यों के उचित पालन तथा निर्वाह का आदर्श अंकित है। इस काव्य में मानव-जीवन की आदर्श झाँकी दिखाई पड़ती है। उनका 'मानस' मानव जीवन की विशद व्याख्या है। राम, भरत सुमित्रा और कौशल्या आदि का चरित शील की पराकाष्ठा है।

गोस्वामीजी में लोक-संग्रह की भावना बड़ी प्रबल थी। कबीर, जायसी अथवा सूर के समान केवल अपने मत का ही उपदेश वे नहीं देते थे वरन् धर्म, कर्त्तव्य और भक्ति-उपासना के साथ-साथ लोकधर्म, समाज-धर्म तथा संस्कृति-मर्यादा की रक्षा और पालन को अत्यन्त आवश्यक मानते थे।

इन्हीं सब कारणों से 'मानस' इतना लोकप्रिय हुआ, उसका घर-घर प्रचार हुआ, पढ़े-लिखे, अल्पपठित-सुपठित, मूर्ख-विद्वान्, (यहाँ तक कि अपठित भी) मानस को बड़े आदर से पढ़ते और सुनते हैं, धर्मग्रंथ की भाँति उसका आदर करते हैं। उसकी उक्तियाँ सबके जीभ पर बसी रहती हैं और धर्म-वाक्यों के समान उसका आदर होता है। गोस्वामीजी सुधारक ही नहीं सन्त और महात्मा भी थे। उन्होंने समाज-निर्माण में बहुत बड़ा योगदान दिया।

इन सबके साथ-साथ वे महाकवि भी थे। उनमें कवियों क भावुकता थी, सरस, रमणीय और मर्मस्पर्शी उक्तियों के निर्माण की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिभा थी, शब्द और अर्थ के समुचित संयोजन की क्षमता थी, उनमें कलाकार की सक्रिय कल्पना तथा काव्य-निर्माण की पूर्ण दक्षता थी। भाव, भाषा और शैली में वे परम निपुण थे। काव्य के विविध प्रणालियों से वे पूर्ण परिचित ही नहीं थे वरन् उन्होंने काव्य-निर्माण की तत्कालीन समस्त प्रचलित प्रणालियों में 'मानस', 'विनय-पत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली', आदि उत्कृष्ट काव्यों की पूर्ण सफलता के साथ रचना भी की। इसी प्रकार ब्रजभाषा, अवधी और संस्कृत पर भी उनका समान अधिकार था। ये सभी भाषाएँ उनकी वशवर्त्तिनी थीं।

रस, अलंकार, गुण आदि का निर्वाह सर्वत्र स्वाभाविक, मनोहारी तथा कलापूर्ण हुआ है। उनकी भाषा प्रसाद-गुण-युक्त है, सरल और सुबोध है तथा भावों के प्रकाशन में पूर्ण समर्थ है, वह कवि के भावों की जैसे वशवर्त्तिनी है।

उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—

(१) रामचरित-मानस—इस ग्रन्थ से—जिसमें राम की आदर्श कथा मुख्यतः अध्यात्म रामायण, बालमीकि रामायण तथा विविध पुराणों आदि के आधार पर लिखित है—सभी हिन्दी जाननेवाले परिचित हैं।

(२) विनय-पत्रिका—कवि की विनम्र दीनता के साथ-साथ विनय पूर्ण पदों का यह संग्रह है। भक्त (पर साथ ही लोक-संग्रही) तुलसीदास और उनकी भक्ति का पूर्ण परिचय इस ग्रंन्थ से मिलता है।

(३) गीतावली—सूर-सागर की शैली पर ब्रजभाषा के गेय पदों में रामचरित्र-विषयक फुटकल पद अत्यंत सरस, भावपूर्ण एवं रमणीय रीति से इस ग्रंथ में संकलित है।

(४) कवितावली – ब्रजभाषा के कवित्त और सवैयों में यह ग्रंथ लिखित है। इसमें भी रामचरित्र-संबंधी फुटकल पद्य हैं। इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेक स्थल अत्यंत भावपूर्ण हैं। अन्त में विनय, कलियुग-प्रभाव तथा कवि के जीवन की कुछ बातों का संकेत करनेवाले छन्द हैं।

(५) दोहावली—५७३ दोहों का यह संग्रह है। इसका एक अंश—चातक-पचीसी—बहुत ही ललित है।

इनके अतिरिक्त कृष्णगीतावली, बरवै-रामायण, तुलसी-सतसई, रामाज्ञा-प्रश्न, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, वैराग्यसंदीपिनी, रामलाला-नहछू और हनुमान-बाहुक भी उनकी रचनाएँ हैं। कुछ अन्य कृतियाँ भी उनके नाम से कही जाती हैं—जिनके विषय में अभी संदेह बना हुआ है।

इन सब में गोस्वामी जी ने अपनी सेव्य-सेवकभाव भक्ति का प्रतिपादन किया है। इनके उपास्य इष्टदेव हैं राम, जो भक्तों के लिये तो अनन्त शक्ति-शील-सौन्दर्यशाली, सर्वशक्ति-संपन्न सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वर हैं, पर लोक और समाज के लिये वे लोक-रक्षक, धर्मपालक, मर्यादा पुरुषोत्तम राजा रामचन्द्र हैं।

गोस्वामी जी सचमुच ही अनुपम महाकवि, महात्मा, सन्त, भक्तवर, समाज-सुधारक और संस्कृति-रक्षक महापुरुष थे। गंगा-यमुना में जब तक जल रहेगा, उनकी रचनाएँ तब तक कवियों और आलोचकों को प्रेरणा, साहित्यिकों को आनंद, भक्तों को भक्ति तथा समाज को नया प्रकाश देती रहेंगी।

रामचरित मानस

जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन।
करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन॥
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करौ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन॥
कुंद इंदु सम देह, उमारमन करुनाअयन।
जाहि दीन पर नेह, करौ कृपा मर्दन मयन॥
बंदौं गुर पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रबि कर निकर॥

बंदौं गुर पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किये तिलक गुन गन बस करनी।
श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवै जासू।
उघरहिं बिमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।
जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान॥ १॥

गुरु पद मृदु मंजुल रज अंजन। नयन अमिय दृग दोष बिभंजन।
तेहि करि बिमल बबेक बिलोचन। बरनौं रामचरित भव मोचन।
बंदौं प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।
सुजन समाज सकल गुन खानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी।
साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुन मय फल जासू।
जो सहि दुख पर छद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जसु पावा।
मुद मंगल मय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू।
राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसैब्रह्म बिचार प्रचारा।
बिधि निषेध मय कलिमय हरनी। करम कथा रबिनंदिनि बरनी।
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सुलभ मुद मंगल देनी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बटु बिस्वासु अचल निज धरमा। तीरथ साज समाज सुकरमा।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहिं जन मुदित, मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥२॥

मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहि पिक बकौ मराला।
सुनि आचरज करइ जनि कोई। सतसंगति महिमा नहि गोई।
बालमीकि नारद घटजोनी। निज-निज-मुखनि कही निजहोनी।
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ।
बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सत संगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।
सठ सुधरहि सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनिमनिसम निज गुन अनुसरहीं।
बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सँकुचानी।
सो मो मन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गन गुन जैसे।

बंदौ संत समान चित, हिय अनहित नहिं कोउ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ॥
संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु॥३॥

बहुरि बंदि खलगन सति भाए। जे बिनु काज दाहिनेहु बाए।
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष बिषाद बसेरे।
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।
जे परदोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।
उदय केतु सम हित सब ही के। कुंभ करन सम सोवत नीके।
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।
बंदौं खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनै पर दोषा।
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनै सहस दस काना।
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही।
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन पर दोष निहारा।

उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जनु, बिनती करइ सप्रीति ॥४॥

मैं अपने दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा।
बायस पलिअहि अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।
बंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेई। मिलत एक दारुन दुख देई।
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोक जिमि गुन बिलगाहीं।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू।
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।

भलो भलाइहि पै लहै, लहै निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीचु ॥५॥

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।
भलेउ पोच सब बिधि उपजाये। गनि गुन दोष बेद बिलगाये।
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना।
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती।
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।
कासी मग सुरसरि कविनासा। मरु मारव महिदेव गवासा।
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन दोष बिभागा।

जड़ चेतन गुन दोषमय, बिश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार॥ ६॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता।
काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई।
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दल दुख दोष बिमल जसु देहीं।
खलउ करहिं पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।
कियेहु कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू।
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु बेद बिदित सब काहू।
गगन चढइ रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जल संगा।
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी।
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई।
सोई जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता।

ग्रह भेषज जल पवन तट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलक्खन लोग॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह॥
जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बंदौं सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि॥
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्व।
बंदौं किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब॥ ७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।
सीय राम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी।
जानि कृपाकरि किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू।
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। ताते विनय करौं सब पाहीं।
करन कहौं रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा।
सूझ न एकौ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ।
मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअँ जग जुरै न छाछी।
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई।
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषन धारी।
निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।
जे पर-भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं।
जग बहु नर सरि सर सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।
सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़ै जोई।

भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक विश्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास ॥८॥

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा।
हंसहि बक गादुर चातकही। हसहिं मलिन खल बिमल बतकही।
कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहुँ सुखद हास रस एहू।
भाषा भनिति भोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हसें नहिं खोरी।
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी।
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की।
राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।
कबि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू। सकल कला सब विद्याहीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबन्ध अनेक बिधाना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागर कोरे।

भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो विचारि सुनिहहि सुमति, जिन्हके बिमल बिबेक॥ ९॥

एहि मह रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा।
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी।
भनिति बिचित्र सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।
बिधुबदनी सब भाँति सवारी। सोह न बसन बिना बरनारी।
सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही।
जदपि कबित रस एकौ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं।
सोइ भरोस मोरें मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पनु पावा।
धूमहुँ तजै सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई।
भनिति भदेसि बस्तु भलि बरनी। रामकथा जग मंगल करनी।

मंगल-करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता-सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की।
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मनभावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥
प्रिय लागिहि अति सबहि मन भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥१०॥

मन मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं।
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सादर आवति धाई।
रामचरित सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाइ न कोटि उपाये।
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहि हरि जस कलि मल हारी।
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।
हृदय सिंधु मति सीपि समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
जौं बरखै बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुता मनि चारू।

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि, रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग॥११॥

जे जनमे कलि काल कराला। करतब बायस बेष मराला।
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलि मल भाँड़े।
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी।
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़ै कथा पार नहि लहऊँ।
तातें मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने।
समुझि बिबिध बिनती अब मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।
एतेहु पर करिहहिं ते असंका। मोहिं तें अधिक जे जड़ मरि रंका।
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावों। मति अनुरूप राम गुन गावों।
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा।
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।
समुझत अमित राम प्रभुताई। कहत कथा मन अति कदराई।

सारद सेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान॥१२॥

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई।
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा।
व्यापक बिश्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी।
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू।
गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।
बुध बरनहिं हरिजस असजानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी।
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा।
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।

अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परमलघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं ॥१३॥

एहि प्रकार बल मनहिं देखाई। करिहौं रघुपति कथा सुहाई।
ब्यास आदि कविपुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना।
चरन कमल बंदौं तिन्ह केरे। पूरहुँ सकल मनोरथ मेरे।
कलि के कबिन्ह करौं परिनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा।
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवौं सबनि कपट छल त्यागे।
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू।
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।
कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा।
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरें। सिअनि सोहावनि टाट पटोरें।
करहु अनुग्रह अस जिअ जानी। बिमल जसहि अनुहरै सुबानी।

सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥
सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहिं मति बल अति थोरि।
करहु कृपा हरि जस कहँउ पुनि पुनि कहौं निहोरि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कबि कोबिद रघुबर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल ॥
बंदौं मुनिपदकंजु, रामायन जेहिं निरमयेउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ॥
बंदौं चारिउ बेद, भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु ॥
बंदौं बिधि पद रेनु, भवसागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल बिष बारुनी ॥
बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन, बंदि कहौं कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि ॥१४॥

पुनि बंदौं सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता।
मज्जन पान पाप हर, एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका।
गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं दीनबन्धु दिनदानी।
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हितनिरुपधि सब बिधितुलसी के।
कलिबिलोकि जगहित हरगिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरजा।
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू।
होउ महेस मोहि पर अनुकूला। करहु कथा मुद मंगल मूला।
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ राम चरित चित चाऊ।
भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती। ससिसमाज मिलि मनहुँ सुराती।
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता।
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी।

सपनेहु साचेहु मोहि पर, जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ ॥१५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विनय-पत्रिका

(१)

बावरो रावरो नाह, भवानी !
दानि बड़ो दिन, देत दए बिनु, बेद बड़ाई भानी ।।
निज घर की घरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ।
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी ।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकवानी ।।
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिए औरहिं, भीख भली मैं जानी ।।
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंग-जुत सुनि बिधि की बर बानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी ।।

(२)

कबहुँक अंब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ ।।
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ।।
बूझिहैं 'सो है कौन' ? कहिबी नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ।।
जानकी जगजननि जन की किए बचन-सहाइ ।
तेरे तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ ।।

(३)

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि लोचन की॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छाति बिसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥

(४)

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध-दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों॥
कोटिहुँ मुख कहि जायँ न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार॥
विषय-बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातेँ सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि, बंसी-पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो।
हिय बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥
हैं स्रुति-बिदित ऊपाय सकल सुर केहि दीन निहोरै?
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै॥

(५)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तेँ न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं॥
परबस जानि हँस्यो इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

जा निज मन परिहरै विकारा।
तो कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआईँ।
त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि आहट तृन की नाईँ॥
असन, बसन, बसु, बस्तु बिबिध बिधि सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर, अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे॥
बिटप मध्य पुत्रिका, सूत्र महँ कंचुक बिनहिँ बनाए।
मन मँह तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए॥
रघुपति-भगति-बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-विलास जग बूझत बूझत बूझै॥

(७)

कैसे देउँ नाथहिं खोरि?
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि-भगति परिहरि तोरि॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि।
संग बस किये सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि॥
करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत-सिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि॥
लोभ मनहिं नचाव कवि ज्यों गरे आसा डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि॥
एतेहुँ पर तुम्हारो कहावत लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहिं छोरि॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(८)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा ते संत सुभाव गहौंगो ॥
यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुषबचन अतिदुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरिभक्त लहौंगो ॥

(९)

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीखन बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितनि, भए मुदमंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृदय सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँख जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासोँ होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥

कबितावली (लङ्कादहन)

(१)

बासव - बरुन-बिधि - बन तेँ सुहावनो,
दसानन को काननु बसंत को सिँगारु सो ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समय पुराने पात परत, डरत बात,
पालत, ललात रति-मार को बिहारू सो ।।
देखें बर बापिका तड़ाग बाग को बनाउ,
रागबस भो बिरागी पवन-कुमार सो ।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर,
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक-सोक-सारू सो ।

(२)

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरि-खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं ।
तैसो कपि कौतुकी डरात, ढीलो गात कै-कै
लात कै अघात सहै, जी में कहै, 'कूर हैं' ।।
बाल किलकारी कै-कै, तारी दै-दै गारी देत,
पाछे लागे, बाजत निसान ढोल तूर हैं ।
बालधी बढ़न लागी, ठौर-ठौर दीन्हीं आगी,
बिंध की दवारि, कैधों कोटिसत सूर हैं ।।

(३)

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।
कैधौं व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है ।।
'तुलसी' सुरेस-चापु, कैधौं दामिनी-कलापु,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
देखे जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजार्‍यौ अब नगर प्रजारी है" ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४)

'पानी ! पानी ! पानी !' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारैं, मनि-भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने, कहैं "क्योहूँ कोऊ पालिहै ?"
'तुलसी' मँदोवै मींजि हाथ, धुनि माथ कहै—
"काहू कान कियो न, मैंकह्यों केतो कालि है" ॥
बापुरो बिभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाई घने घर घालिहै" ॥

(५)

हाट, बाट, कोट ओट, अट्टनि, आगर, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहु,
व्याकुल जहाँ सोँ तहाँ लोग चलें भागि हैं ॥
बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं,
बूँदियाँ सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"चित्रहू के कपि सोँ निसाचर न लागि है"।

(६)

हाट-बाट हाटकु पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताप सों।
नाना पकवान यातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्ही भली भाँति भाय सों ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाहुने कृसानु पवमान सोँ परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों।
'तुलसी' निहारि अरिनारि दै-दै गारि कहैं,
"बवरे सुरारि बैर कीन्हों रामराय सोँ" ॥

(७)

रावन सो राजरोगु बाढ़त बिराट उर,
दिन-दिन बिकल, सकल सुखराँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध, मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो।
राम की रजाय तेँ रसायनी समीर सूनु,
उतरि पयोधि पार, सोधि सरवाक सो।
जातुधान-बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो॥

(८)

साहसी समीर-सूनु नीरनिधि लंघि, लखि,
लंक सिद्धिपीठ निसि जागो है मसान सो।
'तुलसी' बिलोकि महासाहस प्रसन्न भई,
देवी सिय-सारिखी, दियो है बरदान सो।
"बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानुकुलभानु को प्रतापभानु भानु सो।
करत बिसोक लोककोकनद, कोक-कपि",
कहै जामवंत—"आयो आयो हनुमान सो" ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

नगरु कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि-बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाइ सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावनु सो राजा रजतेज को निधानु भो॥
'तुलसी' तिलोक की समृद्धि, सौंज, संपदा,
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो।
तीसरे उपास बनवास सिंधु पास सो,
समाज महाराज जू को एक दिन दान भो॥

गीतावली

(१)

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?
प्रेम-पुलकि, उर लाइ सुवन सब, कहति सुमित्रा मैया॥
सुंदर तनु सिसु-बसन-विभूषन नखसिख निरखि निकैया।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि-करि लैहैं मातु बलैया॥
किलकनि, नटनि, चलनि, चितवनि, भजिमिलनि मनोहरतैया।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबिछलकिहै भरिअँगनैया॥
बालिबिनोद, मोर मंजुल बिधु लीला ललित जुन्हैया।
भूपति पुन्य-पयोधि उमँग, घर-घर आनंद बधैया॥
ह्वैहैं सकल सुकृत-सुख-भाजन लोचन-लाहु लुटैया।
अनायास पाइहैं जनमफल तोतरे बचन सुनैया॥
भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित-सरित अन्हवैया।
'तुलसी' तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२)

रघुबर बाल-छबि कहौं बरनि ।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभाहरनि ।।
बसी मानहुँ चरन-कमलनि अरुनता तजि तरनि ।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुनु करनि ।।
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि ।
जनु सुभग सिँगार-सिसु-तरु फर्‌यो है अद्भुत फरनि ।।
भुजनि भुजग सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि ।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ।।
लसत कर-प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि ।
जनु जलज-संपुट सुछबि भरि भरि धरति उर धरनि ।।
पुन्यफल अनुभवति सुतहिँ बिलोकि दसरथ-घरनि ।
बसति 'तुलसी'-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ।।

(३)

जबहिं रघुपति-संग सीय चली ।
बिकल-वियोग लोग-पुरतिय कहैं, अति अन्याउ, अली ।।
कोउ कहै मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली ।
कोउ कहै कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-विष-फलनि फली ।।
एक कहैं, बन जोग जानकी ! बिधि बड़ बिषम बली ।
तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ।।

(४)

नृपति-कुँवर राजत मग जात ।
सुन्दर बदन, सरोरुह-लोचन मरकत-कनक बरन मृदुगात ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंसनि चाप, तून कटि मुनिपट, जटा मुकुट बिच नूतन पात।
फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात॥
संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिन भूषन नव-सात।
सुखमा निरखि ग्राम-बनितनि के नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात॥
अंग-अंग अगनित अनंग-छबि, उपमा कहत सुकवि सकुचात।
सिय समेत नित तुलसिदास चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात॥

(५)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।

बरषाऋतु प्रवेश बिसेष गिरि देखत मन अनुराग॥
चहुँदिसि बन संपन्न, विहँग मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि भृंगनि॥
सिखर परम घनघटहिं मिलति बगपाँति, सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग।
मानहुँ जग-रचना विचित्र बिलसति बिराट अँग अंग॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि-झरि भरि-भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे॥

(६)

प्रभु सोँ मैं ढीठो बहुत दई है।

कीबी छमा, नाथ! आरति तेँ कही कुजुगुति नई है॥
येाँ कहि बार-बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है।
अपनो अदिन देखि हौं डरपत जेहि विष बेलि बई है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आए सदा सुधारि गोसाईँ जन तेँ बिगरि गई है।
थके बचन पैरत सनेह-सरि पर्‌यो मानो घोर घई है॥
चित्रकूट तेहि समय सबनि की बुद्धि विषाद हई है।
तुलसी राम-भरत के बिछुरत सिला सप्रेम भई है॥

(७)

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सोमृदु मूरति मन मोरे॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे॥
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कंठ-रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख, लेत सरद-सीस की छबि छोरे॥
जटा मुकुट सिर, सारस-नयननि गौहैं ताकत सुमौंहैं सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँदिसि मिति फोरे॥
चितवत चकित कुरंग-कुरंगिनि, सब भए मगन मदन के भोरे।
'तुलसिदास' प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेमबस थोरे॥

(८)

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि! जानौँ कछु, पै सकौँ कहि हौँ न॥
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन-कोन।
'हा' धुनि-खगी लाज पिँजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन॥
जेहि बाटिका बसति, तहँ खग मृग तजि-तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहुँ; तेहि मग पगु न धरयो तिहुँ पौन॥
'तुलसिदास' प्रभु! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख, हौ तुम्ह आरत-अरति-दौन॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

जो हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चंद्रमहिं निचोरि चैल-ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं ॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यों, सबहि को पापु बहावौं ॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलम्ब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु 'तुलसी'-प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केशवदास

हिन्दी के पंडित-कवियों में आचार्य केशवदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में हम उन्हें प्रथम दिग्गज आचार्य कहें तो अनुचित न होगा। केशवदास सनाढ्य ब्राह्मणों के वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह का नाम कृष्णदत्त और पिता का नाम काशीनाथ था। इनका जन्म संवत् १६१२ के आसपास और मृत्यु संवत् १६७६ के लगभग मानी जाती है। इनका घराना पंडितों का कुल था जहाँ संस्कृत के अच्छे-अच्छे पंडित होते आए थे। इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र भी भाषा के अच्छे कवि थे। ऐसे विद्वानों और कवियों के कुल में केशव का जन्म हुआ। ओरछा नरेश के भाई इंद्रजीत सिंह की सभा में ये रहते थे, वहाँ इनका बड़ा आदर-मान था। केशवदास गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। गोस्वामीजी से उनके साक्षात्कार के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

यद्यपि उनके पूर्व कृपाराम, मोहनलाल और करनेस कवि आदि ने साहित्यशास्त्र की थोड़ी-बहुत चर्चा आरंभ कर दी थी और साहित्य-शास्त्र के कुछ ग्रंथ लिखे जा चुके थे तथापि इस प्रसंग में केशवदासजी का नाम अधिक महत्त्वपूर्ण है। कारण यह कि संस्कृत साहित्यशास्त्र के ग्रंथों में निरूपित काव्यशास्त्र के अंगों का हिन्दी में प्रथम पर पूर्ण परिचय कराने का श्रेय केशवदास को ही है।

'रसिक-प्रिया' में परंपरागत परिपाटी के अनुसार केशवदास ने रस का विवेचन किया है और 'कविप्रिया' में अलंकारों का विवेचन है। केशवदास की उक्त दोनों रचनाएँ साहित्यशास्त्र के ग्रंथ है। इनके अनुसार काव्य में अलंकार का महत्त्व सबसे अधिक है। केशव के ये दोनों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रंथ हिन्दी के साहित्यशास्त्र के इतिहास में आरम्भिक ग्रन्थ की दृष्टि से अत्यंत महत्त्व पूर्ण हैं।

इनका सबसे प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ है 'रामचन्द्रिका'। इसमें केशव ने रामचन्द्र के यश और महिमा का गान किया है। यह ग्रन्थ प्रबंध महाकाव्य कहा जाता है। इस ग्रन्थ में नाटकीय संवादों की बहुलता, छंदों की प्रवाह-बाधक-विविधता तथा अलंकारों आदि की प्रयोग-निपुणता दिखाने का कवि ने अधिक प्रयास किया है। फलतः प्रबंध की कथा-धारा में यद्यपि कुछ शैथिल्य आ गया है, तथापि 'रामचन्द्रिका' में महाकाव्य के सभी शास्त्रीय लक्षण वर्त्तमान है। साथ ही साथ पाण्डित्य और काव्यशास्त्रीय गुणों की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' अनुपम ग्रन्थ हैं।

मानव के अन्तःकरण की वृत्तियों का उद्घाटन करने के लिये जिस भावुक संवेदनशीलता की आवश्यकता है, उसकी कुछ कमी होने पर भी रस और भावों की कलापूर्ण योजना में केशवदास का प्रकांड पांडित्य दिखाई पड़ता है। काव्य के बाह्य उपादानों को सजाने में केशव की शास्त्रमर्मज्ञ तीव्र बुद्धि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति का परिचय दिया है। कदाचित् उनके बौद्धिक पाण्डित्य ने हृदय के स्वाभाविक प्रवाह को इसी कारण दबा दिया है।

'रामचन्द्रिका' के संवाद उक्तिचातुरी और विनोद से पूर्ण हैं। इनमें नाटकीय वाग्वैदग्ध्य का नमूना ऊँचे दर्जे का दिखाई देता है। उनके संवादों में सजीवता का आनन्द आता है। इस ग्रन्थ में शुद्ध चमत्कार-पूर्ण अलंकारों का विलक्षण पाण्डित्य दिखाई देता है। संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर केशव ने अपने पाण्डित्य और रचना-कौशल की सुष्टुता को बड़ी सफलता के साथ रामचन्द्रिका में प्रदर्शित किया है। पर तुलसी की भाँति भाषा केशव के भावों की वशवर्त्तिनी न थी। अतः संस्कृत की चमत्कार पूर्ण उक्तियों की अपने काव्यानुरूप भाषा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा अभीष्ट अर्थाभिव्यक्ति करने में केशव को पूर्ण सफलता नहीं मिली है। इतना होने पर भी उनकी रचना में पाण्डित्य का प्रकर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।

केशव की काव्य-कल्पना में हृदय के योग की यद्यपि कुछ कमी दिखाई देती है, प्रकृति की सुषमा का उपयोग बहुधा आलंकारिक चमत्कार दिखाने के लिए उन्होंने किया है तथापि शास्त्रीय ज्ञान की प्रौढ़ता सर्वत्र वर्त्तमान है।

उनकी शैली में क्लिष्टता है, उनकी भाषा में यत्र-तत्र अर्थस्पष्टता की कमी दिखाई पड़ती है। प्रायः इसका कारण है, जैसा कि बताया जा चुका है, संस्कृत साहित्य की उक्तियों का असफल अनुवाद। पर जिन उक्तियों में जटिलता नहीं है, अतिसंक्षेप में बात कहने का अनावश्यक आग्रह नहीं हुआ है, वहाँ अनुवाद में केशव को सफलता मिली है।

थोड़े में यदि हम 'रामचंद्रिका' की आलोचना करे तो कह सकते हैं कि कविगत सहृदय भवुकता की कमी के रहने पर भी पाण्डित्य-व्यंजक शास्त्रीय चमत्कार, उक्ति-वैचित्र्य और शब्दक्रीड़ा का घटाटोप केशव को महत्ता प्रदान करता है। ऐसा जान पड़ता है कि 'रामचन्द्रिका' में छन्द, अलंकार, गुण, दोष आदि प्रायः सभी विषयों के शास्त्रीय उदाहरण संकलित हैं। इस काव्य में केशव का कवि-रूप उतना निखरा नहीं है, जितना पंडितरूप।

उक्त तीनों ग्रंथों के अतिरिक्त वीरसिंह देवचरित, विज्ञानगीता रतनबाव और जहाँगीरजसचन्द्रिका नाम की चार ग्रंथों की केशव ने रचना की है।

[रामाश्वमेध रामचंद्रिका से लिया गया है]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वंदना

(१)

बालक मृणालनि ज्यौं तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति हरति हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि कै कलंक अंक भवशीश शशि सम,
राखत हैं केशोदास दास के वपुख को।
साँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरै,
दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को॥

(२)

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति उदित उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तप वृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई।
भावी, भूत, बर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास कहूँ न बखानी काहू पै गई।
बर्णौं पति चारिमुख, पूत बर्णौं पाँच मुख,
नाती बर्णौं षटमुख, तदपि नई नई॥

(३)

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बताबैं न बतावैं और उक्ति को।
दरशन देत, जिन्हें दरशन समुझैं न,
नेति नेति कहै बेद छाँड़ि आन युक्ति को।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को।

रामाश्वमेध

विश्वामित्र बसिष्ठ सौं. एक समय रघुनाथ।
आरंभौ केशव करन, अश्वमेध की गाथ ॥१॥

राम—मैथिली समेत तौ अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक जज्ञ मैं कियो ॥
सीय-त्याग पाप ते हिये सों हौं महा डरौं।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं ॥२॥

कश्यप—धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुणि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥३॥

करिये युतभूषण रूपरयी।
मिथिलेशसुता इक स्वर्णमयी ॥
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये।
शुचि सों सब यज्ञ बिधान किये ॥४॥

हयशालन ते हय छोरि लियो ॥
शशिवर्ण सो केशव शोभरयो ॥
श्रुति श्यामल एक बिराजतु है।
अलि स्यौं सरसीरुह लाजतु है ॥५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल।
भूषि भूषन शत्रु दूषण छोड़ियौ तेहि काल॥
संग लै चतुरंग सैनहिं शत्रुहंता साथ।
भाँति भाँतिन मान दै पठये सो श्रीरघुनाथ॥६॥

जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग।
बोलि विप्रन दान दीजत यत्र तत्र सभोग॥
वेणु बीन मृदंग बाजत दुंदुभी बहु भेव।
भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नरदेव॥७॥

राघव की चतुरंग चमू-चय को गनै केशव राज-समाजनि ?
सूरतुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकन की पट साजनि।
टूटि परैं तिन तैं मुकुता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि।
बिंदु किधौं मुखफेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि॥८॥

राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानौ प्रताप हुतासन धूम सौं केसवदास अकासन माई।
मेटिकै पंच प्रभूत किधौं बिधि रेनुमयी नवरीति चलाई।
दुःख निवेदन को भव-भार कौ भूमि किधौं सुरलोक सिधाई॥९॥

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
शोषि शोषि जल भूरि भूरि थल गाथ की।
केसौदास आस पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपने ही हाथ की।

उन्नत नवाइ, नत उन्नत बनाइ भूप,
शत्रुन की जीविकाऽति मित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिशि दिशि जीति सेना रघुनाथ की॥१०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो०—दिशि विदिशनि अवगाहि कै, सुख ही केशवदास।
बालमीकि के आश्रमहिं, गयौ तुरंग प्रकाश ॥११॥

दूरहि ते मुनि बालक धाये।
पूजित ब्राजि बिलोकन आये॥
भाल को पट्ट जहीं लव बाँच्यो।
बाँधि तुरंगम जयरस राँच्यों ॥१२॥

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः।
तेन रामेण मुक्तोसौ बाजी गृह्णात्विमं बली ॥१३॥

घोर चमू चहुँ ओर तें गाजी।
कौनेहि रे यह बाँधिय बाजी॥
बोलि उठे लव मैं यह बाँध्यो।
यौं कहिकै धनुसायक साँध्यो॥
मारि भगाई दिये सिगरे यौं।
मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यौं ॥१४॥

योधा भगे वीर शत्रुघ्न आये।
कोदंड लीन्हे महा रोष छाये॥
ठाढ़ो तहाँ एक बालै विलोक्यो।
रोक्यौ तहीं जोर, नाराच मोक्यो ॥१५॥

शत्रुघ्न—बालक छाँडि दे छाँडि तुरङ्गम।
तोसों कहा करौं संगर-संगम॥
ऊपर वीर हिये करुना रस।
वीरहि विप्र हते न कहूँ यश॥१६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लव—कुछ बात बड़ी न कहौ मुख थोरे ॥
लव सों न जुरौ लवणासुर भोरे ॥
द्विजदोषन ही बल ताकौ सँहार्‍यौ ।
मरि ही जो रह्यौ, सो कहा तुम मार्‍यौ ॥१७॥

रामबंधु बान तीनि छोड़ियो त्रिशूल से ।
भाल में विशाल ताहि लागियो ते फूल से ॥
लव—घात कौन राजतात गात तैं कि पूजियो ।
कौन शत्रु तैं हत्यौ जो शत्रुहा लियो ॥१८॥

रोष करि बाँण बहु भाँ ति लव छंडियो ।
एक ध्वज सूत युग तीनि रथ खंडियो ॥
शस्त्र दशरत्थ-सुत अस्त्र कर जो धरै ।
ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरै ॥१९॥

रिपुहा तब बाण वहै कर लीन्हो ।
लवणासुर को रघुनंदन दीन्हो ॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री ।
मुरझाइ गिर्‍यौ धरणी महँ छत्री ॥२०॥

मोहे लव भूमि परे जबहीं ।
जय-दुंदुभि बाजि उठे तबहीं ॥
भुव ते रथ ऊपर आनि धरे ।
शत्रुघ्न सों यौं करुणानि भरे ॥२१॥

घोड़ो तबहीं तिन छोरि लयो ।
शत्रुघ्नहिं आनँद चित्त भयो ॥
लैकै लव कों ते चले जबहीं ।
सीता पहँ बाल गये तबहीं ॥२२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बालक—सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो वर बाजि।
चतुरंग सैन भगाइकै तब जीतियो वह आजि॥
उर लागि गौ शर एक कों भुव मैं गिरयो मुरझाइ।
वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बाजाइ॥२३॥

दो०—सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भई अचेत।
मनौ चित्र की पुत्रिका, मन क्रम वचन समेत॥२४॥

सीता—रिपु हाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यौं परैं करतार।
पति देवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार॥
ऋषि हैं नहीं, कुश है नहीं, लव लेइ कौन छुड़ाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाइ॥२५॥

कुश—दो०—रिपुहि मारि संहारि दल, यम ते लेउँ छुड़ाइ।
लवहि मिलैहौं देखिहौं, माता तेरे पाँइ॥२६॥

गहियो सिंधु सरोवरसो जेहि बालि बली वर सो बर पेरयो।
ढाहि दिये शिर रावन के गिरि से गुरु जात न जानत हेरयो॥
शूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आइ सो टेरयो।
राघव को दल मत्त करी सुर अंकुश दै कुश केशव फेरयो॥२७॥

दो०—कुश की टेर सुनी जहाँ, फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप विलोकि पतंग ज्यों, तदपि भयो बहु विघ्न॥२८॥

रघुनंदन को अवलोकत हीं कुश।
उर माँझ हयो शर शुद्ध निरंकुश॥
ते गिरे रथ ऊपर लागत हीं शर।
गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर॥२९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन।
भाजि गये तबहीं भट के गन ॥
काढ़ लियो जबहीं लव को शर।
कंठ लग्यौ तबहीं उठि सोदर ॥३०॥

दो०—मिले जो कुश लव कुशल सों, बाजि बाँधि तरुमूल।
रण महि ठाढ़े शोभिजैं, पशुपति गणपति तूल ॥३१॥

यज्ञमंडल मैं हुते रघुनाथ जू तेहि काल।
चर्म अंग कुरंग को शुभ स्वर्ण की सँग बाल ॥
आस पास ऋषीश शोभित शूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग वरणे युद्ध की सब गाथ ॥३२॥

भग्गुल—बालमीकि थल बाल गयो जू।
विप्र बालकन घेरि लयो जू॥
एक बाँचि पट घोटक बाँध्यो।
दौरि दीह धनुसायक साँध्यो ॥३३॥

भाँति भाँति सब सैन सँहार्‍यो।
आपु हाथ जनु ईस सँवार्‍यो ॥
अस्त्र-शस्त्र तब बंधु जो धार्‍यो।
खंड-खंड करि ताकहँ डार्‍यो ॥३४॥

रोष वेष वह बाण लयो जू।
इंद्रजीत लगि आपु दयो जू॥
काल रूप उर माँह हयो जू।
वीर मूर्छि तक भूमि भयो जू ॥३५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह वीर लै अरु बाजि। जबहीं चल्यो दल साजि॥
तब और बालक आनि। मग रोकियौ तजि काजि॥३६॥

तेहि मारियो तुव बंधु। तब ह्वै गयो सब अंधु॥
वह बाजि लै अरु वीर। रण मैं रह्यो रुपि धीर॥३७॥

दो० बुधि बल विक्रम रूप गुण, शील तुम्हारे राम।
काक पक्षधर बाल द्वै, जीते सब संग्राम॥३८॥

राम—गुणगण प्रतिपालक रिपुकुल घालक बालक ते रनरंता।
दसरथ नृप को सुत, मेरो सोदर, लवणासुर को हंता॥
कोऊ द्वै मनिसुत काक पक्षयुत, सुनियत हैं, जिन भारे।
यही जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक मारे॥३९॥

लक्ष्मण शुभ लक्षण बुद्धि विचक्षण लेहु बाजि को शोधु।
मुनि शिशु जनि मारेहु बंधु उधारेहु क्रोध न करेहु प्रबोधु।
बहु सहित दक्षिणा दै प्रदक्षिणा चल्यो परम रणधीर।
देख्यो मुनिबालक सोदर उपज्यो करुणा अद्भुत वीर॥४०॥

लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो।
कालहु ते अति भीम विशेख्यो॥
कुश—जो मैं कहौ सो कहा लव कीजै।
आयुध लैहौ कि घोटक दीजै॥४१॥

लव—बूझत हौ तौ यहै प्रभु कीजै।
मो असु दै अरु अश्व न दीजै॥
लक्ष्मण को दल सिंधु निहारो।
ताकहँ बाण अगस्त्य तिहारो॥४३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कौन यहै घटिहैं अरि घेरे।
नाहिन हाथ शरासन मेरे॥
नेकु जही दुचितो चित कीन्हों।
सूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हों॥४३॥

लै धनु बाण बली तब धायो।
पल्लव ज्यौं दल मारि उड़ायो॥
यौं दोउ सोदर सैन सँहारैं।
ज्यौं बन पावक पौन विहारैं॥४४॥

भागत हैं भट यौं लव आगे।
राम के नाम ते ज्यों अघ भागे॥
यूथप यूथ यौं मारि भगायो।
बात बड़े जनु मेघ उड़ायो॥४५॥

अति रोष रसै कुश केशव श्री रघुनायक सों रण रीति रचैं।
तेहि बार न बार भई बहु बारन खड्ग हनै न गनै विरचैं॥
तहँ कुंभ फटैं गजमोती कटैं ते चले बहु श्रोणित रोचि रचैं।
परिपूरण पूर पनारेन तैं, जनु पीक कपूरन की किरचैं॥४६॥

भगे चपे चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लक्ष्मणै।
भये रथी महारथी गयंद बृंद को गणै॥
कुशै लवै निरंकुशै बिलोकि बंधु राम को।
उठ्यो रिसाइ कै बली बँध्यो सो लाज दाम को॥४७॥

कुश—न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत।
विलोकि तुम्हें रण होहुँ न भीत॥
सदा तुम लक्ष्म उत्तमगाथ।
करौ जनि आपनि मातु अनाथ॥४८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्ष्मण—कहौ कुश जो कहि आवति बात।
विलोकत हौं उपवीतहि गात॥
इते पर बालवय क्रम जानि।
हिये करुणा उपजै अति आनि॥४९॥

विलोचन लोचत हैं लखि तोहि।
तजौ हठ आनि भजो किन मोहिं॥
क्षम्यों अपराध अजौं घर जाहु।
हिये उपजाउ न मातहि दाहु॥५०॥

हौं हतिहौं कबहूँ नहिं तोहीं। तू बरु बाणन बेधहि मोहीं।
बालक बिप्र कहा हनिए जू। लोक अलोकन में गनिए जू॥२२५

कुश—

लक्ष्मण हाथ हथ्यार धरौ। यज्ञ वृथा प्रभु को न करौं॥
हौं हय कौ कबहूँ न तजौं। पट्ट लिख्यौ सोइ बाँचि लजौं॥५१॥

बाण एक तब लक्ष्मण छंड्यो। चर्म बर्म बहुधा तिन खंड्यो॥
ताहि हीन कुश चित्तहि मोहै। धूम भिन्न जनु पावक सोहै॥५२॥

रोष वेष कुश बाण चलायो। पौन चक्र जिमि चित्त भ्रमायो॥
मोह मोहि रथ ऊपर सोए। ताहि देखि जड़ जंगम रोए॥५३॥

विराम राम जानिकै भरत्थ सों कथा कहैं।
विचारि चित्त माँझ वीर, वीर वे कहाँ रहैं॥
सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक तौ विलुप्त ह्वै।
अदेव देवता त्रसैं कहा ते बाल दीन द्वै॥५४॥

राम—जाहू सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहाँ यहि बार।
जाइ कै यह बात वर्णहु रक्षियो मुनिबार॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ और अनाथ।
देखिबे कहँ ल्याइयो मुनिबाल उत्तमगाथ ॥५५॥

भग्गुल आइ गए तबही बहु।
बार पुकारत आरत रक्षहु॥
वे बहु भाँतिन सैन संहारत।
लक्ष्मण तौ तिनकों नहिं मारत ॥५६॥

बालक जानि तजैं करुणा करि।
वे अति ढीठ भये दल संहरि॥
केहुँ न भाजत गाजत हैं रण।
वीर अनाथ भएँ बिन लक्ष्मण ॥५७॥

जानहु जै उनको मुनिबालक।
वे कोउ हैं जगती-प्रतिपालक॥
हैं कोउ रावण के कि सहायक।
कै लवणासुर के हित लायक ॥५८॥

भरत—बालक रावण के न सहायक।
ना लवणासुर के हित लायक॥
हैं निज पातक-वृक्षन के फल।
मोहत हैं रघुवंशिन के बल ॥५९॥

जीतहि को रण माँझ रिपुघ्नहि।
को करै लक्ष्मण के बल विघ्नहि॥
लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन।
लोक अलोकन पूरि रहे तन ॥६०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोड़इ चाहत ते तब ते तन।
पाइ निमित्त करेउ मन पावन ॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि।
पूत भएं तजि पाप समाजनि ॥६१॥

पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता ॥
दोष विहीनहिं दोष लगावै।
सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥६२॥

हमहूँ तेहि तीरथ जाइ मरैंगे।
सतसंगति दोष अशेष हरैंगे ॥
बानर राक्षस ऋच्छ तिहारे।
गवं चढ़े रघुवंशहि भारे ॥
तालगि कै यह बात बिचारी।
हौ प्रभु संतत गर्व-प्रहारी ॥६३॥

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर कों चले।
जामवंत चले विभीषण और बीर भले-भले ॥
को गनै चतुरङ्ग सेनहिं रोदसी नृपता भरी।
जाइकै अवलोकियो रण मैं गिरे गिरे से करी ॥६४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सेनापति

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सेनापति अनूपशहर (जिला बुलन्दशहर) के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १६४६ के आसपास माना जाता है, पर इनकी मृत्यु-तिथि का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इनके पितामह का नाम परशुराम, पिता का गंगाधर और गुरु का हीरामणि दीक्षित था। 'कवित्त-रत्नाकर' नामक इनका एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसकी समाप्ति संवत् १७०६ वि० में हुई। अतः यह निर्विवाद है कि उस समय तक कविवर अवश्य ही जीवित थे। यह भी कहा जाता है कि सेनापति जीवन के अंतिम समय में संन्यासी हो गए थे।

सेनापति राम के बड़े भक्त कवि थे। यह प्रसिद्ध है कि उन्हें राम का इष्ट था और राम को ही वे अपना इष्टदेव मानते थे। राम-चरित-सम्बन्धी घनाक्षरी छन्द में लिखी इनकी बहुत सी कविताएँ हैं। घनाक्षरी छन्द इन्हें बहुत प्रिय था। इसका एक कारण भी बताया जाता है। अपना नाम 'सेनापति' प्रत्येक छन्द में रखने का इनके हृदय में विशेष आग्रह था। सवैयों में उसके न बैठने से इन्होंने सवैया की रचना त्याग कर घनाक्षरी में रचनाएँ कीं।

सेनापति एक बड़े ही भावुक और सहृदय कवि थे। इनकी कविताओं में सरसता और काव्य-सौन्दर्य भरा हुआ है। प्रकृति-सुषमा का वर्णन करनेवाले हिन्दी के मध्यकालीन कवियों में सेनापति का स्थान बहुत ऊँचा है। उनके समान षड्ऋतु का मनोरम, हृदयहारी और चित्रात्मक वर्णन हिन्दी के किसी शृंगारी कवि ने नहीं किया है। उनका वर्णन देखकर सेनापति के हृदय का प्रकृति-प्रेम और प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म-निरीक्षण भली भाँति जाना जा सकता है। प्रकृति के कोमल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और उग्र चित्रों के निरीक्षण, उनकी सरस उद्भावना तथा मानव-हृदय पर पड़नेवाले उनके प्रभावों का उत्कृष्ट रूप उनके काव्य में दिखाई देता है। रामचरित का वर्णन करनेवाली उनकी कविता में भी पर्याप्त ओजस्विता दिखाई देती है। उनकी भक्ति-विषयक रचनाओं में भी एक अनूठापन है, रमणीय चमत्कार है। उनकी सभी कविताएँ प्रायः प्रभावोत्पादक और मनोहर हैं।

सेनापति की शैली में प्रौढ़ता है, वह माधुर्य-गुण से पूर्ण है। इनकी कविता में मर्म को स्पर्श करने की क्षमता है, साथ ही प्रांजल प्रौढ़ता भी है। सरस भावुकता के साथ-साथ इनकी रचना में चमत्कार भी पर्याप्त है। कहीं-कहीं विरामों पर अनुप्रास का निर्वाह और यमक का चमत्कार बड़ा ही कलापूर्ण हो उठा है। यमक, अनुप्रास और श्लेष आदि शब्दालंकारों की प्रचुरता होने पर भी इनकी रचना में न तो कृत्रिमता है और न शैथिल्य। श्लेष के प्रयोग में तो ये परम निपुण थे। भाषा पर भी ऐसा अधिकार कम कवियों का दिखाई देता है। इनकी ब्रजभाषा में संस्कृत पदावली की प्रचुरता नहीं है, वरन् प्रचलित ब्रजभाषा की मधुर पदावली का बड़ा ही सजीव और सफल प्रयोग हुआ है। अपनी कविता के सम्बन्ध में सेनापति ने जो गर्वोक्ति की है—

सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है—

वह अनुचित नहीं वरन् ठीक ही जान पड़ती है। 'कवित्त-रत्नाकर' के अतिरिक्त 'काव्य-कल्पद्रुम' भी इनका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ब्रजभाषा के मध्यकालीन कवियों में सेनापति का अपना विशेष स्थान है और उनकी ऋतु-वर्णन-विषयक कविताएँ बहुत लोक-प्रिय हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋतु-वर्णन

ग्रीष्म

बृख को तरनि तेज सहस्र किरनि तपै,
ज्वालनि के जाल बिकराल बरखत हैं।
तचति धरनि, जग झरत झरनि, सीरी,
छाँह को पकरि पंथी-पंछी बिरमत हैं॥
सेनापति, नेक दुपहरी ढरकत होत,
घमका बिखम जो न पात खरकत हैं।
मेरे जान पौन सीरी ठौर को पकरि कौनौ,
घरी एक बैठि कहूँ घाम बितवत है॥ १॥

सेनापति उवै दिनकर के चलत लुव,
नदी-नद-कुवैं कोपि डारत सुखाइकै।
चलत पवन, मुरझात उपबन-बन,
लाग्यौ है तपन जग्यौ भूत लौं तचाइकै॥
भीखम तपत रितु ग्रीखम, सकुच तातें,
सीकर चपत तहखाननि में जाइकै।
मानो सीतकाल सीतलता के जमाइबै को,
राखे हैं बिरंचि बीज धरा में छिपाइकै॥ २॥

सेनापति, तपन तपत उतपति तैसो,
छायो रितुपति, तातें बिरह बरत हैं।
लुवन की लपटें ते चहुँ ओर लपटैं, पै,
ओढ़े सलिल पटै न चैन उपजत है॥
गगन गरद-धूँधि दसौ दिसा रही रूँधि,
मानो नभ भारु को भसम बरसत है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बरनि बताई छिति ब्योम की तताई, जेठ,
आयो आततताई, पुटपाक सो करत है ॥ ३ ॥
तपत है जेठ, जग जात है जरनि जर्‍यो,
ताप की तरनि मानो झरनि झरत है।
इतहि असाढ़ उठी नूतन सघन घटा,
सीतल समीर हिय धीरज हरत है ॥
आधे अंग ज्वालनि के जाल विकराल, आधे,
सीतल सुभग मोद ही-तल भरत है।
सेनापति, ग्रीखम तपति रितु भीखम है,
मानो बड़वानल सों बारिधि जरत है ॥ ४ ॥

वर्षा

दामिनि दमक, सुरचाप की चमक, स्याम—
घटा की घमक अति घुरबान घोर तें।
कोकिला-कलापी कल कूजत हैं जित-तित,
सीतल है ही-तल समीर-झकझोर तें ॥
सेनापति, आवन कह्यो है मन-भावन, सो,
लाग्यो तरसावन बिरह-जुर जोर तें।
आयो, सखि, सावन बिरह-सरसावन,
लग्यो है बरसावन सलिल चहुँ ओर तें ॥ ५ ॥
दूरि जदुराई, सेनापति, सुखदाई, देखो,
आई रितु पावस, न पाई प्रेम-पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी सु,
दरकी सुहागिन की छोह-भरी छतियाँ ॥
आई सुधि बर की हिये में आनि खरकी,
सुमिरि प्रान-प्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बीती औधि आवन की लाल मनभावन की,
डग भई बाँवन की सावन की रतियाँ ॥ ६ ॥

सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारिहू दिसनि घूमरत भरि तोइ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात केहूँ भाँति,
आने हैं पहार मानो काजर के ढोइकै।
घन सों गगन छयो, तिमिर सघन भयो,
देखि न परत मानो रबि गयो खोइकै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि,
मेरी जान, याही तें रहत हरि सोइकै ॥ ७ ॥

शरद्

खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेन,
सेनापति, मानो श्रृंग फटिक-पहार के।
अंबर अडंबर सों घुमड़ि घुमड़ि छन,
छिछिकैं छछारै छिछि आछिन उछार के।
सलिल सहल, मानो सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब को साजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घनकार के ॥ ८ ॥

बिबिध बरन सुरचाप के न देखियत,
मानो मनि-भूखन उतारिबे के भेस है।
उन्नत पयोधर बरसि रस गिरि रहे,
नीके न लगत फीके, सोभा को न लेस है ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सेनापति, आए तें सरद रितु फूलि रहे,
आस-पास कास खेत, सेत चहुँ देस है।
जीवन-हरन कुँभजोनि उदये तं भई,
बरखा बिरिध ताके सेत मानो केस हैं ॥९॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति सेना-
पति, है सुहाति, सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं॥
उदित विमल चंद, चाँदनी छिटकि रही,
राम के सो जस अध-ऊरध गगन है।
तिमिर-हरन भयो, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर-मगन है॥ १० ॥

हेमंत

सीत को प्रबल, सेनापति, कोपि चढ़्यो-दल,
निबल अनल दूरि गयो सियराइकै।
हिम के समीर तेई बरखैं बिखम तीर,
रही है गरम भौन-कोकनि में जाइकै॥
घूम नैन बहै, लोग होत हैं अचेत तऊ,
हिय सों लगाइ रहे नेक सुलगाइकै।
मानो मीत जानि महा-सीत तें पसारि पानी;
छतियाँ की छाँह राख्यो पावक छपाइकै।११।

आयो, सखि, पूसौ, भूलि कंत सों न रूसो, केलि
ही सों मन मूसौ जीव ज्यों सुख लहियतु है।
दिन की घटाई, रजनी की अघटाई, सीत-
ताइ हू को, सेनापति, बरनि कहतु है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

याही तें निदान प्रात बेगि उदै होत नाहिं,
द्रोपदि के चीर को सो रात को महतु है।
मेरे जान सूरज पताल तप-ताले माँझ,
सीत को सतायो कहलाइकै रहतु है ॥१२॥

शिशिर

सिसिर तुखार के बुखार से उखारत है,
पूस बीते होत सून हाथ-पाँइ ठिरिकै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति, गई कछु सोचिकै सुमिरिकै॥
सीत ते सहसकर सहस-चरन ह्वैकै,
ऐसे जात भाजि, तम आवत है घिरिकै।
जौ लौं कोक कोकी सों मिलत तौ लौं होत रात,
कोक अधबीच ही तें आवत है फिरिकै ॥१३॥

सिसिर में ससि को सरूप पावै सविताहू,
घामहूँ में चाँदनी की दुति दमकति है।
सेनापति, होत सीतलता है सहसगुनी,
रजनि की झाँई बासर में झमकति है॥
चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को,
ससि संक पंकजनी फूलि न सकति है ॥१४॥

वसन्त

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं बिलास सँग,
स्यामरंग-मयी मानो मसि में मिलाए हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तहाँ मधु-काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय-पवन उपबन-बन धाए हैं॥
सेनापति, माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाव कविता के मन आए हैं।
आधे अँग सुलगि सुलगि रहे, आधे मानो,
बिरही-दहन काम कैला परचाए हैं॥१५॥

केतक, असोक, नव-चंपक, बकुल-कुल,
कौन धौं बिजोगिन को ऐसो बिकराल है।
सेनापति, साँवरे की सुरति की सुरति की,
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है॥
दच्छिन पवन एती ताहू की दवन, जऊ,
सूनो है भवन, परदेस प्यारो लाल है।
लाल हैं प्रबाल फूले देखत बिसाल जऊ,
फूले और साल पै रसाल उर साल है॥१६॥

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिहारी

महाकवि बिहारी का पूरा नाम बिहारीलाल था। ये माथुर चौबे थे। सं० १९६० के आसपास ग्वालियर के निकटस्थ बसुवा गोविंदपुर में इनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि इनकी बाल्यावस्था बुँदेलखंड में बीती और युवावस्था में वे अपनी ससुराल मथुरा में जाकर रहने लगे थे। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयसाह (महराज जयसिंह) के दरबार में रहा करते थे और उनके राजकवि थे। एक किंवदंती प्रचलित है कि जिस समय बिहारी जयपुर पहुँचे उस समय महाराज ने छोटी रानी के प्रेम में लीन होकर राजकाज देखना छोड़ दिया था। इस पर बिहारी ने यह दोहा लिखकर किसी प्रकार उनके पास भिजवाया—

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सो बँध्यौ, आगे कौन हवाल॥

कहते हैं इस पर महाराज बाहर निकले और तभी से इनका मान बढ़ गया और ये दोहे बनाने लगे। ऐसा सुन जाता है कि कविवर बिहारी सरस दोहे बना-बनाकर महाराज को सुनाते और उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशरफी पुरस्कार मिलता। इसी प्रकार लगभग सात सौ दोहे बने—जो 'बिहारी-सतसई' के नाम से हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हैं।

बिहारीलालजी मुख्यतः श्रृंगाररस के कवि हैं। वैसे तो उन्होंने भक्ति और नीति के भी कुछ दोहे लिखे हैं—जो बिहारी-सतसई में मिलते हैं—किन्तु श्रृंगाररस के दोहों के कारण ही बिहारी की प्रसिद्धि अधिक है। सचमुच ही उनकी सतसई हिन्दी-साहित्य में श्रृंगार-रस का एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनूठा ग्रन्थ है और हिन्दी के शृंगार-ग्रंथों में इसका स्थान बहुत ऊँचा है।

इस ग्रंथ का एक-एक दोहा हिन्दी-साहित्य का रत्न है। इस ग्रंथ की लोक-प्रियता का प्रमाण इस पर लिखित उन पचासों टीकाओं से मिलता है जो अनेक रूपों में—गद्य, पद्य, दोहा, कुंडलियाँ, कवित्त, सवैया, संस्कृत और उर्दू तक में—लिखी गई हैं। इसी से दूसरी कोई रचना न होने पर भी केवल इसी एक ग्रंथ की सरसता, रमणीयता और महत्ता के कारण बिहारी अमर महाकवि हो गए हैं।

रीतिकालीन शृंगारी कवियों में बिहारी का स्थान सर्वोच्च है। उनकी रचना अपने युग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। मुसलमानी शासन के दृढ़ हो जाने के कारण उस समय वीर-काव्यों की रचना के लिये अवकाश नहीं रह गया था। देश के राजागण विलास-पूर्ण जीवन की ओर झुकते चले जा रहे थे और राजाश्रित कवियों की रचनाएँ बहुधा आश्रयदाताओं का मनोरंजन करती थीं। अतः उत्तर-मध्यकालीन हिन्दी-कवियों की रचनाओं का विषय बहुधा शृंगार रस हुआ करता था। बिहारी की रचना में भी युग की प्रवृत्ति पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुई है।

'बिहारी-सतसई' मुक्तक काव्य है। उसका प्रत्येक दोहा अपने में पूरा है। उसका संबंध किसी अन्य दोहे के साथ नहीं है। सतसई का एक-एक दोहा एक-एक रत्न है। छोटे-से दोहे में बिहारी की सरस कल्पना ने अद्भुत सफलता के साथ भाव कूट-कूट कर भर दिया है। थोड़े शब्दों द्वारा पूरा-पूरा भाव-चित्र अंकित करने में बिहारी को विलक्षण सफलता मिली है। अपने दोहों द्वारा उन्होंने गागर में सागर भरा है। उनकी इसी विशेषता के कारण किसी ने कहा है।—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत को छोटे लगैं, घाव करै गंभीर॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनी बात को सरस, रमणीय और प्रभावोत्पादक ढङ्ग से कहने की बिहारी में अद्भुत क्षमता थी। उनके दोहे सहृदय पाठकों के आँखों के सामने चित्र खड़ा कर देते हैं। रस-व्यंजना और भाव-व्यंजना के साथ-साथ शृंगार रस के विविध स्वरूपों और नाना अवस्थाओं के बड़े ही आकर्षक चित्र बिहारी ने खींचे हैं। उनके दोहों में अलंकारों की योजना भी प्रायः बहुत ही भावोत्कर्षक तथा कलात्मक हुई। बहुज्ञ होने के कारण उनकी सूक्तियों में वर्णन-वैचित्र्य और शब्द-वैचित्र्य भी प्रभावोत्पादक हैं। तत्कालीन उर्दू-कवियों के संपर्क-जन्य प्रभाव से बिहारी ने कहीं-कहीं भाव-हीन कल्पना के चित्राङ्कन में बहुत दूर की उड़ान ली है। पर ऐसे स्थल उनकी रचना में बहुत कम हैं।

बिहारी की ब्रजभाषा चलती और धारावाहिक होने पर भी साहित्यिक है। उसमें माधुर्य गुण है, व्याकरणानुरूपता है और साथ ही वह मँजी हुई, सुपरिष्कृत भी है।

रीतिकालीन अन्य आचार्य-कवियों की भाँति साहित्य-शास्त्र का शृंगार-ग्रंथ न लिखने पर भी बिहारी ने 'नखशिख' 'नायिका भेद' 'षड्ऋतु' आदि विषयों के बहुसंख्यक दोहे लिखे हैं। अतएव उनको रीतिकाल का प्रतिनिधि शृंगारीकवि कहना अनुचित न होगा। अपनी एकमात्र ललित कृति 'सतसई' के कारण बिहारी को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चिरकाल तक आदर और प्रतिष्ठा मिलती रहेगी।

सतसई के दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तनकी झाईं परे, श्याम हरित दुति होय ॥१॥

तौ लगु या मन-सदन मैं हरिआवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट खुलैं न कपट-कपाट ॥२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैं तपाइ त्रयताप सौं राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आऐं यहाँ पुलकि पसीजै स्यामु ॥३॥

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यौं अनेक अधमनु दियौ।
जौ बाँधैं ही तोषु, तौ बाँधौ अपनैं गुननु ॥४॥

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयागु ॥५॥

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु काँचो काँच सौं।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥६॥

करौ कुबतु जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल ॥७॥

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी, जगत-गुरु जग-नायक, जग-बाइ ॥८॥

थोरैं ई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह, मनौ भए आज-काल्हि के दानि ॥९॥

जगतु जनायो जिहिं सकलु, सो हरि जान्यो नाँहि।
ज्यौं आँखिन सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि ॥१०॥

ज्यौं ह्वै ह्वौं त्यौं होउँगो, हौं, अपनी चाल।
हठु न करौ, अति कठिन ह्वै मो तारिबौ गुपाल ॥११॥

स्वारथु, सुकृत न, श्रमु वृथा, देखि बिहंग, विचारि।
बाज पराऐं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ॥१२॥

वे न इहाँ नागर, बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवँई-गाँवँ गुलाब ॥१३॥

चल्यौ जाइ ह्याँ को करै हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु इहिं पुर बसैं धोबी, ओड़, कुँभार ॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहिँ पावसु, ऋतुराजु यह, तजि, तरवर चित भूल।
अपतु भएँ बिनु पाइहै क्यौँ नव दल, फल, फूल ॥१५॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब अलि, रही गुलाब मैँ अपत, कँटीली डार ॥१६॥

इहीँ आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैँ मूल।
ह्वैहैँ फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल ॥१७॥

इक भीजैँ चहलैँ परैँ, बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै वै-नै चढ़ती बार ॥१८॥

छकि रसाल-सौरभ सने मधुर माधुरी गंध।
ठौर ठौर झौँरत झँपत झौँर-झौँर मधु-अंध ॥१९॥

नहि परागु नहि मधुर मधु नहि विकास यहि काल।
अली कली ही मैं फँस्यौ, आगै कौनु हवाल ॥२०॥

लग्यौ सुमन, ह्वैहै सफलु, आतप-रोसु निवारि।
बागी, बारी आपनी सीँचि सुहृदता-बारि ॥२१॥

गोधन, तू हरख्यौ हियैँ, घरि इक लेहु पुजाइ।
समुझ परैगी सीस पर परत पसुन कै पाइ ॥२२॥

अरे, परेखौ कौ करै, तुँही बिलोकि बिचारि।
किहिँ नर, किहि सर राखियै खरैँ बढ़ैँ परिवारि ॥२३॥

पटु पाँखैँ, भखु काँकरैँ सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत मैँ, एकै तुहीँ बिहंग ॥२४॥

तंत्री-नाद, कवित्त-रस सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥२५॥

बैठि रही अति सघन बन पैठि सदन-तन माँहि।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौ चाहति छाँहि ॥२६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाहिँ न ए पावक प्रबल, लुवैँ चलैँ चहुँ पास।
मानहु बिरह बसंत के ग्रीषम लेत उसाँस ॥२७॥

अरुन-सरोरुह कर-चरन, दृग खंजन मुख चंद।
समै आइ सुंदरि सरद काहि न करति अनंद ॥२८॥

लगत सुभग सीतल किरन निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह ससी-भ्रम सूर त्यौँ रहति चकोरी चाहि ॥२९॥

चुवतु स्वेद-मकरंद-कन, तरु तर तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तैँ थक्यौ बटोही बाइ ॥३०॥

रुक्यौ साँकुरे कुंज-मग, करत झाँझि झकुरात।
मंद मंद मारुत-तुरँग खूँदत, आवत जात ॥३१॥

रनित - भृगु - घंटावली, झरित - दान - मधुनीर।
मंद-मंद आवत चल्यौ, कुंजरु - कुंज - समीर ॥३२॥

कहत सबैं, बेँदी दियैँ आँकु दसगुनौ होतु।
तिय-लिलार बेँदी दियैँ अगिनितु बढ़तु उदोतु ॥३३॥

भूषन-भारू सँभारिहै क्यौँ इहिँ तन सकुमार।
सूधे पाइ न धर परेँ सोभा हीँ कैँ भार ॥३४॥

न ए विससियहि लखि नए, दुरजन दुसह-सुभाइ।
आटै परि प्राननु हरत, काँटैँ लौँ लगि पाइ ॥३५॥

मैँ बरजी कै बार तूँ, इत कित लेति करौट।
पँखुरी लगैँ गुलाब की परिहै गात खरौट ॥३६॥

तन भूषन, अंजन दृगनु, पगनु महावर-रंग।
नहिँ सोभा कौँ साजियतु, कहिवैँ हीँ कौँ अंग ॥३७॥

पाइ महावरु दैँन कौँ, नाइनि बैठी आइ।
फिरि-फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ ॥३८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अजौँ तरयौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनु कैँ सँग ॥३९॥

हौं रीझी, लखि रीझिहौ, छबिहिँ छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति, मिलत मालती माल ॥४०॥

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रति पाली, आली, अनत, आए बनमाली न ॥४१॥

छिप्यौ छबीलो मुँह लसै, नीलौँ अंचल-चीर।
मनो कला-निधि झलमलौ, कालिंदी कैँ नीर ॥४२॥

बेसर-मोती-दुति-झलक परी अधर पैँ आइ।
चूनो होय न, चतुर तिय, क्यौँ पट पोँछ्यौ जाइ ॥४३॥

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौँह करै, भौंहनु हँसै, दैन कहै, नटि जाइ ॥४४॥

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई, नई यह रीति ॥४५॥

हौँ ही बौरी बिरह बस, कै बौरी सब गाँउ?
कहा जानि ये कहत हैँ, ससिहिँ सीतकर नाँउ ॥४६॥

अंत मरैँगे, चलि जरैँ चढ़ि पलास की डार।
फिरि न मरे मिलि हैं, अली, ए निरधूम अँगार ॥४७॥

धूरवाँ होहिँ न, अलि, उठैँ धुआँ धरनि चहुँ कोद।
जारत आवत जगत कौँ पावस प्रथम-पयोद ॥४८॥

नैकुँ न झुरसी बिरह-झर नेह लता कुम्हिलाति।
नितु मितु होति हरी हरी, खरी झालरति जाति ॥४९॥

सायक-सम मायक नयन, रंग त्रिविध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥५०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरि-छबि-जल जब तैँ परे, तब तैँ छिनु बिछुरैँ न।
भरत, ढरत, बूड़त, तरत, रहत घरी लौँ नैन ॥५१॥

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैँ न।
हरिनी के नैनानु तैँ, हरि, नीके ए नैन ॥५२॥

खेलन सिखए, अलि, भलैँ चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार ॥५३॥

रस सिँगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु, नैन ॥५४॥

नेहु न, नैननु कौँ कछू, उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नितप्रति रहैँ, तऊ न प्यास बुझाइ ॥५५॥

मानहुँ बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबैँ काज।
दृग-पग-पोँछन कौँ करे भूषन पायंदाज ॥५६॥

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन!
मानहु सुरसरिता-बिमलजल तेउछरत जुग मीन ॥५७॥

इन दुखिया अँखियानु कौँ सुखु सिरज्यौई नाहि।
देखैँ बनै न देखतै, अनदेखैँ अकुलाहि ॥५८॥

मानहु मुँह-दिखरावनी दुलहिहिँ करि अनुरागु।
सासु सदनु, मन ललन हूँ, सौतिनु दियौ सुहागु ॥५९॥

भृकुटी-मटकनि, पीतपट चटक, लटकती चाल।
चलचख-चितवनि चोरि चितु लियौ बिहारी लाल ॥६०॥

नख-सिख-रूप भरे खरे तौ माँगत मुसकानि।
तजत न लोचन लालची ए ललचौहीँ बानि ॥६१॥

मोहिँ भरोसौ रीझिहै, उझकि झाँकि इक बार।
रूप रिझावनहारु वह, ए नैना रिझवार ॥६२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नंदत करी इहिँ दिसि नंद-किसोर ॥६३॥

त्यौं-त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं-ज्यौं पियत अघाइ।
सगुन सलोने रूप की, जु न चख-तृखा बुझाइ ॥६४॥

ललन-चलनु सुनि, पलन मैं अँसुवाँ झलके आइ।
भई लखाइ न सखिन हू, झूठे ही जमुहाइ ॥६५॥

पलनु प्रगटि, बरुनीनु बढ़ि, नहिँ कपोल ठहरात।
अँसुआँ परि छतियाँ छिनकु, छनछनाइ छिपि जात ॥६६॥

इत आवत चलि जात उत, चली छ-सातक हाथ।
चढ़ी हिँडोरे सी रहै, लगी उसासनि साथ ॥६७॥

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूषण

महाकवि भूषण वीर रस के बड़े प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। तिकवाँ-पुर (जि० कानपुर) के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं० रत्नाकर त्रिपाठी के चार पुत्र थे—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ। इनमें अन्तिम को छोड़ बाकी तीनों ही कवि और साहित्यिक थे। इन्हीं में भूषण भी एक थे—जिनके वास्तविक नाम का पता अब तक नहीं लगा। कविता में वे अपना नाम भूषण लिखा करते थे।

इनका जन्म सं० १७६० वि० में हुआ था। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने कविभूषण की इन्हें उपाधि दी थी। वही 'भूषण' नाम इनका प्रसिद्ध हुआ। वीररसराज महाकवि भूषण का जीवन कई राजाओं के आश्रय में बीता—पर इनका सबसे अधिक आदर और मान छत्रपति महाराष्ट्र-केसरी महाराज शिवाजी के यहाँ हुआ। बुँदेल-खंड के प्रसिद्ध वीर पन्ना के राजा महाराज छत्रसाल के यहाँ भी इनका बड़ा आदर और सम्मान हुआ। कहा जाता है कि महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी उठाने के लिए अपना कंधा लगाया था—जिस पर इन्होंने कहा था—"सिवा को बखानौं कि बखानौं छत्रसाल को।" ऐसा कहा जाता है कि एक-एक छंद पर शिवाजी ने इन्हें लाखों रुपये दिए।

रीतिकाल के भीतर अधिकतर शृंगाररस की ही कविता हुई। यदि कुछ कवियों ने वीररस की कविताएँ लिखीं तो प्रायः अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए उनकी कल्पित प्रशंसा में ही लिखीं। पर भूषण कवि ने छत्रसाल और शिवाजी की प्रशंसा में जो रचनाएँ की उनमें चापलूसी या दरबारदारी नहीं है वरन् सच्चे वीरों की सच्ची प्रशंसा है। हिन्दूजाति के हृदय में इन वीरों की प्रति उस समय जो भावना थी, भूषण की कविता उसी का प्रतिनिधित्व करती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। काव्य-संबंधी कल्पना तथा उपमा या अन्य अलंकारों की योजना के कारण यद्यपि वर्णन जहाँ-तहाँ अत्युक्तिपूर्ण अवश्य हो गए हैं तथापि कहीं भी इतिहास-विरुद्ध घटनाएँ वहाँ नहीं दिखाई देतीं। भूषण वस्तुतः एक सच्चे राष्ट्रीय कवि थे।

इसी कारण वीरता से ओत-प्रोत भूषण का काव्योद्गार समस्त जनता के लिए कंठहार सिद्ध हुआ। यह एक मार्मिक दृष्टान्त है। जनभावनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला कवि जन-विश्रुत होता है और उस कवि की कीर्ति तब तक बनी रहती है जब तक जनहृदय का उसे समर्थन प्राप्त रहता है। अपने-अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में यशोगान करनेवाले सहस्रों कवियों के चाटुकारिता पूर्ण न जाने कितने ग्रंथों का कोई नाम भी नहीं जानता, न उनकी कीर्ति गाता है। भूषण ने लोभ या चाटुकारिता के वश होकर शिवाजी और छत्रसाल की झूठी महिमा नहीं गाई है वरन् औरंगजेब के धर्मद्वेषपूर्ण कठोर शासन से त्रस्त जनता ने उस समय जिस आदर और स्नेह भाव से महाराष्ट्र केसरी शिवाजी और वीरवर छत्रसाल को देखा, उसी का कीर्तिगान उन्होंने किया है। आज तक भी इन वीरों का स्मरण बड़ी श्रद्धा के साथ हिन्दू-जनता करती है। शिवाजी के दरबार में पहुँचने के पहले भी भूषण अन्य राजाओं के दरबार में रहे, पर उनकी झूठी प्रशंसा भूषण ने नहीं की। भूषण हिंदूजाति के सच्चे प्रतिनिधि कवि थे।

वीर रस के इस कवि की कविताएँ ओजस्विनी और वीरदर्प से परिपूर्ण हैं। इनके दो चार कवित्त शृंगार के भी मिलते हैं पर वे नगण्य हैं। रीतिकालीन परिपाटी पर भूषण ने 'शिवराज-भूषण' नामक अलंकार ग्रंथ लिखा, पर उसके लक्षणों की भाषा में कहीं-कहीं अस्पष्टता है और कुछ उदाहरण भी ठीक नहीं है। पर वीररस की उनकी कविताएँ अत्यंत ओजपूर्ण और उत्साहयुक्त हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याकरण की दृष्टि से उनकी भाषा कुछ अव्यवस्थित है, नियमों का पालन ठीक-ठीक नहीं हो पाया है और वाक्य-रचना भी कहीं-कहीं गड़बड़ है। शब्दों के रूपों में भी काफी तोड़-मरोड़ दिखाई पड़ता है और कभी-कभी बिलकुल गढ़ंत रूप भी मिलते हैं। पर जिन कविताओं में ये दोष नहीं हैं, वे बहुत ही प्रभावोत्पादक और सशक्त हैं। 'शिवा-बावनी', 'छत्रसाल-दसक' तथा 'शिवराज भूषण' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'भूषण-उल्लास', 'दूषण-उल्लास' और 'भूषण-हजारा'—ये अन्य तीन ग्रंथ भी इनके बताए जाते हैं।

(१) शिवा बावनी

इन्द्र जिमि जृंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यौं सहसबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम-दण्ड पर, चीता मृग-झुंड पर,
'भूषण' बितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तमअंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥१॥

गरुड़ को दावा जैसे नाग के समूह पर,
दावा नाग जूह पर सिंह मिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
दावा सबै पच्छिन के गोल पर बाज को॥
'भूषण' अखंड नवखंड-महि-मंडल में,
तम पर दावा रविकिरन समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रेतिनी-पिसाचऽरु निसाचर-निसाचरिहू,
मिलि-मिलि आपुस मैं गावत बधाई है।
भैरो भूत-प्रेत भूरि भूधर-भयंकर से,
जुत्थ-जुत्थ जोगिनी जमाति जुरि आई है॥
किलकि-किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवानरेस भृकुटी चढ़ाई है॥३॥

दर-बर दौर करि नगर उजारि डारे,
कटक कटायो कोटि दुजन दरब की।
जाहिर जहान जंग जालिम है जोरावर,
चलै न कछुक जोर जब्बर-जरब की॥
सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप,
थर-थर काँपत बिलायत अरब की।
हालह दहलि जात काबुल कँधार वीर,
रोस करि काढ़ै समसेर ज्यों गरब की॥४॥

जिन फन फुफकार उड़त पहार भारे,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकार मद दिग्गज उगलिगो॥
कीन्हों जेहि पान पयपान सो जहान कुल,
कोल्हू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग मुगलदल निगलिगो॥५॥

वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर में।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दुन की चोटी रोटी राखी हैं सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में ॥
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में ॥६॥

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद-विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी में ॥
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी में ॥७॥

चकित चकत्ता चौंकि-चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसबि चितै चाह खरकति है।
बलख बिलात बिलखात बीजापुरपति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है ॥
थर-थर काँपत कुतुबसाही गोलकुण्डा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
सिंह सिवराज तेरे धौंसा की धुकार सुनि,
केते पातसाहन की छाती छरकति है ॥८॥

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा शिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नीचे रुंड मुंड फरके।
'भूषन' भनत बाजे जीति के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मारे सुनि सुभट पनारेवारे उदभट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़धर के।
बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाडिम से दरके ॥६॥

(२) छात्रसाल-दशक

चले चन्दबान घनबान औ कुहूक बान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।
चली जतडाढ़ै बाढ़वारै तरवारै जहाँ,
लोह आँच जेठ के तरनि मान वै रहो॥
ऐसे समै फौजें बिचलाई छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाए पाँय वीररस च्वै रहो,
हय चले हाथी चले सँग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली मैं अचल हाड़ा ह्वै रहो ॥१॥

दारा साहि नौरंग जुरे हैं दोउ दिल्लीदल,
एकै गये भाजि एकै गये रुँधि चाल में।
बाजी कर कोऊ दगाबाजी करि राख जेहिं,
कैसहू प्रकार प्रान बचत न काल में॥
हाथी से उतरि हाड़ा जूझो लोह-लंगर दै,
एती लाज कामें जेती लाज छत्रसाल में।
तन तरवारिन मैं, मन परमेसुर में,
प्रान स्वामि कारज में, माथौ हर माल में ॥२॥

निकसत म्यान तैं मयूखैं प्रलैभानु कैसी,
फारैं तमतोम से गयंदन के जाल को।
लागति लपटि कंठ बैरिन के नागिन सो,
रुद्रही रिझावै दै-दै मुंडन के माल को॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को ॥३॥

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरिन बीच धँस जाति मीन,
पौरि पार जात परवाह ज्यों जलन के॥
रैयाराय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकत को बखान यों बलन के।
पच्छी पर-छीने ऐसे परे परछीने वीर,
तेरी बरछी ने वर छीने हैं खलन के ॥४॥

रैयाराय चम्पति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
'भूषन' भनत समसेर जो जमकैं।
भादौं की घटा सी उठीं गरदैं गगन घेरैं,
सेलै समसेरैं फेरैं दामिनी सी दमकैं॥
खान उमरावन के आन राजा रावन के,
सुनि-सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं।
बैहर बगारन की अरि के अगारन की,
नाँघती पगारन नगारन की धमकैं ॥५॥

अस्त्र गहि छत्रसाल खीझ्यों खेत बेतवै के,
उतते पठानन हूँ कीन्हीं झुकि झपटैं।
हिम्मत बड़ी कै कबड़ी के खिलावारन लौं,
देत सै हजारन हजार बार चपटैं॥
'भूषन' भनत काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति जोर जपटैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समद लौं समद की सेना त्यों बुन्देलन की,
सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं ।।६।।
हैबर हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम,
पैदर की ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की ।
'भूषन' भनत राय चम्पति को छत्रसाल,
रोप्यौ रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुवाने की ।।
कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे,
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की ।
सैद अफगन सेन सगर सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ।।७।।
चाक-चक चमू कै अचाक-चक चहूँ ओर,
चाकसी फिरत धाक चम्पति के लाल की ।
'भूषन' भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहु उमराव ना करेरी करवाल की ।।
सुनि-सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की ।
जंग जीति लेते वै ह्वै कै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ।।८।।
कीवे को समान प्रभु ढूँढ़ि देख्यो आन पै,
निदान दान युद्ध में न कोऊ ठहरात है ।
पंचम प्रपंच भुजदंड को बखान सुनि,
भागिबे को पच्छी लौं पठान थहरात है ।।
संका मानि सूखन अमीर दिलीवारे जब,
चम्पति के नन्द के नगारे घहरात हैं ।
चहूँ ओर चकति चकत्ता के दलन पर,
छता के प्रताप के पताके फहरात हैं ।।९।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गज हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को?
साज सजि गजतुंगी पैदरि कतार दीन्हें,
'भूषन' भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को?
और रावराजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ॥१०॥

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्माकर

रीति-कालीन कवियों में पद्माकर भट्ट का नाम बड़े आदर, सम्मान और स्नेह से लिया जाता है। बिहारी के अतिरिक्त ऐसा सर्व-प्रिय कवि इस काल में दूसरा कोई नहीं हुआ। अपनी रचना की रमणीयता के कारण ही इन्हें इतना ऊँचा पद प्राप्त हो सका। अपनी परम्परा में ये प्रायः अंतिम प्रसिद्ध कवि हैं।

इनका जन्म सागर जिला में संवत् १८१० वि० में हुआ। इनके पिता मोहनलाल भट्ट एक तैलंग ब्राह्मण थे, वे विद्वान् और कवि भी थे। इनके पूर्वज बाँदा निवासी थे। वे पूरे पंडित और अच्छे कवि थे, जिससे कई राजधानियों में उनका बड़ा सम्मान हुआ। उन्हीं कवियों के पद्माकर वंशज थे। ये कई स्थानों पर रहे। पहले कुछ दिन गोसाईं अनूपगिरि के यहाँ रहे। इन्हीं गोसाईं का उपनाम हिम्मत बहादुर था। इनके नाम पर पद्माकर ने 'हिम्मत बहादुर-विरुदावली' नामक वीररस का फड़कता हुआ ग्रन्थ बनाया। संवत् १८५६ में सितारा के महाराज रघुनाथ राव राघोवा ने इन्हें एक लाख रुपया, एक हाथी और दस गाँव दिए। कुछ दिनों तक ये बाँदा के नवाब के यहाँ भी रहे। और अवध के बादशाह के यहाँ सेना विभाग में बड़े अधिकारी भी रहे। बाद में ये जयपुर के महाराज प्रतापसिंह और उनके पुत्र महाराज जगतसिंह के दरबार में रहे और उनके नाम पर 'जगद्विनोद' नामक शास्त्रीय ग्रंथ की रचना की। 'पद्माभरण' और 'प्रबोध-पचासा' नामक ग्रंथ भी इन्होंने लिखे। इस भाँति अस्सी वर्ष तक सुख और प्रतिष्ठा प्राप्त कर अन्त में गंगा तट पर कानपुर में इन्होंने शरीर छोड़ा और वहीं शायद इन्होंने 'गंगा-लहरी' भी बनाई थी। सेंधिया दरबार में भी ये गए थे और वहाँ भी इन्हें अच्छी प्रतिष्ठा मिली थी। दोहों-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चौपाइयों में लिखित 'रामरसायन' नामक इनके एक ग्रंथ की चर्चा सुनी है, पर उसकी रचना में पद्माकर को सफलता नहीं मिली।

यह कहा जा चुका है कि पद्माकर रीतिपरम्परा के अन्तिम पर यशस्वी तथा उत्तम कोटि के कवि थे। साथ ही साहित्यशास्त्र के भी वे अच्छे मर्मज्ञ थे। 'मतिराम' के 'रसराज' के समान 'पद्माकर' का 'जगद्विनोद' भी काव्य-रसिकों में बड़ा प्रिय ग्रंथ रहा है। पद्माकर की मधुर कल्पना ने रस-भाव के ऐसे सुंदर चित्र खड़े किए कि उसे पढ़ते-सुनते समय पाठक मानों प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। बिहारी को छोड़कर ऐसी सजीव कल्पना प्रायः नहीं दिखाई पड़ती है।

भाषा की सभी शक्तियों पर पद्माकर जी का अच्छा अधिकार दिखाई पड़ता है। इनकी मधुर, ललित पदावली भावमयी प्रेममूर्त्ति अंकित करमें में उतनी ही समर्थ है, भाव या रस की धारा बहाने उतनी ही सशक्त है, अनुप्रासों की झंकार उत्पन्न करने की उतनी ही क्षमता रखती है जितनी क्षमता वीररस की ओजस्विनी कविता लिखने में है। इनकी कविता में भाव और भाषा—दोनों साथ-साथ चलते हैं। यद्यपि अनुप्रास की प्रवृत्ति इनमें भी अन्य तत्कालीन कवियों की भाँति कुछ अधिक है तथापि आनुप्रासिक शब्द-चमत्कार के पीछे भाव-सौन्दर्य को पद्माकर ने प्रायः नष्ट नहीं होने दिया है। कहीं-कहीं तो इनकी अनुप्रास-योजना भावानुसारी होने से काव्य-सौन्दर्य बढ़ाने में सहायक हुई हैं।

इनकी कविता में भावों की सरस मनोहर मूर्त्तियाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। स्वाभाविक को छोड़कर अस्वाभाविक कल्पना के पीछे पद्माकर प्रायः नहीं पड़ते। लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ द्वारा इनकी कविता में सौन्दर्य की वृद्धि दिखाई पड़ती है। शृंगारी कवियों में इन्हें कुछ बिहारी-सी ही लोक-प्रियता प्राप्त है। प्रबंध-काव्य की रचना में पर्याप्त सफलता न मिलने पर भी मुक्तक रचना में 'पद्माकर' का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज भी व्रजभाषा के काव्यप्रेमी बड़े चाव से इनकी कविताएँ पढ़ते-सुनते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्ति

(१)

देखु 'पदमाकर' गोबिंद की अमित छबि,
संकर-समेत बिधि आनँद सों बाढ़ो है।
झिझकत झूमत मुदित मुसुकात गहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सों आढ़ो है॥
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन तें नीर-कन बाढ़ो है।
आगे नंदरानी के तनक पिय पीबे काज,
तीनि लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है॥

(२)

प्रलै कै पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को।
भीर—भरी झाँझरी बिलोकि मझधार परी,
धीर न धरात 'पदमाकर' खेवैया को।
कहा वार कहा पार जानो है न जात कछु
दूसरो दिखात न रखैया और नैया को।
बहन न पैहै घेरि घाटहि लगैहै, ऐसो
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को।

गंगालहरी

(३)

कूरम पै कोल कोलहू पै सेष कुण्डली है,
कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की ॥
रजत-पहार पर संभु सुर-नायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु-जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंग-धार की ॥

(४)

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज, यह
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै।
कहै 'पदमाकर' नरक सब मूँद करि,
मूँदि दरवाजेन को तज यह थान दै॥
देखु यह देव-नदी कीन्हें सब देव, या तें
दूतन बुलाइ कै बिदा के बेगि पान दै।
फारि डारु फरद, न राखु राजनामा कहूँ,
खाता खति जान दै, बही को बाह जान दै॥

(५)

जान्यौ जिन है न जज्ञ जोग जप जागरन,
जन्महि बितायो जग जोयन को जोइ कै।
कहै 'पदमाकर सुदेवन की सेवन तें,
दूर रहे पूर मति-बेदरद होइ कै॥
कुटिल कुराही कूर कलही कलंकी, कलि-
काल की कथान में रहे जे मति खोइ कै।
तेऊ बिस्नु आंगन में बैठे सुर-संगन में,
गंग की तरङ्गन में अंगन को धोइ कै॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६)

जैसे तैं न मो सों कहूँ नेक हू डरात हुतो,
तैसो अब तो सों हौं हूँ नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जौ परैगो तौ,
उमंडि करि तो सों भुजदंड ठोकि लरिहौं॥
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछार छार करिहौं॥

(७)

विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि - पद पंकज-प्रताप की लहर है।
कहै 'पदमाकर' गिरीस - सीस - मंडल के,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ,
जन्हु - जप जोग-फल - फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है॥

(८)

हौं तो पंचभूत तजिबे को तक्यौ तोहि, पर
तैं तो कर्‍यौ मोहिं भलो भूतन को पति है।
कहै 'पदमाकर' सु एक तन तारिबे में,
कीन्हें तन ग्यारह कहौ सो कौनि गति है॥
मेरे भाग गंग यहै लिखी भागीरथी, तुम्हैं
कहिए कछुक तौ कितेक मेरी मति है।
एक भवसूल आयौं मेटिबे को तेरे कूल,
तोहि तौ त्रिसूल देत वार न लगति है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(९)

रेनुका की रासन में कीच-कुस-कासन में,
निकट निवासन में आसन लदाऊ के।
कहै 'पदमाकर' तहाँई मंजु सूरन में,
धौरी-धौरी धूरन में पूरन प्रभाऊ के॥
वारन में पारन में देखहु दरारन में,
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ कछारन में गंगाजल-धारन में,
मँझरा मँझारन में झारन में झाऊ के॥

(१०)

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइबे को,
तासों कहै कोऊ एक अधम अपान में।
जाहु जनि पंथी उत बिपति बिसेषि होति,
मिलैगो महान कालकूट खान-पान में॥
कहै 'पदमाकर' भुजंगनि बँधैंगे अंग,
संग में सुभारी भूत चलैंगे मसान में।
कमर कसैंगे गजखाल ततकाल, बिन
अंबर फिरैगो तू दिगंबर दिसान में॥

(११)

बिघन-बिनास, भवपास होते नासै, भासै,
नासै पुन्य-पुंज को प्रकासै रंगरंगा के।
सुख की समाजै उपराजै साज छाजै छिति,
घन-सी गराजै राजै सीस ईस नंगा के॥
कहै 'पदमाकर' सुजानै करि ज्ञानै जानै,
तानै मनमानै भोग आनै देव अंगा के।
सुंदर सुभंगा नित अमित अभंगा आछे,
अघ-ओघ-भंगा ये तरंगा देवि गंगा के॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१२)

आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं,
गाढ़ हू के पास दुख दूरि बुटि-बुटि गे ॥
कहै 'पदमाकर' कुरो में सँवाती तेऊ,
गैल में चलत घूमि-घूमि घुटि-घुटि गे ॥
दगादार दोष दीह दारिद बिलाइ गये,
फिरिरि के फंद बिन छोरे छुटि-छुटि गे ।
जौ लौं आउ-आउ तेरे तीर पर गंगा तौ लौं,
बीच ही में मेरे पाप-पुंज लुटि-लुटि गे ॥

(१३)

आई तजि हौं तौ ताहि तरनि-तनूजा-तीर,
ताकि-ताकि तारापति तरफति ताती-सी ।
कहै 'पदमाकर' घरीक ही में घनस्याम,
काम तौ कतलबाज कुंजनि ह्वै काती-सी ॥
याही छिन वाही सों न मोहन मिलौगे,
जो पै, लगनि लगाइ एती अगिनि अबाती-सी ।
रावरी दुहाई तौ बुझाई ना बुझैगी फेरि,
नेह-भरी नागरी की देह दिया-बाती-सी ॥

(१४)

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है ।
कहै 'पदमाकर' परागन में पौन हू में,
पानन में पिक में पलासन पगंत है ॥
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है ।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१५)

बरसत मेह नेह सरसत अंग-अंग,
झरसत देह जैसे जरत जवासो है।
कहै 'पदमाकर' कलिंदी के कदंबन पै,
मधुपन कीन्हो आइ महत मवासो है॥
ऊधौ यह ऊधम जताइ दीजौ मोहन कों,
ब्रज को सुबासो भयो अगिन-अवासो है।
पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो,
काहू बिथित बियोगिनी के प्रानन को प्यासो है॥

(१६)

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
बृंदाबन बीथिन बहार बंसीबट पै।
कहै 'पदमाकर' अखंड रास मंडल पै,
मंडित उमंडि महा कालिँदी के तट पै।
छिति पर छान पर छाजत छतान पर,
ललित लतान पर लाड़िली के लट पै।
आई भली छाई यह सरद-जुन्हाई, जिहि
पाई छबि आजु री कन्हाई के मुकुट पै॥

(१७)

फाग के भीर अभीरन में गहि गोबिंदै लै गई भीतर गोरी॥
भाई करी मन की 'पदमाकर' ऊपर नाइ अबीर की झोरी॥
छीन पितंमर कंमर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन-नचाइ कही मुसकाइ लला फिरि आइयौ खेलन होरी॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध

कविवर अयोध्यासिंह उपाध्याय आजमगढ़ के सनाढ्य ब्राह्मण थे। निजामाबाद नामक गाँव में संवत् १९२२ में इनका जन्म हुआ था। मिडिल पास करने के बाद वे काशी के क्वींस कालेज में अँग्रेजी पढ़ने आए पर अस्वस्थ होने के कारण कुछ ही दिनों बाद घर लौट गए और वहीं उर्दू, फारसी और संस्कृत का उन्होंने अध्ययन किया। इन्हें अँग्रेजी का भी ज्ञान था। कुछ दिनों अध्ययन करने के बाद वे संवत् १९४६ में कानूनगो हो गए। संवत् १९७६ में बीस वर्षों बाद पेंशन लेकर हिन्दी-सेवा की ओर लग गए। मालवीय जी ने उनका विद्या-प्रेम देखकर काशी विश्वविद्यालय में बुलाया और वहाँ हरिऔध जी लगभग बीस वर्षों तक अवैतनिक अध्यापक के रूप में कार्य करते रहे। अभी कुछ ही दिनों पूर्व उनका शरीरान्त हुआ।

उपाध्याय जी बड़े ही सत्यनिष्ठ, निरभिमान, निर्लोभ और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी ईमानदारी, सत्यनिष्ठा तथा परिश्रम-पूर्वक कर्त्तव्य-पालन देखकर अधिकारी सदैव उनसे बड़े प्रसन्न रहे। प्राचीन हिन्दू-परिवार में जन्म पाकर और उस बीच रहकर भी उनमें अंधविश्वास और कट्टरता न थी। भारतीय संस्कृति के प्रेमी होकर भी उनमें सुधारवादिता थी। उनकी रचनाओं में प्राचीनता और नवीनता दोनों का सुंदर सामञ्जस्य है। सनातनी परिवार के होकर भी उपाध्यायजी सिक्ख-धर्म में निष्ठा रखते थे। आजमगढ़ के प्रसिद्ध सिक्खसाधु और साहित्यिक बाबा सुमेरसिंह का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। सिक्खमत ग्रहण करने के पश्चात् इन्होंने अपने नाम के साथ 'सिंह' जोड़ दिया था। कविता में अपना नाम 'हरिऔध'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिखते थे। संवत् १९८० में दिल्ली के साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति बनाकर हिन्दी के साहित्यिकों ने इनका समादर किया।

उपाध्यायजी ने आरम्भ में कवित्त और सवैयों द्वारा ब्रजभाषा की काव्य-रचना प्रारम्भ की थी। आगे चलकर उन्होंने समय के अनुसार अपनी भाषा बदली और अपने समय में खड़ी बोली में बड़े ही समर्थ कवि हुए। हिन्दी में उन्हें कविसम्राट् कहा जाने लगा। संस्कृत के अतुकान्त छन्दों में प्रथम प्रबंधकाव्य 'प्रिय-प्रवास' की रचना ने इन्हें बड़ा प्रसिद्ध कर दिया। यह काव्य बड़ा ही लोक-प्रिय हुआ। अतुकान्त वार्णिक वृत्तों की हिन्दी में यह सफल और मौलिक रचना है।

इस काव्य में हरिऔधजी ने कृष्ण के लोक-रंजक मधुर रूपमात्र को न लेकर उनके लोकोपकारक रूप को भी लिया। इसके नायक कृष्ण लोक-रक्षक और लोक-संग्राहक भी हैं। इस काव्य में वात्सल्य रस और यशोदा के प्रेम का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है। शृङ्गार रस का वर्णन होने पर भी अश्लीलता का नाम तक नहीं है। गोपियों, गोपों, समस्त ब्रजवासियों और विशेषतः राधा का वियोग और विरह-वर्णन बड़ा ही करुण और मर्म-स्पर्शी है। इसके विरह और विलाप की पंक्तियाँ पढ़ते-पढ़ते हम आत्मविभोर हो जाते हैं। मानव-मन के विविध पक्षों और प्राकृतिक चित्रों की अभिव्यक्ति भी इस काव्य में बड़ी रमणीय हुई है। सन्ध्या, शरद्, वसन्त आदि का चित्राङ्कन बड़ा मनोहारी हुआ है।

प्रिय-प्रवास की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता है। इसके छन्द भी मंदाक्रान्ता, शिखरिणी, वंशस्थ, बसन्त-तिलका, उपजाति आदि संस्कृत-छन्द हैं। संस्कृत-गर्भित भाषा और संस्कृत छन्दों को लेकर खड़ी बोली में सफल प्रबन्ध-काव्य के प्रवर्त्तक, हरिऔध जी ही हैं। कहीं-कहीं शब्दाडम्बर और क्लिष्टता भी आ गई है।

जहाँ एक ओर संस्कृत-बहुल भाषा के प्रयोग पर हरिऔधजी ने अपना पूर्ण अधिकार दिखाया वहीं दूसरी ओर ठेठ हिन्दी में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी उनके तीन काव्य-संग्रह—(१) बोलचाल, (२) चुभते चौपते और (३) चोखे चौपदे—प्रकाशित हुए, जिनके द्वारा ठेठ, मुहावरेदार सरल हिन्दी पर उनका पूर्ण अधिकार प्रकट हुआ। इनमें उर्दू-छन्दों की बहुलता है। प्रायः प्रत्येक पद्य में मुहावरे का प्रयोग हुआ है। साहित्यिक भावुकता की कमी होने पर भी इनमें मार्मिकता है।

खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि हो जाने पर भी वे ब्रजभाषा में सुंदर काव्य-रचना करते थे। नवरसों के विवेचनार्थ उन्होंने पाण्डित्यपूर्ण 'रसकलश' नामक लक्षण ग्रंथ लिखा, जिसके उदाहरण-कवित्तों आदि की रचना प्रौढ़ ब्रजभाषा में है। 'वैदेही-बनवास' भी उनका एक उत्तम प्रबंध-काव्य है, जिसकी भाषा न तो ठेठ हिन्दी है, न संस्कृत-बहुल। इसमें धोबी के कहने पर राम द्वारा सीतात्याग की कथा है। भाषा इसकी साहित्यिक है, वर्णन सरस हैं, प्राकृतिक-चित्रण भावमय हैं और करुण रस की प्रधानता है। 'पारिजात' नामक काव्य में दार्शनिकता अधिक है। विविध-प्रकार की भाषा का सफल प्रयोग हरिऔधजी की विलक्षण विशेषता है।

'ठेठ हिन्दी का ठाट,' 'अधखिला फूल,' ये दोनों उपन्यास के ढंग की गद्य-रचनाएँ हैं जो ठेठ हिन्दी में लिखी गई हैं। 'बेनिस का बाँका' भी गद्यात्मक है जो अंग्रेजी से अनूदित है। 'काव्योपवन,' 'पद्यप्रमोद' आदि उपाध्यायजी की फुटकल कविताओं के संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त बालोपयोगी कविताएँ भी उन्होंने लिखीं थीं। हाल ही में उनके सरस दोहों का 'हरिऔध सतसई' नाम से सुंदर संग्रह प्रकाशित हुआ है।

हरिऔधजी का 'ठेठ हिन्दी का ठाट' बहुत दिनों तक भारतीय सिविल सर्विस के परीक्षार्थियों का पाठ्य-ग्रंथ रहा। हरिऔधजी ने खड़ी बोली के काव्य-निर्माण के आरंभिक युग में पथ-प्रदर्शन का कार्य किया। इस दृष्टि से वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरत् में रास-क्रीड़ा

भू में रमी शरद की कमनीयता थी,
नीला अनंत नभ निर्मल हो गया था।
थी छा गई ककुभ में अमित सिताभा।
उत्फुल्ल सी प्रकृति थी प्रतिभात होती॥

होता सतोगुण-प्रसार दिगंत में है,
है विश्व-मध्य सितता अभिवृद्धि पाती—
सारे स-नेत्र जन को यह थे बताते,
कांतार-काश विकसे सित पुष्प द्वारा॥

शोभा-निकेत अति उज्ज्वल कांतिशाली,
था वारि-बिंदु जिसका नव मौक्तिकों सा।
स्वच्छोदका, विपुल-मंजुल-बीचि-शीला,
थी मंद-मंद बहती सरितातिभव्या॥

उच्छ्वास था न अब प्लावन-कूल-कारी,
था वेग भी न अति उत्कट कर्णभेदी,
आवर्त्त-जाल अब था न धरा विलोपी;
धीरा, प्रशांत, विमलांबुवती, नदी थी॥

था मेघ-शून्य नभ उज्ज्वल कांतिवाला;
मालिन्य-हीन मुदिता नव दिग्वधू थी,
थी मेदिनी रहित-कर्दम, स्वच्छ, रम्या,
सर्वत्र धौत-जल-निर्मलता लसी थी॥

कांतार में, सरित-तीर, सुगह्वरों में
सोते अनेक बहते जल स्वच्छ के थे।
होती अजस्र उनमें ध्वनि थी अनूठी,
वे थे मनो शरद की कल-कीर्त्ति गाते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाना नवागत - विहंग - वरूथ द्वारा,
वापी-तड़ाग सर शोभित हो रहे थे;
फूले - सरोज-मिस हर्षित-लोचनों से
वे हो विमुग्ध जिनको अवलोकते थे।
नाना सरोवर खिले नव पंकजों को
ले अंक में विलसते, मन मोहते थे॥
मानों पसार अपने शतशः करों को
वे माँगते शरद से सु-विभूतियाँ थे॥
प्यारे सु-चित्रित सितासित-रंग-वाले
थे दीखते चपल खंजन प्रांतरों में।
बैठी मनोरम सरों पर सोहती थी
आई स-बाम ब्रज-मध्य मराल माला॥
प्रायः निरंबु कर पावस- नीरदों को
पानी सुखा प्रचुर प्रांतर औ' पथों का।
न्यारे असीम नभ मे, मुदिता मही में,
व्यापी नवोदित-अगस्त नई-विभा थी॥
था क्वार-मास निशि थी अति रम्य-राका,
पूरी कला - सहित शोभित चंद्रमा था।
ज्योतिर्मयी परम, सर्वदिशा बना के
सौंदर्य साथ लसती छिति में सिता थी॥
शोभा-मयी शरद की ऋतु पा दिशा में,
निर्मेघ-व्योम-तल में, सु-वसुंधरा में,
होती सु-संगति अतीव मनोहरा थी
न्यारी-कला-तुहिन-दीधिति-स्वच्छता की॥
थे स्नात से सकल पादप चंद्रिका से,
प्रत्येक पल्लव प्रभा-मय दीखता था,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सारी लता, सकल बेलि, समस्त शाखा,
डूबी विचित्रतर-निर्मल-ज्योति में थी।
जो मेदिनी रजत-पत्र-मयी हुई थी,
किंवा पयोधि-पय से यदि प्लाविता थी,—
तो सर्व पत्र पर पादप-बेलियों के
पूरी हुई प्रथित-पारद-प्रक्रिया थी।
था मंद मंद हँसता विधु व्योम-शोभी,
होती प्रवाहित धरातल में सुधा थी,
जो पा प्रवेश दृग में प्रिय-अंशु द्वारा
थी मत्त-प्राय करती मन मानवों के।
अत्युज्ज्वला पहन तारक-मुक्त-माला,
दिव्यांबरा बन अलौकिक-कौमुदी से,
भावों भरी, परम मुग्धकरी हुई थी
राका-कलाकर-मुखी रजनी-पुरंध्री।
पूरी समुज्ज्वल हुई सित-यामिनी थी,
होता प्रतीत राव-सा रजनी-पती था।
पीती कभी परम मुग्ध बनी सुधा थी,
होती कभी चकित थी चतुरा चकोरी॥
ले पुष्प-सौरभ तथा पय-सीकरों को
थी मंद मंद बहती पवनातिप्यारी,
जो थी मनोरम अतीव, प्रफुल्ल-कारी,
हो सिक्त सुंदर-सुधा रजनीश द्वारा।
चंद्रोज्ज्वला, रजत-पत्र-वती, मनोज्ञा,
शांता, नितांत-सरसा, सु-पियूष-सिक्ता,
शुभ्रांगिनी, सु-पवना, सु-जला, सु-कूला,
सत्पुष्पसौरभ-वती वन-मेदिनी थी॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसी अलौकिक-अपूर्व-वसुंधरा में
ऐसे मनोरम-अलंकृत काल को पा।
वंशी अचानक बजी अति ही रसीली
आनंद-कंद ब्रज-गोप-गणाग्रणी की ॥
भावों भरा मुरलिका-स्वर मुग्ध-कारी
आदौ हुआ मरुत साथ दिगंत व्यापी।
पीछे पड़ा श्रवण में बहु भावुकों के
पीयूष के प्रमुख-वर्द्धक-बिंदुओं सा ॥
पूरी विमोहित हुईं यदि गोपिकाएँ,
तो गोप-वृंद अति मुग्ध हुए स्वरों से।
फैलीं विनोद-लहरें ब्रज-मेदिनी में,
आनंद-अंकुर उगा उर में जनों के ॥
वंशी-निनाद सुन, त्याग निकेतनों को,
दौड़े समस्त स-विनोद उमंग-डूबे।
गोपी असंख्य, बहु गोप, अनेक बाला,
आईं विहार-रुचि से वन-मेदिनी में।
हो हो सु-वादित सदंगुलि-श्याम द्वारा
कांतार में मुरलिका जब गूँजती थी,
तो पत्र पत्र पर था कल नृत्य होता
रागांगना-विधु-मुखी चपलांगिनी का ॥
भू-व्योम-व्यापित कलाधर की सुधा में,
न्यारी सुधा मिलित हो मुरली-स्वरों की।
धारा अपूर्व-रस की महि में बहा के
सर्वत्र थी अति-अलौकिकता लसाती ॥
उत्फुल्ल थे विटप-बृंद विशेष होते,
माधुर्य था विपुल पुष्प-समूह पाता,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती विकाश-मय मंजुल-बेलियाँ थीं,
लालित्य-धाम बनती उलही-लता थी ।।
क्रीड़ा-मयी, ध्वनि-मयी, कल-ज्योति-वाली
धारा—समेत-सरि की अति तद्गता थी ।
थी नाचती, उमगती, थिर भूरि होती,
उल्लासिता, बिहँसिताति-प्रफुल्लिता थी ।।
पाई अपूर्व थिरता मृदु वायु ने थी,
मानो अचंचल विमोहित हो बनी थी ।
प्यारे-स्वरों-मुरलि—संग प्रमोदिता हो
माधुर्य-साथ हँसती सित-चंद्रिका थी ।।
सत्कंठ-साथ नर-नारि-समूह-गाना
उत्कंठ था न किसको महि में बनाता ?
तानें उमंगित—करी कल-कंठ जाता
तंत्री रहीं जन-उरस्थल की बजाती ।।
होती प्रतीति उर में उस काल यों थी
है मंत्र साथ मुरली अभिमंत्रिता सी ।
उन्माद-मोहन-वशीकरणादिकों के
हैं मंजु धाम उसके ऋतु रध्र सातों ।।
वामा-सुतों-सँग मनोरम राग गा गा,
ला ला स्वरूप उनका जन-नेत्र आगे,
ले ले अनेक उर-वेधक चारु तानें,
कीं श्याम ने परम मुग्धकरी क्रियाएँ ।।
पीछे अचानक रुकीं बर-वेणु-तानें,
चावों समेत सब की सुधि लौट आई,
आनंद-नाद-मय कंठ सहस्र द्वारा
हो हो पड़ीं ध्वनित बार कई दिशाएँ ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माधो विलोक सबको मुद-मत्त बोले—
देखो, छटा विपिन की कल-कौमुदी में;
आना करो सफल कानन में गृहों से
शोभामयी प्रकृति की गरिमा विलोको ॥
बीसों विचित्र दल केवल नारि का था,
यों ही अनेक दल केवल था नरों का।
नारी-नरों-मिलित-यूथ रहा सहस्रों,
उत्कंठ हो सब उठा सुन श्याम बातें ॥
सानंद सर्व-दल कानन-मध्य फैला,
होने लगा सुखित दृश्य विलोक नाना,
देने लगा उर कभी नवला लता को,
गाने लगा कलित कीर्ति कभी कला की ॥
विच्छिन्न हो स्वदल से बहु गोप-गोपी
स्वच्छंद थीं विचरतीं रुचिर स्थलों में,
या बैठ चंद्र-कर-धौत धरातलों में
वे थीं स-मोह करतीं मधु-सिक्त बातें ॥
कोई प्रफुल्ल लतिका कर से हिलाके
वर्षा-प्रसून करती प्रिय-अंक में थी।
कोई स-पल्लव स-पुष्प मनोज्ञ शाखा
था प्रेम साथ रखता कर-प्रेमिका में ॥
आ मंद मंद मनमोहन मंडली में
बातें बड़ी सरस थे सबको सुनाते,
भावों समेत स्वर में मृदुता मिला के,
या थे महा-मधु-मयी मुरली बजाते ॥
धारा-मयी अमल श्यामल अर्कजा में,
छाया स-तारक विलोक छपा-पती की।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थे भाखते—खचित-रत्न असेत साटी
है पैन्ह ली प्रमुदिता वनभू-वधू ने ।।
ज्योतिर्मयी, विकसिता, हसिता लता को
लालित्य-साथ लपटी तरु से दिखा के ।
थे भाखते—पति-रता-अवलंबिता का
कैसा प्रमोदमय जीवन है दिखाता ।।
आलोक से लसित पादप वृंद नीचे
छाए हुए तिमिर को कर से दिखा के
थे यों मुकुँद कहते,—मलिनाँतरों का
है बाह्य रूप बहु उज्ज्वल दृष्टि आता ।।
ऐसे मनोरम-प्रभामय-काल में भी
म्लाना नितांत अवलोक सरोजिनी को
थे यों ब्रजेंदु कहते,—ललना सती को
स्वामी बिना सब तमो-मय है दिखाता ।।
फूले हुए कुमुद देख सरोवरों में
माधो सु-उक्ति यह थे सबको सुनाते—
उत्कर्ष देख निज-अंक पले शशी का
है वारि-राशि-मिस कैरव हृष्ट होता ।।
फैली विलोक सब ओर मयंक-आभा
आनंद-साथ कहते यह थे बिहारी,—
है कीर्ति, भू-ककुभ में अति कांत छाई,
प्रत्येक धूलि-कल-रंजन-कारिणी की ।।
फूलों-दलों पर विराजित ओस-बूँदें
जो श्याम को दमकती दुति से दिखातीं,
तो वे समोद कहते,—वन-देवियों ने
की है फला पर निछावर मुक्त-माला ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है ज्योति-आकर, पयोधर है सुधा का,
शोभा-निकेत प्रिय वल्लभ है निशा का,
है भाल का प्रकृति के अभिराम भूषा,
सर्वस्व है परम-रूपवती कला का ॥
जैसी मनोहर हुई यह यामिनी थी
वैसी कभी न जन-लोचन ने विलोकी,
जैसी बही रस-सरी इस शर्वरी में
वैसी कभी न ब्रज-मेदिनि में बही थी ॥
जैसी बजी मधुर बीन, मृदंग, वंशी;
जैसा हुआ रुचिर नृत्य, विचित्र गाना,
जैसा बँधा इस निशीथिनि में समाँ था,
होगी न कोटिमुख से उसकी प्रशंसा ॥
आँखों अनूप छबि है जिसने बिलोकी,
वंशी-निनाद मन दे जिसने सुना है,
देखा बिहार इस यामिनि में जिन्होंने,
कैसे मुकुंद उनके उर से कढ़ेंगे ?
होके विभिन्न, रवि का कर, ताप त्यागे
देन मयंक-कर को तज माधुरी भी,
तो भी नहीं ब्रज-धरा-जन के उरों से
उत्फुल्ल मूर्त्ति मनमोहन की कढ़ेगी ॥
कुंजें वही, थल वही, यमुना वही है,
बेलें वही, वन वही, विटपी वही है,
हैं पुष्प-पल्लव वही, ब्रज भी वही है,
ये किंतु श्याम बिन हैं न वही जनाते ॥

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रत्नाकर

ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत् १९२३ में काशी में हुआ था। इनके पिता, बाबू पुरुषोत्तमदास अग्रवाल बड़े काव्य-रसिक थे। उनके यहाँ उस समय के कवि और साहित्यकार, यहाँ तक कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी आया करते थे। इस भाँति के साहित्यिक वातावरण में पालन होने के कारण बचपन से ही कविता के प्रति उनका अनुराग हो गया। उनकी रुचि को देखकर भारतेन्दु ने भविष्य में प्रसिद्ध कवि होने का उन्हें आशीर्वाद दिया था।

बी० ए० परीक्षा पास करने के बाद फारसी लेकर वे एम० ए० कक्षा में पढ़ते रहे, पर कुछ कारणों से परीक्षा न दे सके। कुछ दिन आवागढ़ में नौकरी की थी। बाद में वे संवत् १९५८-५९ के आसपास अयोध्या के राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गए। उनके शरीरान्त के पश्चात् महारानी साहब के भी प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। बीस वर्षों तक अयोध्याराज की सेवा के उपरान्त वे काशी चले आए और यहीं रहने लगे। संवत् १९८९ में उनका हरिद्वार में देहान्त हो गया। संवत् १९८८ में कलकत्ते के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में वे अध्यक्ष हुए थे।

बचपन से ही कविता की ओर झुकाव रहने के कारण रत्नाकरजी छोटी अवस्था से ही कविता करने लगे। हिन्दी के प्राचीन कवियों का उन्होंने बड़ा अच्छा और गंभीर अध्ययन किया था। आधुनिक ब्रजभाषा-साहित्य के वे स्वयमेव सर्वश्रेष्ठ कवि तो हैं ही, ब्रजभाषा के समस्त उत्तम कवियों में भी वे एक हैं। इसके साथ-साथ ब्रजभाषा काव्य के वे गंभीर विद्वान् तथा अध्यवसायी सम्पादक भी थे। तीस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्षों तक बिहारी-'सतसई' की यथासंभव समस्त उपलब्ध पाण्डुलिपियों का संग्रह करके 'सतसई' के 'बिहारी-रत्नाकर' नामक जिस संस्करण-का संपादन किया वह बहुत ही गवेषणापूर्ण और विद्वत्तापूर्ण है। इसी प्रकार छः सात वर्षों के अथक श्रम और अध्ययन के बाद 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' से सूरसागर के संपादन की रूपरेखा निर्धारित की, जो ग्रंथ दो भागों में प्रकाशित हुआ है।

रत्नाकरजी बड़े ही रसिक, विनोद-प्रिय, भावुक, उदार और साहित्य प्रेमी थे। उनके यहाँ साहित्यिकों का जमाव प्रायः हुआ करता था। अयोध्या-राज में कार्य करते समय भी उनकी साहित्य-सेवा और अध्ययन निरन्तर चलता रहा। खड़ी बोली के युग में भी उन्होंने ब्रजभाषा को अपना कर जिस उच्च कोटि की कविता का निर्माण किया और जो लोक-प्रियता एवं साहित्यिक समादर उन्हें मिला वह सर्वथा उनके योग्य था। फारसी के विद्वान् होकर भी उन्होंने हिन्दी के काव्य-मंदिर को सजाया। आरम्भ में उन्होंने कुछ दिनों तक उर्दू की कविता की थी—पर बाद में ब्रजभाषा की ओर झुके और उसमें चरम सफलता प्राप्त की।

रत्नाकर जी बड़े ही भावुक, सरल, कल्पना-प्रवण, प्रतिभाशाली तथा रससिद्ध कवि थे। उनकी कविता में भाव और भाषा का बड़ा ही सफल और मनोहारी गठबंधन हुआ है। उनके कवित्त में प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक निरंतर भावधारा का मधुर-सरस प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। उनकी भाषा उनके हृदय के भावों की वशवर्त्तिनी अनुचरी जान पड़ती है और उनकी कविताओं के भाव मानों प्रतिस्पर्द्धावश भाषा से आगे बढ़ जाने के लिये व्यग्र प्रतीत होते हैं। उनकी भावुक कल्पना और कवि प्रतिभा जो शब्द-चित्र खींचना चाहती है, उसका अंकन करने में शब्द अत्यन्त तत्पर और जागरूक जान पड़ते हैं। रत्नाकरजी की रचना में भाव और भाषा की पूर्ण समन्वित सफलता के साथ-साथ कलापक्ष अत्यन्त उत्कृष्ट है। छन्दों का प्रवाह, अलंकारों की योजना, शब्दशक्तियों का उपयोग, रस के अंग—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभावों, सात्विक भावों तथा संचारी भावों—की व्यंजना अत्यन्त सजीव और समर्थ है। शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का सौन्दर्य बड़ा ही भावोत्कर्षक है। भाषा की शुद्धि, सफाई, प्रौढ़ता और परिष्कृति जैसी रत्नाकरजी की कविता में है, वैसी मध्यकालीन कवियों में भी कम दिखाई पड़ती है।

रत्नाकरजी ने अधिकतर पुराने विषयों को ही अपने काव्य में चुना है। किन्तु ऐसे विषयों को लेकर भी, जिन पर सूर जैसे महाकवियों ने रचना की है, रत्नाकर की प्रतिभा ने नवीनता उद्भावित की है। 'उद्धव-शतक' एक ऐसी ही रचना है। भावों की ऐसी सुन्दर, सरस और भावमय चित्रात्मक व्यंजना जल्दी नहीं मिलती। यह अपने ढंग का अनुपम खण्ड-काव्य है।

रत्नाकर का दूसरा प्रबन्ध काव्य है 'गंगावतरण'। इसमें भगीरथ की कठोर तपस्या द्वारा गंगा के पृथ्वी पर आने का वर्णन है। यह काव्य बड़ा ही ओजपूर्ण, चित्रात्मक तथा भावपूर्ण है। भाषा की गठन और शैली भावानुसारी है (इसी का एक सर्ग प्रस्तुत पाठ में दिया गया है।)।

इनकी सर्वप्रथम रचना 'हिँडोला' है, दूसरी रचना 'समालोचनादर्श' अनुवाद है। 'हरिश्चन्द्र,' और 'कलकाशी' भी 'उद्धवशतक' और 'गंगावतरण' के समान मौलिक रचनाएँ हैं। इनकी समस्त कविताओं और ग्रंथों का एक संग्रह 'रत्नाकर' नाम से काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित है जिसमें उक्त कृतियों के अतिरिक्त 'शृंगार-लहरी', 'गंगाविष्णुलहरी', 'रत्नाष्टक', 'वीराष्टक' और 'प्रकीर्ण-पद्यावली' आदि हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि रत्नाकरजी आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ ब्रजभाषा-कवि हैं और उनकी रचनाएँ, समस्त ब्रजभाषा-साहित्य की अमर निधि हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगीरथ की तपस्या

जाइ गोकरन-धाम नृपति अति आनँद पायौ।
मनु गज तोरि अलान उमगि कदली-बन आयौ॥
सिद्धि-छेत्र सुभ देखि नेत्र तहँ ललकि लुभाए।
मनहु सोधि मनि-खानि-सोध सोधी हुलसाए॥१॥

तरु बल्ली बहु भाँति फलित प्रफुलित तहँ भावैं।
मनहु कामना सफल होन के सगुन दिखावैं॥
सर सरिता सब स्वच्छ जथा-इच्छित जल पावत।
मनु मन-आसय पूर होन के जोग जतावत॥२॥

गुंजत मंजु मलिंद-पुंज मकरंद-अघाए।
मनहु मुदित मन करत तोष के घोष सुहाए॥
पसु-पच्छिनि के बृंद करत आनँद-नाद कल।
धन्यवाद मनु देत पाइ बांछित जीवन-फल॥३॥

विद्याधर गंधर्व सिद्ध तप-बृद्ध सयाने।
बिचरत तहाँ बिनोद-मोद-मंडित मनमाने॥
मुनि-आश्रम अभिराम ठाम-ठामनि छबि छावैं।
साधक-गन पैं सिद्धि तहाँ खोजति चलि आवैं॥४॥

सो सुभ धाम ललाम देखि भूपति-मन मान्यौ।
तहँ तप-कष्ट उठाइ इष्ट-साधन ठिक ठान्यौ॥
पूजि छेत्र-पति पुलकि माँगि आयसु मुनि-गन सौं।
लगे भूप-मनि करन कठिन जप तप तन मन सौं॥५॥

कंद मूल तिन करि अहार कछु बार बिताए।
कछुक दिवस तृन पात परे पुहुमी चुनि खाए॥
कछु दिन बारि बयारि पान करि कछु दिन टेरे।
इहिं बिधि कष्ट उठाइ किए ब्रत घोर घनेरे॥६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रह्यौ भूप कौ रूप भावना के लेखा सौ।
अस्ति-नास्ति कैँ बीच गनित-कल्पित रेखा सौ॥
सुर-मुनि अग्र समग्र देखि तप उग्र सिहाए।
नृपहिं निवारन-हेत सबनि बहु हेत बुझाए॥७॥
रहे ध्यान धरि जपत भूप विधि-मंत्र निरंतर।
भरि जिय यहै उमंग गंग आवैँ अवनी पर॥
तरैँ सगर के सुवन भुवन मुद मंगल छावै।
डरैँ देखि जम-दूत पुरी पुरहूत बसावै॥८॥
बीते बरस अनेक टेक जब नैँकु न टारी।
सह्यौ सीस धरि धीर बीर हिम आतप बारी॥
तब ताकैँ तप-तेज तपन लाग्यौ महि-मंडल।
उफनि उठ्यो ब्रह्मंड भभरि भय भर्‍यौ अखंडल॥९॥
सुर नर मुनि गंधर्व जच्छ किन्नर कहलाने।
नभ-जल-थल-चर बिकल सकल थल थल हहलाने॥
जानि पर्‍यौ त्रिपुरारि तमकि तीजौ दृग खोल्यौ।
त्रासनि परी पुकार चारमुख-आसन डोल्यौ॥१०॥
लै सँग देव-समाज काज बिसराइ जगत कौ।
उठि आतुर अकुलाइ ल्याइ मन भाय भगत कौ॥
चले प्रसंसत हँसत हंस हाँकत चतुरानन।
पहुँचे आनि तुरंत तपत भूपति जिहि कानन॥११॥
कृपा-छलक-छबि नैन बैन गद्गद मुख मुलकित।
बर बरदान-उमंग-तरंगनि सौँ तन पुलकित॥
मृदुल मनोहर उर-उछाह-कारी स्रम-हारी।
सुघर सब्द सौँ कलित ललित बिधि गिरा उचारी॥१२॥
अहो भूप-कुल-कमल-अमल-अति-प्रबल-प्रभाकर।
कियौ कठिन तप जाहि निरखि रबि लगत सुधाकर॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाकैँ प्रखर प्रभाव पदारथ परम सुलभ सब।
तजि सँकोच जो चहहु लहहु सानँद हमसौँ अब ॥१३॥
सुनत बैन सुख-दैन भगीरथ नैन उघारे।
बिबुधनि-बलित प्रसन्न-बदन बिधि निकट निहारे॥
तप-तापैँ तन परी सुखद आसा-जल-धारा।
सुधा स्रवन-भरि चली उबार ढरि नैननि द्वारा ॥१४॥
सरक्यौ सब दुख-दंद चंद-आनन मुद छरक्यौ।
फरक्यौ सुभग सरीर चीर बलकल कौ दरक्यौ॥
जोरि पानि परि भूमि भूमि-पति सिर पद परसे।
सब देवनि सादर प्रनाम करि अति सुख सरसे ॥१५॥
पाद अरघ आसन सुमूल फल फूल सुहाए।
अरपि जथा-बिधि बिनय-बचन कर जोरि सुनाए॥
जय चतुरानन चतुर चतुर-जुग-जगत-बिधायक।
जय सुर-नर मुनि-बंद्य सदा सुंदर-बर-दायक ॥१६॥
तव दरसन सौँ आज काज पूजे सब मन के।
लखि यह देव-समाज साज छाए सुख-गन के॥
धर्‍यौ माथ पर हाथ नाथ तो देहु यहै बर।
तारन-बिरद-उतंग-गंग आवैँ पुहुमी पर ॥१७॥
असन बसन बर बाम धाम भव-बिभव न चाहैँ।
सुरपुर-सुख बिज्ञान मुक्तिहूँ पै न उमाहैँ॥
अति उदार करतार जदपि तुम सरबस-दानी।
हम लघु जाचक चहत एक चिल्लू-भर पानी ॥१८॥
ताही सौँ तप-ताप दूरि करि अंग जुड़ैहैँ।
ताही सौँ सब साप-दाप पितरनि के जैहैँ॥
ताही लौँ जग सकल महा मुद मंगल छैहैँ।
ताही सौँ सुख पाइ लाख अभिलाष परैहैँ ॥१९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह सुनि मृदु मुसकाइ चतुर चतुरानन भाष्यौ।
धन्य धन्य महि-पाल मही-हित पर चित राख्यौ॥
तुम्हैं न कछुहूँ अदेय एक यह असमंजस पर।
गंग-धार कौ वेग धरै किमि धरनि धरा-धर॥२०॥
धमकि धूम सौं धाइ धँसै जबहीं ब्रह्मद्रव।
उथलपुथल तल होइ रसातल मचहि उपद्रव॥
जगत जलाहल होइ कुलाहल त्रिभुवन व्यापै।
ह्वै सनद्ध कटिबद्ध कौन थिरता फिरि थापै॥२१॥
तातैं कहत उपाय एक अतिसय हितकारी।
आराधौ तुम आसुतोष संकर त्रिपुरारी॥
सो सब भाँति समर्थ अर्थ-दायक चित-चाहे।
करत न नैंकु विचारि चार फल देत उमाहे॥२२॥
बिकल सकल जग जोहि छोहि करुना निज धारी।
निधरक धरि गर गरल सुरासुर-बिपति बिदारी॥
गर्ब खर्ब करि सर्व कठिन कालहु दुर्दर कौ।
चिर जीवन थिर कियौ मारकंडे मुनिबर कौ॥२३॥
सोइ इक सकत सँभारि गंग कौ वेग बिपुल बर।
करि जु कृपा बर देहिं लेहिं यह काज सीस पर॥
सकल मनोरथ होहिं सिद्ध तब तुरत तिहारे।
यौं कहि बिधि सब सुरनि सहित निज लोक सिधारे॥२४॥
यह सुनि महा धीर भूपति-मन नैंकु डर्यौ ना।
संसय संका सोक सोच मैं पलहुँ पर्यौ ना॥
बरु बाढ़ी चित चोप ओप आनन पर आई।
अमित उमंग-तरंग अंग-अंगनि मैं छाई॥२५॥
अब तौ हम सुभ ढंग गंग-आवन कौ पायौ।
पारावार-अपार-परे कौं पार लखायौ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह विचार निर्धारि हियैँ आनँद सरसायौ।
धन्यवाद है नीर निकरि नैननि तैँ आयौ ॥२६॥
पुनि लागे तप तपन जपन संकर दुख-भंजन।
बर-दायक करुना-निधान निज-जन-मन-रंजन॥
इक अँगुठा ह्वै ठाढ़ गाढ़ व्रत संजम लीने।
सहे बिबिध दुख गहे मौन इक दिसि मन दीने ॥२७॥
खान पान बस किए नींद नारी बिसराए।
और ध्यान सब धोइ देवधुनि की धुनि लाए॥
गयौ बीति इहिँ रीति एक संवतसर सारौ।
उठ्यो गगन लौं गाजि भूप कौ सुजस-नगारौ ॥२८॥
तब तजि अचल समाधि आधि-हर संकर जागे।
निज-जन-दुख मन आनि कसकि करुना सौँ पागे॥
आतुर चले उमंग-भरे भंगहु नहिँ छानी।
कृपा-कानि बरदान-देन-हित हिय हुलसानी ॥२९॥
डगमग पग मग धरत तजे बरदहु हरबर सौँ।
आए तिहिँ बन सघन बिभूषित जो नरबर सौँ॥
देखि भूप कौ कृसित रूप नैननि जल छायौ।
सृंगी-नाद बिषाद-हरन सुख-करन बजायौ ॥३०॥
दृग उघारि त्रिपुरारि निरखि नृप निपट चकाए।
रहे ललकि छबि-छकित पलक बिन पलक गिराए॥
सुंदर अमल अनूप भव्य भव-रूप सुहायौ॥
मनु तप-तेज-स्वरूप भूप - आगैँ चलि आयौ ॥३१॥
हेम-बरन सिर जटा चंद-छबि-छटा भाल पर।
कलित कृपा की कटा-घटा लोचन बिसाल पर॥
फनि-पति-हार-बिहार - भूमि बच्छस्थल राजै।
जग-अवलंब प्रलंब भुजनि फरकति छबि छाजै ॥३२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृढ़ कटि-धाम ललाम चाम सुभ दुरद-दुवन कौ।
गूढ़ जानु जो भार भरत सहजहिँ त्रिभुवन कौ।।
अरुन-कोकनद चरन सरन जो असरन जन के।
जिनकौ गुन-गुञ्जार करत मन-अलि मुनि-गन के।।३३।।
गौर सरीर बिभूति भूति त्रिभुवन की सोहै।
आनन परम-उदार-प्रकृति-छबि-छलक बिमोहै।।
उमगि कृपा कौ बारि पगनि डगमग उपजावत।
तकि तकि तांडव नचत दमकि-दम डमरु बजावत। ३४।।
मानि कामना सिद्ध जानि तूठे दुख-हारी।
भयौ भूप-मन मगन बढ़ैँ आनँद-नद भारी।।
किं-कर्तव्य-बिमूढ़ गूढ़ भायनि भरि भाए।
रहे थकित से दंग छनक बिन अंग डुलाए।।३५।।
पुनि कछु धीर बटोरि जोरि कर परे धरनि पर।
बरुनिनि झारत पाय पखारत नैन-नीर-झर।।
कंपित गात लखाति प्रेम-पुलकावलि बिकसति।
उमगि कंठ लौँ आइ बात हिचकी ह्वै निकसति।।३६।।
यह करुनामय दृश्य संभु प्रनतारति-हारी।
सके न देखि बिसेषि भक्त-दुख भए दुखारी।।
नृपहिँ और कछु करन कहन कौ ठौर न दीन्यौ।
अंतरजामी जानि भाव अन्तर कौ लीन्यौ।।३७।।
भुज उठाइ हरषाइ बाँकुरौ बिरद सँभार्‍यौ।
दियौ बिसद बर-राज भूप कौ काज सँवार्‍यौ।।
हम लैहैँ सिर गंग दंग जग होहि जाहि ज्वै।
यौँ कहि अंतर्धान भए नृप रहे चकित ह्वै।।३८।।
उठि महि सौँ महिपाल लगे चारौँ दिसि हेरन।
कृपा-सिंधु करुना-निधान कहि इत उत टेरन।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिव कौ सुखद स्वरूप चखनि भरि चहन न पाए।
मन की मनहीँ रही हाय कछु कहन न पाए ॥३९॥

इहिँ गिलानि की आनि घटा आसा धुँधराई।
भयौ मंद मुख-चंद दंद उम्मस उमगाई ॥
पै गुनि हर के बैन नैन आनँद-रस बरसे।
जप तप कौ करि बिहित बिसर्जन अति सुख सरसे ॥४०॥

इहिँ भाँति भगीरथ भूप बर साधि जोग जप तप प्रखर।
लीन्यो सिहात जिहिँ लखि अमर मान-सहित चित-चहत बर ॥४१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैथिलीशरण गुप्त

भारत के राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संवत् १९४३ में झाँसी जिलान्तर्गत चिरगाँव नामक कसबे में हुआ। गुप्त जी गहोई वैश्य हैं। इनका कुल साहित्य-प्रेमी रहा है। इनके पिता श्रीराम के भक्त और कवि थे। इनके एक भाई सियारामशरण भी अच्छे कवि और साहित्यकार हैं। गुप्तजी भी हिन्दी के अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हैं। आजकल वे चिरगाँव में रहते हैं जहाँ इनका एक अपना प्रेस भी है। ये सरल-स्वभाव, निरभिमान तथा दिखावट से दूर रहते हैं।

सरस्वती-संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से गुप्त जी की अभिरुचि हिन्दी-काव्य-रचना की ओर अग्रसर हुई और तब से आज तक मैथिलीशरण जी हिन्दी-काव्यवाणी के मन्दिर को अपनी ललित काव्य-कृतियों से निरन्तर अलंकृत करते जा रहे हैं। खड़ी बोली में तभी से वे निरन्तर कविता करने लगे और उनकी कविताएं सरस्वती में बराबर छपती रहीं। संवत् १९६६ में उनका छोटा-सा प्रबंध काव्य—'रंग में भंग' प्रकाशित हुआ। उसके बाद से बराबर गुप्तजी के छोटे-बड़े प्रबन्ध-काव्य छपते आ रहे हैं।

उनकी 'भारत-भारती' ने आरम्भ में हिन्दी-प्रेमियों को सबसे अधिक अपनी ओर आकृष्ट किया। स्वदेश की ममता से पूर्ण नवयुवकों ने इसे बड़े चाव से अपनाया। इसमें यद्यपि काव्यत्व की कमी है तथापि खड़ी बोली में धारावाहिक काव्य-रचना हो सकती है—इसे 'भारत-भारती' ने सिद्ध कर दिया। इसी प्रकार की अनेक कविताएँ गुप्त जी सरस्वती में लिखते रहे जो 'मंगलघट' में संगृहीत हैं।

गुप्तजी इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। युग की प्रवृत्ति में ज्यों-ज्यों परिवर्त्तन होता चला त्यों-त्यों गुप्तजी भी नई प्रवृत्ति, नई शैली को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनाते चले। छायावाद और रहस्यवाद की कविताओं की जब बाढ़ आई तब 'मैथिली-शरण' जी ने भी उस ढंग की कविताएँ कीं, जो 'झंकार' में संगृहीत हैं। पर यह भावना इनकी प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं थी। क्योंकि गुप्त जी व्यक्त जीवन और जगत् में अपने इष्टदेव राम के सौन्दर्य का दर्शन करनेवाले कवि हैं।

गीतकाव्य की भावना और शैली की ओर गुप्त जी का झुकाव 'साकेत' और 'यशोधरा'—दोनों बड़े काव्यों में है। इसके परिणाम-स्वरूप उनके प्रबन्धत्व में शिथिलता आ गई है।

कालानुसार काव्य-निर्माण-कला में परिवर्त्तन करते चलने के कारण उन्हें आधुनिक युग का प्रतिनिधि कवि कहना अनुचित न होगा। भारतेन्दु-युग की स्वदेश-भावना का चित्र 'भारत-भारती' आदि में अंकित हुआ। इसके बाद राष्ट्रीयता की विचार-धाराएँ—सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यत्ववाद, विश्वप्रेम, मजदूर-किसान-प्रेम आदि—की झलक उनकी कविताओं में बहुधा दिखाई देती है।

गुप्तजी की कविता के इतिहास में तीन अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था 'भारत-भारती' आदि की है जिसमें खड़ी बोली (हिन्दी) की सफाई और काव्य-बंध में उसे बाँधने का सफल प्रयास है। पर साथ ही उसमें गद्यवत् रूक्षता, इतिवृत्तात्मकता अधिक है। सरसता और भावुकता की कमी है। सुकुमार, कोमल और सरस पदों की वहाँ कमी खटकती है।

बंगला-साहित्य से परिचय और 'मेघनाथ-वध,' 'विरहिणी-व्रजाङ्गना' आदि के अनुवाद करने से बहुत कुछ सरसता और कोमलता का इनकी भाषा में उदय हुआ। फिर भी कभी-कभी कुछ रुखाई और संस्कृत के कर्णकटु शब्दों की कठोरता कहीं-कहीं मिल जाती है। तीसरी अवस्था है प्रगीत मुक्तकों की ओर गुप्तजी का झुकाव और गीतात्मक काव्यों की रचना, जिसका पर्याप्त उदाहरण साकेत में मिल सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनकी कविता में उच्च आदर्शों, पवित्र भावों के प्रति आदर है, भारतीय संस्कृति का प्रेम है, राष्ट्र-प्रेम की भावना है, पीड़ितों और शोषितों के प्रति उदारता, सहानुभूति और संमान का भाव है। वे वस्तुतः सामंजस्यवादी कवि हैं। अच्छी बातों को सब ओर से ग्रहण करने का प्रयास सदा करते रहे हैं। अब भी गुप्त जी काव्य-रचना कर रहे हैं।

गुप्तजी की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है, व्याकरण-संमत प्रयोग हैं, संस्कृत-प्रचुर होने पर भी उसमें प्रायः सरलता और स्वाभाविक प्रवाह भी है। काव्य-सम्बन्धी भावुकता में कुछ कमी रहने पर भी गुप्तजी की कविता आदर्श और उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत है।

उनकी मुख्य रचनाएँ हैं—

(१) भारत-भारती—इसमें प्राचीन भारतीय गौरव और वर्त्तमान हीन दशा का अच्छा चित्र खींचा गया है। कविता की दृष्टि से यह काव्य साधारण होने पर भी देश-जागरण के आन्दोलन में यह सहायक हुआ है।

(२) जयद्रथ-वध—यह छोटा सा करुणरस का खण्डकाव्य है जिसमें अभिमन्यु-वध और जयद्रथ-वध का वर्णन है।

(३) पंचवटी—यह भी छोटा-सा पर बड़ा सरस और मधुर खंडकाव्य है। इस काव्य में राम-लक्ष्मण के पंचवटी-जीवन और शूर्पणखा के नाक-कान काटे जाने की कथा है। कविता की दृष्टि से यह काव्य बहुत अच्छा है।

(४) साकेत—प्रबंधकाव्य है। इसमें श्रीराम-चरित्र वर्णित है। इसके अनेक स्थल बहुत ही मनोहर हुए हैं। लक्ष्मणपत्नी उर्मिला का चरित्र बड़ी भावुकता और मार्मिकता के साथ अंकित किया गया है। वही इस काव्य की नायिका है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनकी अन्य रचनाएँ हिंदू, गुरुकुल, त्रिपथगा, किसान, शक्ति, अनघ (नाट्य-काव्य), रंग में भंग, पत्रावली, वैतालिक, शकुन्तला, स्वदेश-संगीत, तिलोत्तमा, यशोधरा, द्वापर, कुणालगीत चंद्रहास आदि हैं। अनुवादों में नीचे लिखे तीन बंगला ग्रंथों के महत्त्वपूर्ण अनुवाद हैं—

(१) विरहिणी व्रजांगना, (२) वीरांगना, (३) मेघनादवध।

पंचवटी की सुषमा

चारु चन्द्र की चञ्चल किरणें खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से,
मानों झींम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंकों से।
पञ्चवटी की छाया में है सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर धीर वीर निर्भीकमना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर, जब कि भुवन भर सोता है?
भोगी कुसुमायुध योगी-सा बना दृष्टिगत होता है॥
किस व्रत में है व्रती वीर यह निद्रा का यों त्याग किए,
राजभोग्य के योग्य विपिन में बैठा आज विराग लिए।
बना हुआ है प्रहरी जिसका उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका तन है, मन है, जीवन है?
मर्त्यलोक-मालिन्य मेटने स्वामि-सङ्ग जो आई है,
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह कुटी आज अपनाई है।
वीर-वंश की लाज वही है फिर क्यों वीर न हो प्रहरी?
विजन देश है, निशा शेष है, निशाचरी माया ठहरी।
कोई पास न रहने पर भी जन-मन मौन नहीं रहता,
आप आपकी सुनता है वह, आप आपसे है कहता।
बीच-बीच में इधर-उधर निज दृष्टि डाल कर मोदमयी,
मन ही मन बातें करता है धीर धनुर्धर नई नई—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह, है क्या ही निस्तब्ध निशा,
है स्वच्छन्द-सुमन्द गन्धवह, निरानन्द है कौन दिशा ?
बन्द नहीं, अब भी चलते हैं नियति-नटी के कार्य्य-कलाप,
पर कितने एकान्त भाव से कितना शान्त और चुपचाप।
है बिखेर देती वसुन्धरा मोती, सबके सोने पर,
रबि बटोर लेता है उनको सदा सवेरा होने पर।
और विरामदायिनी अपनी सन्ध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम तनु जिससे उसका नया रूप झलकाता है।
सरल तरल जिन तुहिन कणों से हँसती हर्षित होती है,
अति आत्मीया प्रकृति हमारे साथ उन्हीं के रोती है!
अनजानी भूलों पर भी वह अदय दण्ड तो देती है,
पर बूढ़ों को भी बच्चों-सा सदय भाव से सेती है॥
तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके, पर है मानों कल की बात!
वन को आते देख हमें जब आर्त्त, अचेत हुए थे तात।
अब वह समय निकट ही है जब अवधि पूर्ण होगी वन की,
किन्तु प्राप्ति होगी इस जन को इससे बढ़ कर किस धन की ?
और आर्य्य को ? राज्य-भार तो वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे, हम सबको भी मानों विवश बिसारेंगे।
कर विचार लोकोपकार का हमें न इससे होगा शोक,
पर अपना हित आप नहीं क्या कर सकता है यह नरलोक ?
मझली माँ ने क्या समझा था ? कि मैं राजमाता हूँगी,
निर्वासित कर आर्य्य राम को, अपनी जड़ें जमा लूँगी!
चित्रकूट में किन्तु उसे ही देख स्वयं करुणा थकती,
उसे देखते थे सब, वह थी निज को ही न देख सकती!
अहो ? राजमातृत्व यही था, हुए भरत भी सब त्यागी,
पर सौ सौ सम्राटों से भी हैं सचमुच वे बड़भागी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक राज का मूढ़ जगत ने कितना महामूल्य रक्खा,
हमको तो मानों वन में ही है विश्वानुकूल्य रक्खा!
होता यदि राजत्व मात्र ही लक्ष्य हमारे जीवन का,
तो क्यों अपने पूर्वज उसको छोड़ मार्ग लेते वन का?
परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं,
किन्तु मुझे तो सीधे-सच्चे पूर्व-भाव ही भाते हैं॥

जो हो, जहाँ आर्य्य रहते हैं वहीं राज्य वे करते हैं;
उनके शासन में वनचारी सब स्वच्छन्द विहरते हैं।
रखते हैं सयत्न हम पुर में जिन्हें पींजरों में कर बन्द;
वे पशु-पक्षी भाभी से हैं हिले यहाँ स्वयमपि, सानन्द!

करते हैं हम पतित जनों में बहुधा पशुता का आरोप,
करता है पशुवर्ग किन्तु क्या निज निसर्ग नियमों का लोप?
मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ,
किन्तु पतित को पशु कहना भी कभी नहीं सह सकता हूँ।

आ आकर विचित्र पशु-पक्षी यहाँ बिताते दोपहरी,
भाभी भोजन देतीं उनको, पञ्चबटी छाया गहरी।
चारु चपल बालक ज्यों मिलकर माँ को घेर खिझाते हैं,
खेल-खिझाकर भी आर्य्या को वे सब यहाँ रिझाते हैं!

गोदावरी नदी का तट वह ताल दे रहा है अब भी,
चञ्चल जल कल-कल कर मानों तान ले रहा है अब भी!
नाच रहे हैं अब भी पत्ते मन-से सुगम महकते हैं,
चन्द्र और नक्षत्र ललक कर लालच भरे लहकते हैं॥

वैतालिक विहङ्ग भाभी के सम्प्रति ध्यान लग्न-से हैं,
नए गान की रचना में वे कवि-कुल तुल्य-मग्न-से हैं।
बीच बीच में नर्तक केकी मानों यह कह देता है—
मैं तो प्रस्तुत हूँ, देखें कल कौन बड़ाई लेता है॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आँखों के आगे हरियाली रहती है हर घड़ी यहाँ,
जहाँ तहाँ झाड़ा में झिरती है झरनों की झड़ी यहाँ।
वन की एक-एक हिमकणिका जैसी सरस और शुचि है,
क्या सौ सौ नागरिक जनों का वैसा विमल रम्य रुचि है ?

मुनियों का सत्संग यहाँ है, जिन्हे हुआ है तत्व-ज्ञान,
सुनने को मिलते हैं उनसे नित्य नए अनुपम आख्यान।
जितने कष्ट-कण्टकों में है जिनका जीवन-सुमन खिला,
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही अत्र, तत्र, सर्वत्र मिला॥

शुभ सिद्धान्त वाक्य पढ़त हैं शुक-सारी भी आश्रम के,
मुनिकन्याएँ यश गाती हैं क्या ही पुण्य-पराक्रम के।
अहा ! आर्य्य के विपिन-राज्य में सुख पूर्वक सब जाते हैं,
सिंह और मृग एक घाट पर आकर पानी पीते हैं॥

गुह, निषाद, शबरों तक का मन रखते हैं प्रभु कानन में,
क्या ही सरल वचन रहते हैं इनके भोले आनन में !
इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी,
इनमें भी मन और भाव हैं किन्तु नहीं वैसी वाणी॥

कभी विपिन में हमें व्यजन का पड़ता नहीं प्रयोजन है,
निर्मल जल, मधु, कन्द, मूल, फल आयोजन मय भोजन है।
मनःप्रसाद चाहिए केवल क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद ?
भाभी का आह्लाद अतुल है मझली माँ का विपुल विषाद !

अपने पौधों में जब भाभी भर भर पानी देती हैं,
खुरपी लेकर आप निराती जब वे अपनी खेती हैं।
पाती हैं तब कितना गौरव, कितना सुख, कितना सन्तोष !
स्वावलम्ब की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष॥

सांसारिकता में मिलती है यहाँ निराली निस्पृहता,
अत्रि और अनुसूया की-सी होगी कहाँ पुण्य-गृहता ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानों है यह भुवन भिन्न ही, कृत्रिमता का काम नहीं,
प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी, कहीं विकृति का नाम नहीं।
स्वजनों की चिन्ता है हमको, होगा उन्हें हमारा सोच,
यही एक इस विपिन-वास में दोनों ओर रहा सङ्कोच।
सब सह सकता है, परोक्ष ही कभी नहीं सह सकता प्रेम,
बस, प्रत्यक्ष भाव में उसका रक्षित-सा रहता है क्षेम॥
इच्छा होती है स्वजनों को एक बार बन ले आऊँ,
और यहाँ की अनुपम महिमा उन्हें घुमाकर दिखलाऊँ।
विस्मित होंगे देख आर्य्य को वे घर की ही भाँति प्रसन्न,
मानो वन-विहार में रत हैं ये वैसे ही आत्मसम्पन्न!
यदि बाधाएँ हुईं हमें तो उन बाधाओं के ही साथ,
जिससे बाधा-बोध न हो, वह सहनशक्ति भी आई हाथ।
जब बाधाएँ न भी रहेंगी तब भी शक्ति रहेगी यह,
पुर में जाने पर भी वन की स्मृति अनुरक्त रहेगी यह॥
नहीं जानतीं हाय! हमारी माताएँ आमोद प्रमोद,
मिली हमें है कितनी कोमल, कितनी बड़ी प्रकृति की गोद।
इसी खेल को कहते हैं क्या विद्वज्जन जीवन-संग्राम?
तो इसमें सुनाम कर लेना है कितना साधारण काम॥
बेचारी ऊर्मिला हमारे लिए व्यर्थ रोती होगी,
क्या जाने वह, हम सब वन में होंगे इतने सुख-भोगी!"
मग्न हुए सौमित्रि चित्र-सम नेत्र निमीलित एक निमेष,
फिर आँखें खोलें तो यह क्या, अनुपमरूप, अलौकिक वेष!
चकाचौंध-सी लगी देख कर प्रखर ज्योति की वह ज्वाला,
निस्सङ्कोच खड़ी थी सम्मुख एक हास्यवदना बाला!
रत्नाभरण भरे अङ्गों में ऐसे सुंदर लगते थे—
ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ सौ जुगनू जगमग जगते थे!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थी अत्यन्त अतृप्त वासना दीर्घ दृगों से झलक रही,
कमलों की मकरन्द-मधुरिमा मानों छवि से छलक रही।
किन्तु दृष्टि थी जिसे खोजती मानों उसे पा चुकी थी,
भूली-भटकी मृगी अन्त में अपनी ठौर आ चुकी थी॥
कटि के नीचे चिकुर-जाल में उलझ रहा था बायाँ हाथ,
खेल रहा हो ज्यों लहरों से लोल कमल भौरों के साथ।
दायाँ हाथ लिए था सुरभित चित्र-विचित्र-सुमन-माला,
टाँगा धनुष कि कल्पलता पर मनसिज ने झूला डाला!
पर सन्देह-दोल पर ही था लक्ष्मण का मन झूल रहा,
भटक भावनाओं के भ्रम में भीतर ही था भूल रहा।
पड़े विचार-चक्र में थे वे, कहाँ न जानें कूल रहा,
आज जागरित-स्वप्न-जाल यह सम्मुख कैसा फूल रहा!
देख उन्हें विस्मित विशेष वह सुस्मितवदनी ही बोली—
(रमणी की मूरत मनोज्ञ थी किन्तु न थी सूरत भोली)
"शूरवीर होकर अबला को देख सुभग, तुम थकित हुए,
संसृति की स्वाभाविकता पर चञ्चल होकर चकित हुए!
प्रथम बोलना पड़ा मुझे ही, पूछी तुमने बात नहीं,
इससे पुरुषों की निर्ममता होती क्या प्रतिभात नहीं!"
सँभल गए थे अब तक लक्ष्मण वे थोड़े से मुसकाए,
उत्तर देते हुए उसे फिर निज गम्भीर भाव लाए—
"सुन्दरि, मैं सचमुच विस्मित हुँ तुमको सहसा देख यहाँ,
ढलती रात, अकेली अबला, निकल पड़ी तुम कौन कहाँ?
पर अबला कह कर अपने को तुम प्रगल्भता रखती हो,
निर्ममता निरीह पुरुषों में निस्सन्देह निरखती हो!

गोपियों के प्रति उद्धव की उक्ति

अहा! गोपियों की यह गोष्ठी,
वर्षा की ऊषा-सी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यस्त-ससम्भ्रम उठ दौड़े की,
स्खलित ललित भूषा-सी।
श्रम कर जो क्रम खोज रही हो,
उस भ्रमशील स्मृति-सी,
एक अतर्कित स्वप्न देख कर,
चकित चौंकती धृति-सी।
हो हो कर भी हुई न पूरी,
ऐसी अभिलाषा-सी,
कुछ अटकी आशा-सी, भटकी,
भावुक की भाषा-सी।
सत्य धर्म रक्षा हो जिससे,
ऐसी मर्म मृषा-सी,
कलस कूप में, पाश हाथ में,
ऐसी भ्रान्त तृषा-सी!
उस थकान-सी, ठीक मध्य में
जो पथ के आई हो,
कूद गए मृग की हरिणी-सी,
जो न द पाई हो!
तिमिर देखती उस यात्रा-सी,
जो सन्ध्या की भूली,
नहीं समाती हुई साँस-सी;
जो असमय उठ फूली।
बालक की फल चेष्टा-सी, जो
पा न सके, पर लपके,
उस जलती भट्टी-सी जिससे
उड़ उड़ मदिरा टपके!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवश अचलता-सी, जिससे हो
रस - चंचलता चूती,
कठिन मान की हठ समाप्ति-सी,
खोज रही जो दूती।
उस उत्कंठा-सी, जो क्षण-क्षण
चौंक उठे एणी-सी,
खुल कर भी जो सुलझ न पाई,
उस उलझी वेणी-सी।
बद्ध-वारि - लहरी - सी जिसको
चौमुख वायु विलोड़े,
उस निमग्नता-सी जो अपना
तल पावे, तब छोड़े!
वृन्दावन की ही झाड़ी-सी,
झंझा की झकझोरी,
जिसका सिद्ध हुआ अन्तर्हित,
सहसा चोरी चोरी।
सुरांगना-सी, तपोभंग की
ठान चली, जो मन में!
किन्तु तपोवन के प्रभाव से
लगी स्वयं साधन में।
तुल्य-दुःख में हत-ईर्ष्या-सी,
विश्व-व्याप्त समता-सी;
जिसको अपना मोह न हो, उस
मूर्तिमती ममता-सी।
लिख गया जिसमें विशेष कुछ,
ऐसी लोहित मसि-सी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किसी छुरी के क्षुद्र म्यान में
ठूँस दी गई असि-सी !
सम्पुटिकता होकर भी अलि को
धर न सकी नलिनी-सी,
अथवा शून्य-वृन्त पर उड़ कर
मड़राई अलिनी-सी।
पिक-रव सुनने को उत्कर्णा
मधुपर्णा लतिका-सी,
प्रोषितपतिका पूर्व स्मृति में
रत आगतपतिका-सी !
जो सबको देखे, पर निज को
भूल जाय उस मति-सी,
अपने परमात्मा से विछुड़े
जीवात्मा की गति-सी।
चन्द्रोदय की बाट जोहती
तिमिर - तार - माला-सी,
एक-एक व्रज-बाला बैठी
जागरूक ज्वाला-सी !
अहो प्रीति की मूर्त्ति, जगत में
जीवन धन्य तुम्हारा।
कर न सका अनुसरण कठिनतम
कोई अन्य तुम्हारा।
चपल इन्द्रियों को भी तुमने
तन्मय बना दिया है,
पावन हुआ पाप भी जिसमें,
वह पथ जना दिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धन्य दूरता ही प्रिय की, जो
और निकट ले आवे,
चर्म-चक्षुओं के बदले यह
आत्मा उसको पावे।
प्राप्य अन्ततः वह परमात्मा
आत्मा ही के द्वारा,
मिथ्या माया का प्रपंच है
दृश्यमान यह सारा।
एक एक तुम सब राधा हो,
कहाँ तुम्हारी राधा ?
नहीं दीखती मुझे यहाँ वह,
हुई कौन-सी बाधा ?
सच कहता हूँ, मैंने अपना
राम तुम्हीं में पाया,
किन्तु तुम्हारा कृष्ण कहाँ, मैं
यही पूछने आया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माखनलाल चतुर्वेदी

मध्यप्रान्त के होशंगाबाद जिले के अन्तर्गत 'बाबई' नामक ग्राम में श्री माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म संवत् १९४५ में हुआ था। उनके पूर्वज जयपुर के 'रानोली' स्थान में रहनेवाले गौड़ ब्राह्मण थे जो 'बाबई' में आकर बस गए थे। उनके पिता नन्दलाल चतुर्वेदी शिक्षा-प्रेमी थे। 'मिडिल' और 'नार्मल' परीक्षाएँ पास कर श्री माखनलाल खंडवा के एक मिडिल स्कूल में अध्यापन करने लगे। इसी समय उन्होंने संस्कृत, अँग्रेजी, मराठी, बंगला गुजराती आदि भाषाएँ पढ़ीं और इनमें निपुण हो गए।

चतुर्वेदीजी बचपन से ही भावुक और काव्य-प्रेमी हैं। खंडवा की 'प्रभा' पत्रिका के संपादक रहे। माधवराय सप्रे के साथ आकर राष्ट्रीय कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता और पत्रकार हुए। कर्मवीर प्रेस में आजकल रहते हैं। 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से हिन्दी-संसार भलि भाँति उनसे परिचित है। इस नाम से चतुर्वेदीजी की कविताएँ बहुत दिनों से हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होती आ रही हैं। उनमें नव जागरण और नवीन भावना की स्फूर्त्ति दिखाई पड़ती है।

आप बड़े अच्छे व्याख्याता, कर्मवीर के कर्मठ संपादक और सफल गद्य-लेखक भी हैं। हिंदी-साहित्य-संमेलन के अध्यक्ष पद को भी चतुर्वेदीजी सुशोभित कर चुके हैं। आपकी रचना छायावाद-युग के पहले से होती आ रही है। चतुर्वेदीजी वस्तुतः द्विवेदी-युग के कवि हैं। परन्तु उनकी कविता में जड़ को चेतन, अमूर्त्त को मूर्त्त रूप में देखने तथा लाक्षणिक वक्रता द्वारा उक्ति को मर्मस्पर्शी बनाने की क्षमता, (जो छायावाद युग की विशेषताएँ हैं) पहले से ही वर्त्तमान है। अतः कह सकते हैं कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनकी रचना में छायावाद की प्रवृत्तियाँ पहले से दिखाई देतीं हैं। किन्तु उनका छायावाद राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की सीमा से बाहर नहीं जाता।

संसार की साधारण वस्तुओं द्वारा भी उन्हें संकेत प्राप्त होते हैं और वे बड़ी सफलता के साथ उन्हें अपनी विशिष्ट शब्दावली में ढाल कर उपस्थित करते हैं। हम कह सकते हैं कि द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक कविताओं में अभिव्यंजना की नवीन शैली का पुट देनेवालों में चतुर्वेदी जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

चतुर्वेदीजी की भाषा भी अपने ढंग की है। लाक्षणिक वक्रता और संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रवाह में उर्दू-फारसी के शब्दों का वे धड़ल्ले के साथ प्रयोग करते हैं। उनका लक्ष्य भाव-प्रकाशन रहता है। यद्यपि उनकी यह प्रवृत्ति कभी-कभी कुछ अधिक खटकनेवाली हो उठती है, तथापि वह इसलिए नहीं खटकती कि उर्दू का बहिष्कार किया जाना चाहिए वरन् इसलिए खटकती है विषय और भाषा के प्रवाह में उनके कारण कभी-कभी अवरोध उत्पन्न हो जाता है। पर चतुर्वेदी जी अपने धुन के पक्के हैं, इन्हें अपने भावों की अभिव्यक्ति का ध्यान अधिक है, आलोचना का कम। इनकी 'फूल की अभिलाषा', 'कैदी', 'कोकिला', 'कुंजकुटीरे' आदि कविताएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं।

चतुर्वेदी जी की कविताओं में कहीं-कहीं अस्पष्टता भी दिखाई देती है। इसका कारण है उनके देश-प्रेम की भावना के साथ-साथ उनके आराध्य-देव की अनुभूति का मिश्रण। और आराध्य की यह अनुभूति अव्यक्त है, अस्पष्ट है। फलतः उनकी काव्य-कल्पना में भी अस्पष्टता आ जाती है।

इनका एक कविता-संग्रह 'हिम-किरीटिनी' के नाम से प्रकाशित हुआ है जिस पर इन्हें 'देव-पुरस्कार' समर्पित किया गया है। 'हिम-तरंगिनी' भी इनका एक पद्य-संग्रह है। इनका लिखित 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नाटक पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका है। नाट्यकला की दृष्टि से उत्कृष्ट न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने पर भी उसमें काव्यात्मक रमणीयता की झलक यत्र-तत्र मिलती है। 'साहित्य-देवता' नामक एक गद्य ग्रन्थ भी हाल में ही प्रकाशित हुआ है जिसमें गद्य-काव्य का आनन्द मिलता है।

राष्ट्रीय कवि के नाते श्री चतुर्वेदी जी सदैव हिन्दी-संसार में संमान और प्रतिष्ठा के भाजन बने रहेंगे।

(१)

उन्मूलित वृक्ष

भला किया जो इस उपवन के,
सारे पुष्प तोड़ डाले।
भला किया, मीठे फलवाले
ये तरुवर मरोड़ डाले,
भला किया, सींचो पनपाओ
लगा चुके हो जो कलमें,
भला किया दुनियाँ पलटा दी
प्रलय उमङ्गों के बल में।

लो, हम तो चल दिए,
नये पौधों प्यारों, आराम करो,
दो दिन की दुनियाँ में आए,
हिलो-मिलो कुछ काम करो।

पथरीले ऊँचे टीले हैं,
रोज नहीं सींचे जाते हैं,
वे नागर न यहाँ आते हैं,
जो थे बागीचे आते,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झुकी टहनियाँ तोड़ तोड़ कर,
वनचर भी खा जाते हैं।
शाखामृग कन्धों पर चढ़ कर
भीषण शोर मचाते हैं।

दीन बन्धु की कृपा! बन्धु,
जीवित हैं, हाँ हरियाले हैं।
भूले भटके कभी गुजरना
हम वे ही फलवाले हैं।

(२)

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में
बिँध प्यारी को ललचाऊँ,

चाह नहीं, सम्राटों के शव पर
हे हरि! डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड़ लेना बनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३)

स्मृति के मधुर बसन्त

पधारो स्मृति के मधुर बसन्त !
शीतल स्पर्श मन्द मदमाती,
मोद सुगन्ध लिए इठलाती।
तरु-अनुराग लालसा-डाली,
सिमटी प्रीति-लता हरियाली।
विमल-अश्रुकलिकाएँ, उन पर तोड़ेंगी, ऋतुराज! उभारो ॥स्मृति के०॥
तोड़ूँगी ? ना, लिखने दूँगी,
दो दिन हिलने-मिलने दूँगी।
हिला-डुला दूँगी शाखाएँ, 'चुने सकल संसार'—उचारो ॥स्मृति के०॥
आते ही वह छबि दरसा दो,
मेरा जीवन धन हरषा दो।
फूलों की बरसा बरसा दो, डूबूँ, तैरूँ, सुध न बिसारो ॥स्मृति के०॥
दोनों भुजा पकड़ ली पापी।
तू जलधर, मैं बनी कलापी।
नाचें गाएँ पागल बन बन ज्ञान, जरा जर्जरता टारो ॥स्मृति के०॥
भीजे अम्बरवाली ख्याली ?
चढ़ तरुवर की डाली-डाली।
उड़ें चलो मेरे बनमाली ! "पगली !" कह तुम वहाँ पुकारो ॥स्मृति के०॥
नहीं, चलो हिलमिल कर फूलें।
बने बिहङ्ग झूलने झूलें।
भूलें आप भुला दें सबको, भूमण्डल पर स्वर्ग उतारो ॥स्मृति के०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं, चलो हम हों दो कलियाँ।
मुसक, सिसक होवे रँग-रलियाँ।
राष्ट्र-देव रँग रँगो सँभालो! कृष्णार्पण के प्रथम पधारो ।।स्मृतिके०।।
आवो जग भृङ्ग बन जावें।
आँसू रस पी पी सुख पावें।
गूँजे लिपट लिपट—चुप रह,-लग जाएगी-मत मारो ।।स्मृति के०।।

(४)

झरने को देखकर

(सातपुड़ा शैल का एक झरना देखकर)

कितने निर्जन में दीखा, रे मुक्तहार वाणी के
कवि, मंजुल बीणाधारी नवप्रकृति कल्याणी के,
किस निर्झरिणी के धन हो, पथ भूले हो किस घर का?
है कौन वेदना, बोलो, कारण क्या करुणा-स्वार का?
मेरी बीणा की कटुता, धो डाल तरल तारों से,
जी तुझ-सा पागल हो के, बह उठे हृदय के द्वारों से।
चढ़कर, गिरकर, फिर उठकर, कहता तू अमर कहानी,
गिरि के अंचल में करता कूजित कल्याणी बाणी।
इस ध्वनि पर प्रतिध्वनि करती, रह रहकर परवत-माला,
वह गुफा गीत गाती है ओढ़े नव हरा दुशाला।
बे-जाना नाद सुनाता, जाना-सा जी में पाता,
अवनी-तल क्या, हीतल में तू शीतल धूम मचाता।
क्या तूने ही नारद को सिखलाया ता-ना-ना-ना?
क्या तुझसे ही माधव ने सीखा था बेनु बजाना?
क्या मेरा गीत मधुर है?—पड़ गया तुम्हारा पानी,
ऊचे नीचे टीलों से, मैंने कब कही कहानी?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाषाणों से लड़कर भी ठंढक-कब मैंने जानी ?
कब जी का मल धो पाता, मेरी आँखों का पानी ?
कब अमित पा सके मुझमें, शीतल तुषार की धारा ?
मैंने प्रियतम का रुख कब गिरकर-उठकर पथ धारा ?

कब मेरी बूदों, मेरे हैं तट हरियाले होते।
कब ग्वाले मुझमें आके, अपने चरणों को धोते ?
मैं गीत साँस में गुथ कब ओठों पहरों गाता हूँ ?
कब रवि-शशि का समता से स्वागत मैं कर पाता हूँ ?

मैं भूमण्डल को कृति से हुँ कुम्भीपाक बनाता,
तू स्वर्गंगा बन करके सुर-लोक मही पर लाता।
लय मेरी प्रलय न करती तरुणों के हृदय उतर के,
तू कल-कल कहला लेता, पंछी-दल पागल करके।

मेरी गरीब करुणा पर, वे मस्तक डोल न पाते,
तेरी गति पर तरु-तृण हैं, अपनी फूँगनियाँ हिलाते।
मैं पथ के अवरोधों से, पथ भूला रुक जाता हूँ,
भारी प्रवाह होकर भी, विषयों में चुक जाता हूँ।

पर तेरे पथ को रोकें जिस दिन काली चट्टानें,
साथी तरु-लता भले हो तुझको लग जाँय मनानें,
तब भी तू—जरा ठहरकर, सीकर-संग्रहकर अपने,
चट्टानों के मनसूबे, चढ़कर कर देता सपने।

या हृदय बेध बज्रों के शीतल सेना ले अपनी,
प्रियतम प्रदेश चल देता, पहने नीली सी कफनी।
मैं उपकारी के प्रति भी, ममता बारूद बनाता,
हूँ अपनी कुटी जलाता, उसके घर आग लगाता,
तू मित्र,—प्रमत्त करों से ग्रीषम में प्राण सुखाता,
पर उसका स्वागत गाकर, किरनों पर अर्घ्य चढ़ाता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरे गीतों के प्यारे! बूदें सूखने न पातीं,
विस्मृति उनको कर में ले, अपना शृङ्गार बनातीं।
पंछी दलने पर तेरे गीतों का गान किया है,
हरि ने तेरी बाणी को अमरत्व प्रदान किया है।
क्या जाने तरु पंखेरू तुझको लख क्यों जीते हैं?
तेरा कल-कल पीते हैं, या तेरा जल पीते हैं?
अपने पंखों से किसने, नभ-छेदन इन्हें सिखाया?
आकाश-लोक का किसने, इनको गन्धर्व बनाया?
श्यामल धन! श्वासों-जैसी बाँसुरी न दिखलाती है,
पर तेरे गीतों की धुन स्वच्छन्द सुनी जाती है।
ये छोटे-छोटे तरुवर, रह-रह तालें देते हैं,
तुझसे प्रसाद में ठंडे प्यारे मोती लेते हैं।
कितने प्यारे तरु फूले, कलियों का मकुट लगाए,
पर तेरी गोदी में हैं, वे अपना शीश झुकाए।
मानो वे गले लिपट के, कहते—'उपकार अमित हैं,
साँवले तुम्हारी करुणा, बस, तुमको ही अर्पित है।'
फूलों को श्याम चढ़ाकर जब वे सुगन्ध देते हैं,
पत्ते पंखे बन, मारुत जब मन्द-मन्द देते हैं,
तुम अपने पास न रखकर, ज्यों का त्यों उन्हें बहाते,
लहरों में नचा-नचाकर, प्रियतम के घर ले जाते।
बन माली बन-तरुओं में तुझसे खिलवाड़ मचाते,
गिरि-शिखर, गोद लेने में तुझ पर हैं होड़ लगाते।
जब घन श्याम आ जाते, तुझ पर जीवन ढुलकाते,
हँस-हँस कर इन्द्र-धनुष का हैं मुकुट तुझे पहनाते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयशंकर प्रसाद

कविवर जयशंकर 'प्रसाद' आधुनिक काव्य में छायावाद-रहस्यवाद युग के प्रवर्त्तक रहे हैं। काशी के एक प्रसिद्ध व्यापारी कान्यकुब्ज वैश्य कुल में संवत् १९४६ में इनका जन्म हुआ। इनके पितामह साहु शिवरत्न काशी के तम्बाकू-सुरती के बहुत बड़े और भारत-विख्यात व्यापारी थे जो सुँघनी साहु के नाम से प्रसिद्ध थे। तभी से 'प्रसाद' जी का घराना सुँघनी साहु कहा जाने लगा।

प्रसादजी के पिता साहु देवीप्रसाद की मृत्यु तभी हो गयी थी जब बालक जयशंकर क्वींस कालेज की सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उसी समय उनका स्कूल का पढ़ना छूट गया। घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, अँग्रेजी, फारसी और उर्दू का उन्होंने अध्ययन किया। संवत् १८७३-७४ के लगभग इन्होंने कलकत्ता, पुरी आदि की यात्रा की जिसका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। सत्रह वर्ष की ही अवस्था में बड़े भाई के भी मर जाने पर घर की गृहस्थी का सारा बोझा इस किशोर को उठाना पड़ा। इसका निर्वाह बड़ी योग्यता के साथ करते हुए उन्होंने खानदानी कारबार को सम्हाला। 'प्रसाद' जी शरीर से बड़े हृष्ट-पुष्ट थे, व्यायाम और कुश्ती का भी उन्हें शौक था। पर मृत्यु के वर्षों पूर्व से वे बीमार रहने लगे थे तथा कार्तिक शुक्ल ११ संवत् १९९४ में क्षयमा से इनकी मृत्यु हुई।

प्रसादजी का जीवन बहुत सीधा-सादा था। उनकी रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान सर्वत्र सरलता भरी हुई थी। भारतीयता और राष्ट्रीयता से उन्हें अनन्य प्रेम था। भारत की पुरातन संस्कृति और भारत की उदार भावना के वे उपासक थे। बौद्ध संस्कृति के प्रति भी उनमें आदर भावना थी। पर इनके साथ-साथ उनमें अन्ध-विश्वास और रूढ़िगत कट्टरता न थी वरन् उनके हृदय में धार्मिक उदारता और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बौद्धिक सहिष्णुता थी। मानवता के वे सच्चे पुजारी थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे गवेषणाशील, चिन्तक, विचारक और प्राचीन इतिहास के शोधपूर्ण अध्येता थे। उन्होंने नाटक, कविता, कहानी उपन्यास और गवेषणात्मक तथा आलोचनात्मक निबंध—सभी प्रकार की साहित्यिक कृतियों का सफलता के साथ निर्माण किया।

कविता की ओर उनकी अभिरुचि बचपन से ही थी। कविजनोचित नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा और सरस-कल्पनाशीलता का वरदान मानों उन्हें सरस्वती से प्राप्त था। वे बड़े ही भावुक थे! अपने व्यक्तिगत साहित्यिक अध्यवसाय एवं अध्ययन और प्रतिभा के बल पर उन्होंने हिन्दी साहित्य में नए युग का प्रवर्त्तन किया। हिन्दी-कविता को उन्होंने नवीन अभिव्यंजना-शैली, नवीन भावधारा, नवीन छन्द और नवीन भाषा-शक्ति प्रदान की। अतुकान्त छन्द और रहस्यवाद-छायावाद की नवीन काव्यधारा का प्रवर्त्तन करते हुए प्रसादजी ने हिन्दी में भावाभिव्यक्ति की नई शक्ति प्रचलित की। भावों की मौलिकता, चिन्तनपूर्ण गंभीरता तथा मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक चित्रण इनकी विशेषताएँ हैं। चिन्तन की गंभीरता तथा दार्शनिक बुद्धि के प्रयोग के कारण कहीं-कहीं इनकी रचना में क्लिष्टता और अर्थ-दुरूहता भी आ गई है।

पहले प्रसादजी व्रजभाषा में कविता बनाया करते थे। पर युगकी चेतना और पुकार ने इन्हें खड़ी बोली की ओर आकृष्ट किया। खड़ी बोली के माध्यम से कविता करने में प्रसाद की सहज कविप्रतिभा चमक उठी। नवीन ढंग की काव्य-रचनाओं में 'झरना' 'आँसू' 'लहर' और 'कामायनी' मुख्य हैं। 'आँसू' में वियोग की करुण पर मधुर व्यंजना है। पर प्रियतम के अज्ञात होने से उस में रहस्यात्मकता आ गई है। विभिन्न विषयों पर लिखित, तीव्र भावाकुलता से समन्वित 'लहर' इनकी स्फुट कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह की भी अनेक कविताओं में कवि रहस्योन्मुख हो गया है। कुछ कविताओं में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयशंकर प्रसाद

कविवर जयशंकर 'प्रसाद' आधुनिक काव्य में छायावाद-रहस्यवाद युग के प्रवर्त्तक रहे हैं। काशी के एक प्रसिद्ध व्यापारी कान्यकुब्ज वैश्य कुल में संवत् १९४६ में इनका जन्म हुआ। इनके पितामह साहु शिवरत्न काशी के तम्बाकू-सुरती के बहुत बड़े और भारत-विख्यात व्यापारी थे जो सुँघनी साहु के नाम से प्रसिद्ध थे। तभी से 'प्रसाद' जी का घराना सुँघनी साहु कहा जाने लगा।

प्रसादजी के पिता साहु देवीप्रसाद की मृत्यु तभी हो गयी थी जब बालक जयशंकर क्वींस कालेज की सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उसी समय उनका स्कूल का पढ़ना छूट गया। घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, अँग्रेजी, फारसी और उर्दू का उन्होंने अध्ययन किया। संवत् १८७३-७४ के लगभग इन्होंने कलकत्ता, पुरी आदि की यात्रा की जिसका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। सत्रह वर्ष की ही अवस्था में बड़े भाई के भी मर जाने पर घर की गृहस्थी का सारा बोझा इस किशोर को उठाना पड़ा। इसका निर्वाह बड़ी योग्यता के साथ करते हुए उन्होंने खानदानी कारबार को सम्हाला। 'प्रसाद' जी शरीर से बड़े हृष्ट-पुष्ट थे, व्यायाम और कुश्ती का भी उन्हें शौक था। पर मृत्यु के वर्षों पूर्व से वे बीमार रहने लगे थे तथा कार्तिक शुक्ल ११ संवत् १९९४ में क्षयमा से इनकी मृत्यु हुई।

प्रसादजी का जीवन बहुत सीधा-सादा था। उनकी रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान सर्वत्र सरलता भरी हुई थी। भारतीयता और राष्ट्रीयता से उन्हें अनन्य प्रेम था। भारत की पुरातन संस्कृति और भारत की उदार भावना के वे उपासक थे। बौद्ध संस्कृति के प्रति भी उनमें आदर भावना थी। पर इनके साथ-साथ उनमें अन्ध-विश्वास और रूढ़िगत कट्टरता न थी वरन् उनके हृदय में धार्मिक उदारता और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बौद्धिक सहिष्णुता थी। मानवता के वे सच्चे पुजारी थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे गवेषणाशील, चिन्तक, विचारक और प्राचीन इतिहास के शोधपूर्ण अध्येता थे। उन्होंने नाटक, कविता, कहानी उपन्यास और गवेषणात्मक तथा आलोचनात्मक निबंध—सभी प्रकार की साहित्यिक कृतियों का सफलता के साथ निर्माण किया।

कविता की ओर उनकी अभिरुचि बचपन से ही थी। कविजनोचित नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा और सरस-कल्पनाशीलता का वरदान मानों उन्हें सरस्वती से प्राप्त था। वे बड़े ही भावुक थे! अपने व्यक्तिगत साहित्यिक अध्यवसाय एवं अध्ययन और प्रतिभा के बल पर उन्होंने हिन्दी साहित्य में नए युग का प्रवर्त्तन किया। हिन्दी-कविता को उन्होंने नवीन अभिव्यंजना-शैली, नवीन भावधारा, नवीन छन्द और नवीन भाषा-शक्ति प्रदान की। अतुकान्त छन्द और रहस्यवाद-छायावाद की नवीन काव्यधारा का प्रवर्त्तन करते हुए प्रसादजी ने हिन्दी में भावाभिव्यक्ति की नई शक्ति प्रचलित की। भावों की मौलिकता, चिन्तनपूर्ण गंभीरता तथा मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक चित्रण इनकी विशेषताएँ हैं। चिन्तन की गंभीरता तथा दार्शनिक बुद्धि के प्रयोग के कारण कहीं-कहीं इनकी रचना में क्लिष्टता और अर्थ-दुरूहता भी आ गई है।

पहले प्रसादजी व्रजभाषा में कविता बनाया करते थे। पर युगकी चेतना और पुकार ने इन्हें खड़ी बोली की ओर आकृष्ट किया। खड़ी बोली के माध्यम से कविता करने में प्रसाद की सहज कविप्रतिभा चमक उठी। नवीन ढंग की काव्य-रचनाओं में 'झरना' 'आँसू' 'लहर' और 'कामायनी' मुख्य हैं। 'आँसू' में वियोग की करुण पर मधुर व्यंजना है। पर प्रियतम के अज्ञात होने से उस में रहस्यात्मकता आ गई है। विभिन्न विषयों पर लिखित, तीव्र भावाकुलता से समन्वित 'लहर' इनकी स्फुट कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह की भी अनेक कविताओं में कवि रहस्योन्मुख हो गया है। कुछ कविताओं में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृति के चित्र भी बहुत सुन्दर हैं। 'लहर' में कुछ ऐतिहासिक रचनाएँ भी हैं, जैसे—'अशोक की चिन्ता', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'शेर सिंह का आत्म समर्पण' और 'प्रलय की छाया' आदि। 'प्रलय की छाया' अत्यंत उत्कृष्ट कोटि की रचना है जिसमें सौन्दर्य-भावना, रूपगर्व और यौवन की मृगमरीचिका के साथ-साथ अन्तर्द्वन्द्व का अतीव सरस चित्र खींचा गया है।

प्रसाद की कामायनी उनकी सर्वोत्कृष्ट काव्य-रचना है। यह एक प्रबन्ध काव्य (जिसे प्रगीतात्मक प्रबन्ध काव्य कहना अधिक उपयुक्त है।) इसकी कथा ली गई है भारत के प्रचीन प्राग्-ऐतिहासिक युग से, जिसके बीज ऋग्वेद, उपनिषद् और पुराणों में बिखरे पड़े हैं। देवसृष्टि के प्रलय के बाद मनु श्रद्धा के सहयोग से मानव सृष्टि प्रारम्भ करने में लगते हैं, पर तर्कमयी ईड़ा का मनु पर प्रभुत्व बढ़ जाने से अशान्ति, असन्तोष और घोर संघर्ष उपस्थित हो जाता है। पर अन्त में 'श्रद्धा' मनु को ढूँढ़ती आ पहुँचती है। वह ज्ञान-कर्म-इच्छा से संतुलित आनन्दलोक का रहस्य समझाकर मानव-सृष्टि में मानवता के प्रवर्त्तन का पथ प्रशस्त करती है।

इस काव्य में, जो समस्त विश्व-साहित्य में अपने ढंग की अद्वितीय कृति है—प्रसाद का सन्देश, उनके द्वारा वर्त्तमान जगत् के संघर्षों का निदान और चिकित्सा, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि का अद्भुत निरूपण हुआ है। काव्य-प्रतिभा और उन्मेषशील प्रतिभा का सरस विलास भी इसमें दिखाई देता है। 'चिन्ता', 'आशा', 'वासना', 'काम' आदि अमूर्त्त वृत्ति-भावों का बड़ा ही सजीव, और मनोवैज्ञानिक मूर्त्त चित्र उपस्थित किया गया है।

बहुमुखी प्रतिभाशाली इस कवि ने साहित्य के विविध अङ्गों का निर्माण किया है। आधुनिक कहानियों के क्षेत्र में भी प्रौढ़ और कलात्मक कहानियों के प्रवर्त्तक तथा हिन्दी में अपने ढंग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार भ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसाद हैं। उनके ऐतिहासिक, भावपूर्ण आदर्श नाटक हिन्दी की अमर अनुपम कृतियाँ हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—

काव्य—कामायनी, आँसू, लहर, झरना, प्रेमपथिक, कानन-कुसुम, महाराणा का महत्त्व, करुणालय।

नाटक—स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, कामना, एक घूँट।

कहानी-संग्रह—आकाशदीप, इन्द्रजाल, आँधी, छाया, प्रतिध्वनि।

उपन्यास—कंकाल, तितली, ईरावती (अपूर्ण)।

निबंध-संग्रह—काव्य और कला तथा अन्य निबंध, चित्राधार।

प्रसाद की भाषा भावुकतापूर्ण, (कहीं-कहीं गूढ़ार्थयुक्त) एवं संस्कृत शब्दों से भरी है। उन्होंने ऐसे भी अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जो प्राचीन इतिहास और संस्कृति के अनुकूल वातावरण उपस्थित करते हैं। उनकी रचनाओं में क्लिष्टता भी आ गई है।

इस प्रकार प्रसाद आधुनिक युग के एक अमर कलाकार थे और उनकी कृतियाँ अमर रचनाएँ हैं। उनकी कविता और कहानी ने न जाने कितने साहित्यिकों को प्रेरणा दी हैं और चिरकाल तक देती रहेंगी।

(१)

वे दिन

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे!
जब सावन घन सघन बरसते
इन आँखों की छाया भर थे।

सुरधनु-रंजित नव जलधर से
भरे क्षितिज-व्यापी अंबर से
मिले चूमते जब सरिता के
हरित कूल-युग मधुर अधर थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राण-पपीहा के स्वर-वाली
बरस रही थी जब हरियाली
रस जल-कन मालती-मुकुल से
जो मद-माते गंध-विधुर थे।

चित्र खींचती थी जब चपला
नील मेघ-पट पर वह विरला
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें
खिल उठते वे रूप मधुर थे।

(२)

खोलो द्वार

शिशिर-कणों से लदी हुई, कमली के भीँगे हैँ सब तार।
चलता है पश्चिम का मारुत, लेकर शीतलता का भार॥
भीँग रहा है रजनी का वह, सुंदर कोमल कबरी-भार।
अरुण किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम! खोलो द्वार॥
धूल लगी है पद काँटोँ से बिँधा हुआ है दुःख अपार।
किसी तरह से भूला-भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार॥
डरो न इतना, धूलि-धूसरित होगा नहीँ तुम्हारा द्वार।
धो डाले हैँ इनको प्रियवर, इन आँखों से आँसू ढार॥
मेरे धूलि लगे पैरों से, इतना करो न घृणा प्रकाश।
मेरे ऐसे छारों से कब, तेरे पद को है अवकाश॥
पैरोँ ही से लिपटा लिपटा कर लूँगा निज पद निर्धार।
अब तो छोड़ नहीं सकता हूँ, पाकर प्राप्य तुम्हारा द्वार॥
सुप्रभात मेरा भी होवे, इस रजनी का दुःख अपार।
मिट जावे जो तुमको देखूँ, खोलो प्रियतम खोलो द्वार॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३)

किरण

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज, रँगी हो तुम किसके अनुराग ?
स्वर्ण-सरसिज-किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु-पराग ।।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर भी मौन ।
किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना-दूती सी तुम कौन ? ।।
अरुण शिशु के मुख पर सविलास सुनहली लट घुँघराली कांत ।
नाचती हो जैसे तुम कौन ? उषा के अंचल में अश्रांत ।।
भला उस भोले मुख को छोड़, और चूमोगी किसका भाल ?
मनोहर यह कैसा है नृत्य, कौन देता है सम पर ताल ।।
कोकनद-मधु-धारा सी तरल, विश्व में बहती हो किस ओर ?
प्रकृति को देती परमानंद, उठाकर, सुंदर सरस हिलोर ।।
स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन, मिलाती हो उससे भूलोक ?
जोड़ती हो कैसा संबंध, बना देगी क्या विरज विशोक ।।
सुदिनमणि-वलय-विभूषित उषा सुन्दरी के कर का संकेत !
कर रही हो तुम किसको मधुर, किसे दिखलाती प्रेम-निकेत ?
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम, चल चुकी हो पथ शून्य अनंत ।
सुमन-मंदिर के खोलो द्वार, जगे फिर सोया वहाँ बसंत ।।

(४)

श्रद्धा और मनु

"कौन तुम ! संसृत-जलनिधि तीर तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक !
मधुर विश्रांत और एकांत—जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुंदर मौन और चंचल मन का आलस्य !"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुना यह मनु ने मधु-गुंजार मधुकरी का सा जब सानंद,
किए मुख नीचा कमल समान प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद।
एक झिटका सा लगा सहर्ष, निरखने लगे लुटे से, कौन—
गा रहा यह सुंदर संगीत! कुतूहल रह न सका फिर मौन।

और देखा वह सुंदर दृश्य नयन का इन्द्रजाल अभिराम,
कुसुम-वैभव में लता समान चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम।
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लंबी काया, उन्मुक्त,
मधु-पवन-क्रीड़ित ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ-संयुक्त।

मसृण गंधार देश के नील रोमवाले मेंषों के चर्म,
ढँक रहे थे उसका वपु कांत बन रहा था वह कोमल वर्म।
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—बीच जब घिरते हों घनश्याम,
अरुण रवि-मंडल उनका भेद दिखाई देता हो छविधाम।
या कि, नव इंन्द्रनील लघु-श्रृंग फोड़ कर धधक रही हो कांत,
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रांत।

घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास,
नील घन-शावक से सुकुमार सुधा भरने को बिधु के पास।
और उस मुख पर वह मुसक्यान! रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम।

नित्य-यौवन छवि से ही दीप्त विश्व की करुण-कामनामूर्त्ति,
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
उषा की पहिली लेखा कांत, माधुरी से भींगी भर मोद,
मद-भरी जैसे उठे सलज्ज भोर की तारक-द्युति की गोद,

कुसुम - कानन - अंचल में मंद-पवन-प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु-पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और पड़ती हो उस पर शुभ्र नवल मधु-राका मन की साध,
हँसी का मद-विह्वल प्रतिबिंब मधुरिमा खेला सदृश अबाध!
कहा मनु ने, "नभ-धरणी-बीच बना जीवन रहस्य निरुपाय,
एक उल्का सा जलता भ्रांत, शून्य में फिरता हूँ असहाय।
शैल निर्झर न बना हतभाग्य गल नहीं सका जो कि हिम-खंड,
दौड़ कर मिला न जलनिधि अंक, आह वैसा ही हूँ पाषंड।
पहेली सा जीवन है व्यस्त उसे सुलझाने का अभिमान,
बताता है विस्मृति का मार्ग चल रहा हूँ बन कर अनजान।
भूलता ही जाता दिन रात सजल-अभिलाषा-कलित-अतीत,
बढ़ रहा तिमिर-गर्भ में नित्य, दीन जीवन का यह संगीत।
क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रान्त! विवर में नील-गगन के आज
वायु की भटकी एक तरंग, शून्यता का उजड़ा सा राज।
"कौन हो तुम बसंत के दूत विरस पतझड़ में अति सुकुमार!
घन-तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मन्द बयार।
नखत की आशा-किरण समान, हृदय के कोमल कवि की कांत
कल्पना की लघु लहरी दिव्य कर रहीं मानस हलचल शांत!"
लगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष,
दे रहा हो कोकिल सानंद सुमन को ज्यों मधुमय संदेश:—
"भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित-कला का ज्ञान
इधर रह गंधर्वों के देश पिता की हूँ प्यारी संतान।
घूमने का मेरा अभ्यास, बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य,
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त हृदय-सत्ता का सुन्दर सत्य।
दृष्टि जब जाती हिम-गिरि-ओर प्रश्न करता मन अधिक अधीर,
धरा की यह सिकुड़न भयभीत आह कैसी है? क्या है पीर!
बढ़ा मन और चले ये पैर, शैल-मालाओं का शृङ्गार,
आँख की भूख मिटी यह देख आह कितना सुंदर सम्भार!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक दिन सहसा सिंधु अपार लगा टकराने नग-तल क्षुब्ध,
अकेला यह जीवन निरुपाय आज तक घूम रहा विश्रब्ध।
यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न, भूत-हित रत किसका यह दान!
इधर कोई है अभी सजीव हुआ ऐसा मन में अनुमान।
तपस्वी! क्यों इतने हो क्लांत? वेदना का यह कैसा वेग?
आह तुम कितने अधिक हताश बताओ यह कैसा उद्वेग!
हृदय में क्या है नहीं अधीर, लालसा जीवन की निश्शेष?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग तुम्हें, मन में धर सुंदर वेश!
दुख के डर से तुम अज्ञात जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज, भविष्यत् से बन कर अनजान।
काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग, इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाने हो असफल भवधाम।"
लगे कहने मनु सहित विषाद:—"मधुर मारुत से ये उच्छ्वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध उठाते मानस में सविलास।
किन्तु जीवन कितना निरुपाय! लिया है देख नहीं सन्देह,
निराशा है जिसका परिणाम सफलता का वह कल्पित गेह।"
कहा आगंतुक ने सस्नेह:—"अरे तुम इतने हुए अधीर!
हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते मर कर जिसको वीर।
प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक हैं उनकी धूल।
"एक तुम, वह विस्तृत भूखंड प्रकृति-वैभव से भरा अमंद,
कर्म का भोग, भोग का कर्म यही जड़ का चेतन आनंद।
समर्पण लो सेवा का सार सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग इसी पद-तल में विगत विकार।
दया माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,
हमारा हृदय-रत्न-निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास।
बनी संसृति के मूल रहस्य तुम्हीं से फैलेगी वह बेल,
विश्व भर सौरभ से भर जाय सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

क्रान्तिकारी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म संवत् १९५५ में बंगाल के मेदिनीपुर जिलान्तर्गत महिषादल राज्य में हुआ। इनके पिता पं० रामसहाय त्रिपाठी उन दिनों उसी राज्य में राजकीय कर्मचारी थे। वे मूलतः उन्नाव जिले के 'गढ़फोला' नामक गाँव के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। 'निराला' जी की शिक्षा बँगला के माध्यम से बंगाल में प्रारंभ हुई। वहीं इन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास की। पहले वे बंगला में कविता लिखा करते थे। निराला जी की पत्नी नित्य नियमपूर्वक 'मानस' का पाठ करतीं। पर निराला जी समझ न पाते। उसे समझने की उत्कंठा से प्रेरित हो कर निराला जी हिन्दी सीखने लगे और कुछ ही समय में हिन्दी के अच्छे ज्ञाता हो गए। कुछ दिनों के भीतर ही वे हिन्दी में कविता भी करने लगे।

रामकृष्ण अद्वैताश्रम की हिन्दी पत्रिका 'समन्वय' का कुछ दिनों तक वे सम्पादन करते रहे। जब कलकत्ते से 'मतवाला' निकलता था तब उसके सम्पादन में भी ये योग देते थे।

निराला जी के व्यक्तित्व और साहित्य, दोनों में निरालापन है। वे स्वस्थ पुष्टांग और विशालकाय, आर्यत्व-मंडित प्रशस्त ललाटवाले व्यक्ति हैं। उनका जीवन साधना-पूर्ण रहा है। उदारता, निर्लोभता, स्वाभिमान और दार्शनिकता से उनका जीवन सदैव प्रतिबिम्बित रहा है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द का उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इस कारण तथा अध्ययन और गंभीर चिन्तन ने उनमें दार्शनिक दृष्टि उत्पन्न कर दी है। फलतः उनकी कविता में दार्शनिकता का पुट बहुधा दिखाई पड़ जाया करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी दार्शनिकता के कारण कहीं-कहीं उनके काव्य में गूढ़ता, क्लिष्टता तथा अस्पष्टता आ गई है। सर्वजन-बोध्य न होने पर भी उनकी रचना में काव्योचित सरसता और रमणीयता की कमी नहीं है। बंगला-साहित्य, विशेषतः कवीन्द्र रवीन्द्र की काव्यधारा का भी उनपर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी के आधुनिक युग-प्रवर्त्तक कवियों में प्रसाद के साथ 'निराला' जी का भी नाम सदा लिया जाता है। रहस्यवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में निराला की पूर्ण क्षमता है। ब्रह्म और जीव के पारस्परिक संबन्ध का निरूपण करनेवाली इनकी कविता 'तुम और मैं' अत्यंत महत्त्वपूर्ण, विचारमय, सारगर्भित और काव्योचित गुणों से युक्त है। प्रेमी-प्रेमिका के रूपक द्वारा भी उक्त संबंध का निराला ने चित्रण किया है। उनकी कविता का एक प्रमुख गुण है उनकी भाषा की ओजःपूर्णता। उनके शब्द बड़े ही सशक्त और सबल हैं।

निरालाजी युगधर्मी कवि भी हैं। दार्शनिकता के पीछे उन्होंने युग की समस्याओं और संघर्षों की न तो उपेक्षा की है और न उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों के अन्धानुसरण का ही समर्थन किया है वरन् अंध-विश्वासों और कुरूढ़ियों का विरोध भी किया है। 'दान' शीर्षक कविता में पाखण्ड को धर्म बताकर ढोंग रचनेवालों पर उन्होंने कटु व्यंग्य किया है। प्रगतिशील समाजवादी भावना की भी उन्होंने अनेक कविताएँ लिखी हैं। 'बादलराग' में विप्लव की और 'उद्बोधन' में रूढ़ि, गलित व्यवस्था के स्थान पर नवीन व्यवस्था की उन्होंने आकांक्षा प्रकट की है। कृषकों और श्रमिकों के शोषित, दीन रूप से प्रभावित होकर उनकी करुण रागिनी ने 'वह तोड़ती पत्थर' आदि में शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है।

'राम की शक्ति पूजा' एक लम्बी प्रबंधसम कविता है जिसकी भव्य कल्पनाएँ, दीप्तिमयी भावुकताएँ और ओजस्विनी अभिव्यक्तियाँ बड़ी ही रोमाञ्चक हैं। उनका 'तुलसीदास' प्रबंध काव्य भी अत्यंत रमणीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और भावमय है। 'मुक्त छन्द' या 'स्वच्छंद छंद' ('रबर छंद' और 'केचुआ छंद' भी जिसे कहते हैं,) इनकी प्रमुख विशेषता है। इनमें मात्राओं, वर्णों की निश्चित संख्या नहीं, कोई चरण छोटा, कोई बड़ा है। पर इनमें प्रवाह और गति पर्याप्त है।

कोमल भाव की उनकी कविताएँ भी बड़ी ललित, रोचक, सरस एवं मधुर हैं। अरूप को मूर्त्तिमती कल्पना से भूषित करने में निराला बड़े सिद्धहस्त हैं। 'जूही की कली' में शृंगारी मूर्त्तीकरण बड़ा ही रमणीय है, 'सांध्य-सुंदरी' में कल्पना-सहकृत चित्रमयी मूर्त्तिका अंकन बड़ा ही मर्मस्पर्शी है।

उनकी शब्दावली, धारावाहिकता, ओज और माधुर्य से भरी है। भाषा में संस्कृत-बहुलता है। समास-गुंफित शब्दावली की प्रयोग-प्रचुरता भी उनमें है। इसी कारण यत्र-तत्र अर्थबोध में क्लिष्टता आ जाती है। पर काव्य-सरसता सर्वत्र अक्षुण्ण है। व्यंग्य लिखने में भी वे पूर्ण सफल थे। 'कुकुरमुत्ता' में सुंदर आलोचनात्मक व्यंग्य है।

उनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं—परिमल, गीतिका, यूथिका, तुलसीदास, अनामिका, नये पत्ते, तुलसीदास आदि। अलका, अप्सरा, निरुपमा, बिल्लेसुर बकरिहा, आदि उपन्यास तथा लिली और सखी आदि कहानी-संग्रह हैं। 'रवीन्द्र कविता-कला' उनका आलोचना-ग्रंथ है।

(१)

तरंगों के प्रति

किस अनंत का नीला अंचल हिला हिला कर
आती हो तुम सजी मंडलाकार ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?
सोह रहा है हरा क्षीण कटि में अंबर-शैवाल,
गाती आप, आप देती सुकुमार करों से ताल,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चंचल चरण बढ़ाती हो,
किससे मिलने जाती हो ?

तैर तिमिर-तल भुज-मृणाल से सलिल काटती,
आपस में ही करती हो परिहास,
हो मरोरती गला शिला का कभी डाँटती,
कभी दिखाती जगती-तल को त्रास,
गंध-मंद-गति कभी पवन का मौन-भंग उच्छ्वास
छाया-शीतल तट-तल में आ तकती कभी उदास,

क्यों तुम भाव बदलती हो—
हँसती हो, कर मलती हो ?

बाँहें अगणित बढ़ा जा रही हृदय खोलकर,
किसके आलिंगन का है यह साज?
भाषा में तुम पिरो रही हो शब्द तोलकर,
किसका यह अभिनंदन होगा आज ?
किसके स्वर में आज मिला दोगी वर्षों का गान?
आजतुम्हाराकिसविशालवक्षःस्थलमेंअवसान?

आज जहाँ छिप जाओगी,
फिर न हाय ! तुम गाओगी।

बहती जाती साथ तुम्हारे विस्मृतियाँ कितनी,
दग्ध चिता के कितने हाहाकार !
नश्वरता की—थीं सजीव जो—कृतियाँ कितनी,
अबलाओंकीकितनीकरुण-पुकार !
मिलन-मुखर तट की रागनियों का निर्भय गुंजार,
शंकाकुल कोमल मुख पर व्याकुलता का संचार,

उस असीम में ले जाओ,
मुझे न कुछ तुम दे जाओ !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२)

विफल-वासना

गूँथे तप्त अश्रुओं के मैंने कितने ही हार—
बैठी हुई पुरातन स्मृति की मलिन गोद पर प्रियतम !
रुद्ध द्वार पर रक्खे थे मैंने कितने ही बार
अपने वे उपहार कृपा के लिए तुम्हारी अनुपम !

मेरे दग्ध हृदय का अतिशय ताप—
प्रभाकर की उन खर किरणों में
नूपुर सी मैं बजी तुम्हारे लिए—
तुम्हारी अनुरागिनियों के निष्ठुर चरणों में।

हँसता हुआ कभी आया जब
बन में ललित बसंत,
तरुण विटप सब हुए, लताएँ तरुणी
और पुरातन पल्लव-दल का
शाखाओं से अंत,
जब बढ़ी अर्घ्य देने को तुमको
हँसती वे वल्लरियाँ
लिए रहे अंचल में अपने फूल,
एक प्रांत में खड़ी हुई मैं
देख रही थी स्वागत।

चुभते पर हाय ! नाथ !
मर्म-स्थल में जो शूल
उन्हें कैसे प्रिय बतलाऊँ मैं ?
कैसे दुख-गाथा गाऊँ मैं ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छिन्न प्रकृति के निर्दय आघातोँ से हो जाते हैं—
जो पुष्प, नहीँ कहते कुछ, केवल रो जाते हैँ,
वे अपना यौवन-पराग-मधु खो जाते हैँ,
अंतिम श्वास छोड़ पृथ्वी पर सो जाते हैँ!
वैसे ही मैँने अपना सर्वस्व गँवाया
रूप और यौवन-चिंता मेँ, पर क्या पाया?
प्रेम? हाय आशा का वह भी स्वप्न एक था,
विफल हृदय तो आज दुःख ही दुःख देखता!
तुम्हेँ कहूँ मैँ, कहो, प्रेम-मय,
अथवा दुख के देव, सदा ही निर्दय?

(३)

बन-कुसुमों की शय्या

त्रस्त विश्व की आँखों से बह बहकर,
धूलि-धूसरित धोकर उसके चिन्तालोल कपोल,
श्वास और उच्छ्वासों की आवेग-भरी हिचकी से
दलित हृदय की रुद्ध अर्गला खोल,
धीर करुण ध्वनि से वह अपनी कथा व्यथा की कहकर,
धारा भरती धराधाम के दुःख अश्रु का सागर।
दाह-तपन-उत्तप्त दुःख सागर-जल खौल खौल उठा,
फिर बना वाष्पका काला बादल,
बरसाया जब मेह, धरा की
सारी ज्वाला कर दी शीतल।
किन्तु आह फिर भी क्या होती शान्त?
नहीं, जले दिल को तो ठण्डक और चाहिए—
और चाहिए कुसुमित बन का प्रान्त,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मदिर नयन—वे अर्द्ध-निमीलित-लोचन—
वन-कुसुमों की शय्या पर एकान्त।
सोती हुई सरोज-अङ्क पर
शरत्-शिशिर दोनों बहनों के
सुख विलास-मद-शिथिल अङ्ग पर
पद्म-पत्र पंखे झलते थे,
मलती थी कर-चरण समीरण धीरे-धीरे आती—
नींद उचट जाने के भय से थी कुछ कुछ घबराती।
बड़ी बहन वर्षा ने उन्हें जगाया,—
अन्तिम झोंका बड़े जोर से एक,
किन्तु क्रोध से नहीं, प्यार से।
अमल कमल-मुख देख,
झुक हँसते हुए लगाया,—सोते से उन्हें उठाया।
वे उठीं, सेज मुरझाई,
एक दूसरी का थीं पकड़े हाथ,
और दोनों का ऐसा ही था अविचल साथ,
कभी कभी वे लेती थीं अँगड़ाई,
क्योंकि नींद वह उचटी,
थी मदमाती आँखों में उनकी छाई।
रस की बूँदें बन, उस नीले अम्बर से,
वे टपक पड़ीं, लोगों की नजर बचाकर,
हरसिङ्गार की कोमल-दल कलियों पर।
सुबह को बिछी हुई शय्या का देखा जब ऐसा शृङ्गार,
पूछा, "क्या है ?"
"इस निर्जन में दीनों का ही होता सदा विहार।"
छिपे अञ्चल में मुख की चञ्चल
यह वाणी थी उसके सुहाग की प्रेममयी रानी की—
दुख में सुख लानेवाली कल्याणी की।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४)

सन्ध्या सुन्दरी

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर है दोनों उसके अधर,—
किन्तु गम्भीर,—नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी-नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप,
नूपुरों में भी रुन-झुन रुन-झुन रुन-झुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं—

व्योम मण्डल में—जगतीतल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में—
सौन्दर्य-गर्विता-सरिता के अतिविस्तृत वक्षःस्थल में—
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्ताल-तरङ्गाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में—
क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल-अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं,—
और क्या है ? कुछ नहीं।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला वह एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अङ्क पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने।
अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती वह लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

(५)

गीत

हमें जाना है जग के पार—
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव-रस-धार—
वहीं जाना, इस जग के पार।
कामना के कुसुमों को कीट
काट करता छिद्रों को छीट,
यहाँ रे सदा प्रेम की ईंट—
परस्पर खुलती सौ-सौ बार—
हमें जाना इस जग के पार।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहाँ अधरों को हास हिला
क्षुब्ध अधरों से रहा मिला,
साँस में सहसा प्रेम जिला,
बना देता उर को उर-हार—
हमें जाना जग के उस पार।

वहाँ नयनों में केवल प्रात,
चन्द्र-ज्योत्स्ना ही केवल गात,
रेणु-छाए ही रहते पात,
मन्द ही बहती सदा बयार—
हमें जाना इस जग के पार

डोल सहसा संशय में प्राण
रोक लेते अपना मृदु गान,
यहाँ रे सदा प्रेम में मान,
ज्ञान में बैठा मोह असार—
हमें जाना जग के उस पार।

दूसरे को कस अन्तर तोल,
नहीं होता प्राणों का मोल,
वहाँ के बल केवल वे लोल
नयन दिखलाते निश्छल प्यार—
हमें जाना जग के उस पार।

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुमित्रानन्दन पंत

पंत जी अल्मोड़ा के कौसानी नामक गाँव के पर्वतीय श्रीगंगादत्त पंत के पुत्र हैं। इनका जन्म संवत् १९५७ में हुआ है। काशी के जयनारायण हाईस्कूल से मैट्रिक पास कर ये इलाहाबाद के म्योर सेंट्रल कालेज में इंटर कक्षा में प्रविष्ट हुए, किन्तु बिना परीक्षा दिए ही पंत ने कालेज छोड़ दिया। पर विद्या-प्रेम के कारण ये स्वतंत्र रूप से पढ़ते रहे और अंग्रेजी, बंगला तथा हिन्दी-साहित्य के अध्ययन में लगे रहे। साथ ही संस्कृत-साहित्य और दर्शन का भी इन्होंने अनुशील किया। भावुकता के स्वच्छन्द उत्संग में इनका ज्ञानार्जन होता रहा। पंत जी स्वभावतः सौन्दर्य के उपासक हैं। अतः उनकी वेष-भूषा, रहन-सहन सर्वत्र रुचि का परिष्कृत रूप दिखाई देता है।

बचपन से ही काव्यानुराग ने इन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। किशोरावस्था से ही वे कविता करने लगे थे। काव्य-सुन्दरी को अपनी जीवन-सहचरी के रूप में वरण कर वे उसी के आनन्द में मग्न रहते हैं, उन्होंने विवाह नहीं किया।

अल्मोड़े की प्राकृतिक सुषमा की मधुमय गोद में उनका पालन-पोषण हुआ। बचपन से उनके रोम-रोम प्रकृति सौन्दर्य के अनुरागी बन गए। इनकी काव्य-साधना में प्रकृति ने इन्हें स्फूर्ति और प्रेरणा की सदैव सहायता दी। अतः इनकी कविता में प्रकृति के मनोहारी-सौन्दर्य का चित्रण बड़ा ही रमणीय हुआ है। वर्तमान हिन्दी-कवियों में इनकी कविताएँ अपने ढंग की बेजोड़ हैं और नवीन-युग-प्रवर्तक 'प्रसाद' और 'निराला' की भाँति इनका भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक प्रकृति-कवि के रूप में तो पंत सर्वोच्च हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंत जी ने अंग्रेजी-साहित्य और अंग्रेजी-काव्य का पर्याप्त अध्ययन किया है। स्वभावतः इनकी कविता पर अंग्रेजी-काव्य का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। पर यह प्रभाव इनकी रचना को विकृत करने में तनिक भी समर्थ नहीं हुआ है। अंग्रेजी-काव्य से प्रभावित इनके भाव प्रायः भारतीय भावों के अनुकूल बनकर ही व्यक्त हुए हैं। इनकी रचनाओं में भाव-गांभीर्य के साथ-साथ सरलता और संगीत का सुन्दर प्रवाह निरंतर लक्षित होता है।

अवस्था और देश-भावना के साथ-साथ इनकी कविताओं में भी निरंतर विकास होता चला है। इनकी आरंभिक कविताओं में अलौकिक और लौकिक—दोनों प्रकार के प्रेम की प्रधानता है। प्रकृति-संबंधी-प्रेम भी पर्याप्त है, जिसके चित्रण में बाह्य प्रकृति के साथ मानवीय मनोभावों का सुन्दर समन्वय हुआ है। प्रेमानुभूति के इन उद्गारों में भावुकता और सरसता की अविछिन्न धारा बहती दिखाई देती है।

आगे चलकर 'पल्लव' में जगत् की परिवर्त्तनशीलता का हृदयग्राही वर्णन हुआ है। वहाँ दुःख का भार अधिक दिखाई देता है। 'गुंजन' में कवि अधिक विचारशील हो उठा है और जीवन के अनिवार्य अंग, दुःख-सुख में संतुलन—स्थापना की आकांक्षा प्रबल हो उठी है।

'युगवाणी' और 'युगान्त' में राष्ट्रीयता की ओर से चलकर मार्क्सवादी दृष्टि के वे समर्थक हो गए हैं। अब वे प्रगतिशील कवि हो उठे हैं। 'बापू' को महामानव, उच्चादर्शों का प्रतीक स्वीकार कर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए भी वे गांधी को पुरानी रूढ़ि का अवशेष मानते हैं और क्रान्ति का आवाहन करते हुए नव निर्माण के अभिलाषी हैं। कवि समस्त प्रचलित वादों की चर्चा करता है और मानवता की प्रतिष्ठा करने वाले 'वाद' के आविर्भाव का आकांक्षी है। 'स्वर्ण-किरण' की कविताएँ आशा का संदेश सुनाती हैं।

इस प्रकार पन्त में युग की प्रतिध्वनि सबसे अधिक और स्पष्ट सुनाई पड़ती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंत की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता तो अवश्य है पर कभी-कभी सुकुमार तद्भव शब्दों का भी ग्रहण बिना संकोच के हुआ है। कोमल शब्दों का चयन, कल्पनाओं की मधुर भावमय उड़ान, कोमल पदावली, सरल पर मर्मस्पर्शी उक्ति, पंतकाव्य की विशेषताएँ हैं। इनकी कविता में छायावादी अभिव्यक्ति की प्रायः सभी विशेषताएँ मिलती हैं। अमूर्त्त-मूर्त्तीकरण, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिक चित्रात्मकता आदि का लालित्य इनमें पर्याप्त हैं। भाषा भावानुरूप है। छन्दोयोजना में संगीतात्मक प्रवाह और गति है।

इनके काव्य संग्रह ये हैं—उच्छ्वास, पल्लव, वीणा, ग्रंथि, गुञ्जन, (पल्लविनी), युगवाणी, युगांत, ग्राम्या, आधुनिक कवि, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, खादी के फल, मधुज्वाला, उत्तरा और युगपथ।

'ज्योत्स्ना' नामक एक भाव-रूपक भी इन्होंने लिखा जो वस्तुतः आदि से अन्त तक काव्यमय है। उसमें विश्व-बंधुत्व और मानवमात्र के समानाधिकार का संकेत है। कहानी-संग्रह भी इनका प्रकाशित हो चुका है, पर उधर इन्हें सफलता न मिली।

पंतजी आजकल आखिल भारतवर्षीय रेडियो-विभाग में काम करते हैं। हिन्दी साहित्य को समृद्ध और संपन्न करनेवाले इस कवि से अभी हिन्दी-जगत् को बहुत-कुछ आशा है।

प्रार्थना

(१)

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय चिर नूतन!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय धन,
स्मिति-स्वप्न अधर-पलकों में
उर-अंगों में सुख-यौवन !
छू छू जग के मृत कण
कर दो तृण तरु में चेतन,
मृन्मरण बाँध दो जग का
दे प्राणों का आलिङ्गन !
बरसो सुख बन, सुषमा बन
बरसो जग जीवन के घन
दिशि दिशि में औ' पल पल में
बरसो संसृति के सावन !

(२)

प्रथम रश्मि

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ, हे बाल-विहंगिनि !
पाया तूने यह गाना ?

सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर,
ऊँघ रहे थे, घूम द्वार पर
प्रहरी से जुगनू नाना !

शशि-किरणों से उतर उतरकर
भू पर काम-रूप नभचर,
चूम नवल कलियों का मृदु-मुख
सिखा रहे थे मुसकाना !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्नेह-हीन तारों के दीपक,
श्वास-शून्य थे तरु के पात
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में
तम ने था मंडप ताना।
कूक उठी सहसा तरु-वासिनि!
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अंतर्यामिनि!
बतलाया उसका आना।
निकल सृष्टि के अंध-गर्भ से
छाया-तन बहु छाया-हीन,
चक्र रच रहे थे खल निशिचर
चला कुहुक टोना-माना।
छिपा रही थी मुख शशि-बाला
निशि के श्रम से हो श्री-हीन
कमल-क्रोड में बंदी था अलि,
कोक शोक से दीवाना।
मूर्छित थीं इंद्रियाँ स्तब्ध जग
जड़ चेतन सब एकाकार,
शून्य विश्व के उर में केवल
साँसों का आना-जाना।
तूने ही पहले बहुदर्शिनि!
गाया जागृति का गाना,
श्री, सुख, सौरभ का नभ-चारिणि!
गूँथ दिया ताना-बाना।
निराकार-तम मानो सहसा
ज्योति-पुंज में ही साकार,
बदल गया द्रुत जगज्जाल में
धरकर नाम रूप नाना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम-अधरों पर
हिल मोती का सा दाना।

खुले पलक, फैले सुवर्ण, छबि
खिली सुरभि, डोले मधु-बाल,
स्पंदन, कंपन, नव-जीवन फिर
सीखा जग ने अपनाना।

प्रथम-रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ कहाँ हे बाल बिहंगिनि।
पाया तू ने यह गाना?

(३)

कुसुम-जीवन

कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान मलिन अधरों पर
स्थिर न रही स्मिति की रेखा!

बन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।

काँटों से कुटिल भरी हो
यह जटिल जगत की डाली,
इसमें ही तो जीवन के
पल्लव की फूटी लाली।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनी डाली के काँटे
बेधते नहीं अपना तन,
सोने सा उज्ज्वल बनने
तपता नित प्राणों का धन।
दुख-दावा से नव अंकुर
पाता जग-जीवन का बन,
करुणार्द्र विश्व की गर्जन।
बरसाती नव-जीवन कण!

शुभाशंसा

गूँजे जयध्वनि से आसमान—
"सब मानव मानव हैं समान!"
निज कौशल, मति इच्छानुकूल,
सब कर्मनिरत हों भेद भूल,
बंधुत्व-भाव ही विश्वमूल,
सब एक राष्ट्र के उपादान
गूँजे जयध्वनि से आसमान—
"सब मानव मानव हैं समान।
लोकोन्नति का हो खुला द्वार
पथ-दर्शक सबका सदाचार
हों मुक्त कर्म, वाणी, विचार,
हों श्रेय-प्रेय रे एक प्राण ॥गूँजे०
हो सहज-स्नेह-संस्कृत-स्वभाव
उर में उमंग उत्साह चाव
धन, अन्न, वस्त्र का मुक्त स्राव
हो एक विश्व-जीवन महान। गूँजे०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सब श्रम-उद्यम-गौरव-प्रधान,
सब कर्मों का हो उचित मान
सब कंठों में हो एक मान—
मानव मानव सब हैं समान। गूँजे०

(५)

बापू के प्रति

तुम मांस हीन, तुम रक्तहीन,
हे अस्थिशेष! तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव शून्य लीन,
आधार, अमर होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन!
तुम मांस, तुम्ही हो रक्त-अस्थि—
निर्मित जिन से नव युग का तन,
तुम धन्य! तुम्हारा निःस्व त्याग
है विश्व भोग का वर साधन।
इस मस्मकाम तन की रज से
जग पूर्णकाम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने-बानों से मानवपन!
सदियों का दैन्य-तमिस्र तूल,
धुन तुमने, कात प्रकाश सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी,
बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जग पीड़ित दूतों से प्रभूत,
छू अमृत स्पर्श से हे अछूत !
तुमने पावन कर मुक्त किए
मृत संस्कृतियों के विकृत भूत !
सुख-भोग खोजने आते सब,
आए तुम करने सत्यखोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के मन के मनोज !
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र, ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज !
साम्राज्यवाद था कंस, बंदिनी
मानवता पशु-बलाक्रांत,
शृंखला दासता प्रहरी बहु
निर्मम शासन पद शक्ति भ्रान्त,
कारागृह में दे, दिव्य जन्म
मानव आत्मा को मुक्त, कांत,
जन शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत-पद-प्रणत-शान्त !

ताज

(६)

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !
संग-सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, बास-विहीन रहें जीवित जन ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति ! !
प्रेम-अर्चना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर कंकाल भरें जीवन का प्रांगण ?
शव को दें हम रूप, रंग आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र दें शव का ?
गत युग के बहु धर्म-रूढ़ि के ताज मनोहर
मानव के मोहान्ध हृदय में किए हुए घर !
भूल गए हम जीवन का संदेश अनश्वर
मृतकों के हैं मृतक जीवितों का है ईश्वर ?

नव दृष्टि

(७)

खुल गए छन्द के बन्ध,
प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ' युगवाणी बहती अयास !
बन गए कलात्मक, भाव
जगत के रूप-नाम,
जीवन संघर्षण देता सुख,
लगता ललाम ।
सुन्दर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गए स्थूल,
जन-जीवन से हो एक प्राण ।
मानव स्वभाव ही
बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण,
असुन्दर को सुन्दर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महादेवी वर्मा

हिन्दी साहित्य में वेदनामय करुण विरह की सबसे अधिक सफल कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ में हुआ था। इनका पितृगृह फर्रुखाबाद में है। इनके माता-पिता ने इनकी शिक्षा-दीक्षा का सदैव ध्यानपूर्वक प्रबंध रखा। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम्. ए. परीक्षा पास की। आजकल अनेक वर्षों से प्रयाग महिला-विद्यापीठ में प्रिंसिपल के पद पर काम कर रहीं हैं। महादेवीजी सरल स्वभाव, परिष्कृति रुचि एवं विनम्र व्यवहार की महिला हैं।

आप में काव्य के प्रति रुचि आरम्भ से ही थी। राष्ट्रीय गीतों को लेकर आपने काव्य-निर्माण के क्षेत्र में पदार्पण किया। पर यह प्रेम, आगे चलकर अज्ञात, रहस्यमय भगवत्-प्रेम के प्रति परिवर्त्तित होकर, देवीजी के वेदनामय करुण गीतों में फूट पड़ा। उनके भावुक कवि-लोचनों ने मानों जीवन के सम्पूर्ण करुण चित्रों को देख लिया। और उनके गीतों में वह करुण वेदना अनन्त करुणामय से आत्म-निवेदन करती जान पड़ती है।

स्त्री-स्वभाव के अनुरूप महादेवी की काव्य-कल्पना में व्यथितों के प्रति भावुकता, कोमलता, सहानुभूति, करुणा और स्नेह उमड़ता दिखाई देता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे व्यथित विश्व की समस्त पीड़ा को अपना कर उनका हृदय व्याकुल हो उठा है और उनकी हृदय-वीणा में करुणा की रागिनी निरन्तर बजती रहती है। अपने कल्पना-लोक को उन्होंने पीड़ा से सँवार दिया है। उनके अनुसार, सुख चाहे मनुष्य को मनुष्यता की ओर न बढ़ावे, पर आँसू का एकबूँद भी जीवन को मधुर, उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कवियित्री की इस पीड़ा का कारण वह अज्ञात प्रियतम है जो पास रहकर भी दूर रहता है। उसकी कठोरता से समस्त पीड़ा उद्भूत है।

उनकी इस विरह-युक्त वेदना की अभिव्यक्ति के कारण उन्हें हम साहित्यिक दृष्टि से आधुनिक मीरा कह सकते हैं जिसने अज्ञात रहस्य-मय प्रियतम पर अपने को निछावर कर रखा है।

महादेवीजी ने एकमात्र गीतोंकी रचना की है। उनके गीतों में संगीत के ताल-लय की धारा की अत्यन्त उत्कृष्ट रमणीयता है। साथ ही तरलता, रागात्मकता, मर्मस्पर्शिनी भावतीव्रता और सुकुमारता भी है। संस्कृत की कोमल-मधुर पदावली का झंकार सर्वत्र सुनाई देता है।

महादेवी जी चित्रकार भी हैं। इस लिए जहाँ एक ओर उनके गीतों में संगीत-लहरी की झंकृति है वहीं दूसरी ओर रूप रंग के सहारे अंकित चित्रात्मकता भी है। विद्यापति, सूर और मीरा के गेय पद की परम्परा को आज के युग में बनाए रखने का श्रेय इन्हीं को है।

महादेवी जी की रचना में उर्वर कल्पना के सजीव चित्र बड़े ही मनोरम हैं। विरह की भावना को जितने विविध रूपों में उन्होंने देखा है और जितनी नाना परिस्थितियों के बीच नवीन रूप में उसी एक भावना के अनेक रमणीय चित्र अंकित किए हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी कविता में विशुद्ध साहित्यिक रहस्यवाद का मोहक स्वरूप दिखाई पड़ता है। सूफियों की 'प्रेम की पीर', 'गोपियों की विरह-व्यथा' और 'मीरा की प्रणय आकुलता' सब कुछ नए साँचे में ढल कर महादेवी के गीतों में झलकता दिखाई देता है।

विचारों की गूढ़ता, अनुभूति-तीव्रता, तथा कल्पनाओं की वेग-शीलता के कारण उनकी कविताएँ सबके लिए सुबोध्य नहीं रह गई हैं। पर जो उनके भावों और शैली से परिचित हैं उन्हें विलक्षण काव्यानन्द का अनुभव होता है। महादेवीजी की काव्य-साधना अत्यन्त ऊँचे दर्जे की है। उसमें गंभीर नदी का शान्त प्रवाह है, उच्च प्रेरणा है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और भावमय अभिव्यक्ति की कलापूर्ण निपुणता है। उनके मुख्य काव्य ग्रंथ हैं—

नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और यामा। जैसे-जैसे हिन्दी-प्रेमियों का परिचय उनके गीतों से बढ़ता जायगा वैसे-वैसे उनके इन काव्य-कृतियों की महत्ता भी बढ़ती जायगी।

(१)

सपने-सपने में सत्य पला !

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला !
जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरंद भरा,
आलोक लुटाता वह घुलघुल
देता झर यह सौरभ बिखरा
दोनों संगी पथ एक किन्तु कब दीप खिला कब फूल जला !
वह अचल धरा को भेंट रहा
शत शत निर्झर में हो चंचल,
चिर परिधि बना भू को घेरे
इसका नित उर्मिल करुण जल !
कब सागर-उर पाषाण हुआ कब गिरि ने निर्मम तन बदला ?
नभ-तारक सा खण्डित पुलकित
यह क्षुर-धारा को चूम रहा
वह अंगारों का मधु रस पी
केशर-किरणों सा झूम रहा !
अनमोल बना रहने को कब टूटा कंचन, हीरक पिघला ?
नीलम-मरकत के संपुट दो
जिनमें बनता जीवन-मोती,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें ढलतें सब रंग रूप
उसकी आभा स्पन्दन होती !
जो नभ में विद्युत-मेघ बना वह रज में अंकुर हो निकला ?
संसृति के प्रति पग में मेरी
साँसों का नव अंकन चुन लो,
मेरे बनने मिटने में नित
अपनी साधों के क्षण गिन लो !
जलते खिलते बढ़ते जग में घुलमिल एकाकी प्राण चला !
सपने सपने में सत्य ढला !

(२)

रश्मि

चुभते ही तेरा अरुण बान,
बहते कन-कन से फूट-फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान।
इन कनक-रश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग,
बुद्बुद् से बह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग,
बनती प्रवाल का मृदुल कूल,
जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान।
नव-कुन्द-कुसुम-से मेघ-पुंज,
बन गए इन्द्रधनुषी वितान,
दे मृदुकलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरल प्राण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गात,
दुहराते अलि निशि मूक तान।
सौरभ का फैला केश-जाल,
करती समीर परियाँ विहार,
गीली केसर, मद झूम-झूम,
पीते तितली के नव कुमार,
मर्मर का मधुसंगीत, छेड़
देते हैं, हिल पल्लव अजान!
फैला अपने मृदु स्वप्न पंख,
उड़ गई नींद निशि क्षितिज-पार,
अधखुले दृगों के कंजकोष
पर, छाया विस्मृति का खुमार,
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास,
यह चतुर चितेरा सुधि बिहान!

(३)

परिचय क्या ?

तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या?
तारक में छवि, प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,
भर लायी हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या?
तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी बिषादमय,
यह जागृति, वह नींद स्वप्नमय;
खेल खेल, थक थक सोने दो
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तेरा अधर-विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मितमिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

रोम-रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित;
मुझ में नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?

हारूँ तो खोऊँ अपनापन;
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन;
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,
भर लाऊँ सीपी में सागर;
प्रिय ! मेरी अब हार-विजय क्या ?

चित्रित तू, मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम
तू असीम, मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

(४)

बसन्त-रजनी

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ बसन्त-रजनी !

तारकमय नव वेणी-बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुण्ठन,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकती आ बसन्त रजनी !
मर्मर की सुमधुर नूपुरध्वनि,
अलि-गुञ्जित पद्मों की किंकिणि,
भर मदगति में असल तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मृति से सजनी !
बिहँसती आ बसन्त रजनी !
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों का अंजलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि !
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी !
सकुचती आ बसन्त रजनी !
सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधाकर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी
सिहरती आ बसन्त रजनी !

(५)

मैं

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक हो कर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ,
आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में।
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में !
नीलघन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ !
नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झङ्कार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !

पिक से

(६)

मुखर पिक हौले बोल !
हठीले हौले हौले बोल !
जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे 'और',
चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे भौर,
समीरण मत्त उठेगा डोल
हठी ले हौले हौले बोल !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मर्मर की वंशी में गूँजेगा मधुऋतु का प्यार,
झर जावेगा कम्पित तृण से लघु सपना सुकुमार,
एक लघु आँसू बन बेमोल !
हठीले हौले हौले बोल !
'आता कौन' नीड़ तज पूछेगा विहगों का रोर,
दिग्बधुओं के घन-घूँघट के चंचल होंगे छोर,
पुलक से होंगे सजल कपोल !
हठीले हौले हौले बोल !
प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में आता चुपचाप,
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी पदचाप,
सुभग ! यह पल घड़ियाँ अनमोल !
हठीले हौले हौले बोल !
वह सपना बन बन आता जागृति में जाता लौट,
मेरे श्रवण आज बैठे हैं इन पलकों की ओट,
व्यर्थ मत कानों में मधु घोल !
हठीले हौले हौले बोल !
भर पावे तो स्वर लहरी में भर वह करुण हिलोर,
मेरा डर तज वह छिपने का ठौर न ढूँढ़े भोर,
उसे बाँधूँ फिर पलकें खोल ?
हठीले हौले हौले बोल !

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रामधारी सिंह दिनकर

बिहार के यशस्वी और विख्यात कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म संवत् १९६५ में मुंगेर जिला के सेमरिया नामक गंगा-किनारे बसे गाँव में हुआ था। आपने पटना विश्वविद्यालय से बी० ए० आनर्स की परीक्षा पास कर सरकारी नौकरी कर ली और बिहार सरकार के अधीन अनेक वर्षों तक सब-रजिस्ट्रार के पद पर काम करते रहे। स्वतंत्रता के उपरान्त आपकी सेवाओं का ध्यान करके बिहार सरकार ने आप को उच्च पद दिया। ब्रिटिश सरकार की नौकरी करते हुए भी दिनकर निर्भय होकर अपनी कविताओं द्वारा राष्ट्रीयता, देश-प्रेम और क्रान्तिकारी उद्गारों को प्रकट करते रहे। आजकल 'दिनकर' जी मुंगेर के एक कालिज में अध्यापक हैं।

बिहार प्रदेश के साहित्यकारों ने हिन्दी के विकास में बड़े उत्साह और उल्लास के साथ योग दिया। श्री शिवपूजन सहाय, वियोगी, द्विज, नैपाली, बेनीपुरी, आरसी प्रसाद तथा दिनकर रुद्र, गुलाब आदि ने हिन्दी को उन्नत और प्रतिष्ठा-भाजन बनाने में पूर्ण योग दिया। बिहार के इन साहित्यकारों में तरुण गायक 'दिनकर' का स्थान भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

इस कवि की कविता में राष्ट्रीयता, देशप्रेम, बलिदान और वीरता की भावना की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। दिनकर की आरंभिक कविताओं में युवाकालीन प्रेम-भावों की प्रचुरता है। उन की रचना में प्रेम से संबद्ध संयोग-वियोग की विविध अनुभूतियों का मधुर-चित्रण हुआ है। कवि की भावमयी कल्पना जीवन के इस मधुरतम निकुंज में विश्राम करने लगी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर देश-प्रेम की भावना से आकुल कवि की सहृदय दृष्टि ने दासता-प्रताड़ित मनुष्य की प्रेम-चर्चा में विडम्बना का अनुभव किया और सच्चे कलाकार की भाँति राष्ट्र में जागरण, क्रान्ति, संघर्ष और विप्लव के ओज-पूर्ण गीतों को गाना प्रारम्भ किया। उसका कोमल हृदय राष्ट्र और समाज की दुर्दशा पर करुणा से कराह उठा और उस दुर्गति के निराकरण की भावना ने उसे क्षुब्ध कर दिया। उसका क्रोध 'हुंकार' में विप्लव की भावना से गरज उठा।

अन्न, वस्त्र के लिए तरसते बालकों और दरिद्रों के दुःख को दूर करने के लिए, मजदूरों, किसानों और शोषितों को दुर्दशा से मुक्त करने के लिए उनकी काव्य-वीणा झनझना उठी। उनकी वाणी ने अपनी सभ्यता, संस्कृति समाज और देश की उन्नति के लिए अपना मार्ग निश्चित कर लिया। उनकी वाणी ने दुःखियों को स्वर दिया, शोषितों को शक्ति दी, विलासियों को चुनौती दी और समाज को जागरण, विप्लव और क्रान्ति का संदेश सुनाया। क्रान्तिकारी और राष्ट्रीय गायक बन कर दिनकर रचना करने लगे। 'विपथगा' में यह भावना मूर्तिमती हो उठी है। बीच-बीच में वह अपने अतीत की गाथा गा उठता है।

दिनकर को प्रकृति से भी सहज प्रेम है। अनेक कविताओं में—'कोयल' 'फूल', 'मिथिला में शरद' 'निर्झरिणी', 'अमासंध्या' आदि में—प्रकृति-सुषमा की ललित अभिव्यक्ति हुई है।

दिनकर की भाषा की विशेषता है उसका प्रसाद गुण और अर्थ-सरलता। गूढ़ से गूढ़ और गहन बातें भी वे बड़े ही सुबोध्य ढंग से कहते हैं। उनकी भाषा में उर्दू के शब्द भी भावाभिव्यक्ति करने आते हैं। चलते शब्दों का उन्होंने बिना हिचकिचाहट के प्रयोग किया है। उनकी कविता बड़ी ही ओजस्विनी है। पढ़ते-सुनते समय हृदय उत्साह और दीप्ति से भर उठता है। 'छायावादी' क्लिष्टता का उनमें अभाव है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनता के भावों की गाथा सुनाने के लिए उन्होंने जनबोध्य भाषा को ग्रहण किया है, अतः उनकी कविताएँ बड़ी लोक-प्रिय हैं।

रेणुका, रसवन्ती, द्वंद्वगीत, हुंकार, धूपछाँह, व्यालविजय, एकायन, बापू, महारथी कर्ण और कुरुक्षेत्र रश्मिरथी आदि उनकी काव्य—रचनाएँ हैं। उनमें मुक्तक गीत काव्यों की अधिकता है। 'महारथी कर्ण' और 'कुरुक्षेत्र', रश्मिरथी उनके प्रबन्ध काव्य हैं। यह 'कुरुक्षेत्र' 'दिनकर' का महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाभारत युद्ध के अनन्तर वाणशय्या पर स्थित भीष्म ने युद्ध की क्रूरता, अमानवता और विध्वंस-कारिता का विश्लेषण करते हुए युधिष्ठिर को मानव-जीवन के साध्य का परिचय दिया है। यह उत्कृष्ट कोटि का काव्य है।

इसके अतिरिक्त आलोचनात्मक और निबन्ध-ग्रंथ भी 'दिनकर' ने लिखे हैं। कविवर 'दिनकर' हिन्दी साहित्य के एक विशिष्ट ओजस्वी कवि हैं और बिहार के आधुनिक कवियों में उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान है।

(१)

महाभारत की ज्वाला

धर्मराज है याद व्यास का
वह गंभीर वचन क्या ?
ऋषि का वह यज्ञान्त काल का
विकट भविष्य-कथन क्या ?

जुटा जा रहा कुटिल ग्रहों का
दुष्ट योग अम्बर में,
स्यात् जगत् पड़नेवाला है
किसी महासंगर में।

"होगा ध्वंस कराल, काल
काल विप्लव का खेल रचेगा,
प्रलय प्रकट होगी धरणी पर
हा-हा-कार मचेगा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सब थे सुखी यज्ञ से, केवल
मुनि का हृदय विमल था,
वही जानते थे कि कुंड से
निकला कौन अनल था।

भरी सभा के बीच उन्होंने
सजग किया था सब को,
पग-पग पर संयम का शुभ
उपदेश दिया था सब को।

किन्तु अहंमय राग-दीप्त नर
कब संयम करता है?
कल आनेवाली विपत्ति से
आज कहाँ डरता है?

बीत न पाया वर्ष काल का
गर्जन पड़ा सुनाई,
इन्द्र प्रस्थ पर घुमड़ विपद की
घटा अतर्कित छाई।
कौन जानता था कि सुयोधन
की धृति यों छूटेगी।
राजसूय के हवन-कुंड से
विकट वह्नि फूटेगी?

किसे ज्ञात था खेल-खेल में
यह विनाश छाएगा?
भारत का दुर्भाग्य दूत पर
चढ़ा हुआ आएगा?
तो भी है सच, धर्मराज! यह
ज्वाला नई नहीं थी,
दुर्योधन के मन में वह
वर्षों से खेल रही थी।

बिँधा चित्र-खग रंगभूमि में
जिस दिन अर्जुन-शर से,
उसी दिवस जनमी दुरग्नि
दुर्योधन के अन्तर से।

बनी हलाहल वही वंश का,
लपटें लाख-भवन की,
द्यूत-कपट शकुनी का बन—
यातना पांडु-नन्दन की।

भरी सभा में लाज द्रौपदी
की न गई थी लूटी,
वह तो यही कराल आग
थी निर्भय होकर फूटी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्यों-ज्यों साड़ी विवश द्रौपदी
की खिँचती जाती थी।
त्यों-त्यों वह आवृत, दुरग्नि यह
नग्न हुई जाती थी।

उसके कर्षित केश जाल में
केश खुले थे इसके।
पुंजीभूत वसन उसका था
वेश खुले थे इसके।

पर दुर्योधन की दुरग्नि
नंगी हो नाच रही थी,
अपनी निल्लर्जता, देश का
पौरुष जाँच रही थी।

नर की कीर्ति-ध्वजा उस दिन
कट गई देश में जड़ से,
नारी ने सुर को टेरा जिस दिन
निराश हो नर से।

दुरवस्था में घेर खड़ा था
उसे तपोबल उसका,
एक दृप्त आलोक बन गया
था चीराञ्चल उसका।

किन्तु, न जाने क्यों उस दिन
तुम हारे, मैं भी हारा।
जाने क्यों फूटी न भुजा को
फोड़ रक्त की धारा।

महासमर आरंभ देश में
होना था उस दिन ही,
उठा खड्ग, यह पंक रुधिर से
धोना था उस दिन ही।

निर्दोषा, कुलवधू, एकवस्त्रा
को खींच महल से,
दासी बना सभा में लाएँ
दुष्ट, द्यूत के दल से।

और सभी के संमुख
लज्जावसन अभय हो खोलें।
बुद्धि-विषण्ण वीर भारत के
किन्तु नहीं कुछ बोलें।

धिक्-धिक् मुझे, हुई उत्पीड़ित
संमुख राजवधूटी
आँखों के आगे अबला की
लाज खलों ने लूटी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और रहा जीवित मैं, धरणी
फटी न दिग्गज डोला,
गिरा न कोई वज्र, न अंबर
गरज क्रोध से बोला।

यह जब कभी किसी का अनुचित
दर्प न सह सकता था,
कहीं देख अन्याय किसी का
मौन न रह सकता था।

सो, कलंक वह लगा, नहीं
धुल सकता जो धोने से,
भीतर ही भीतर जलने से
या कंठ फाड़ रोने से।

अपने वीर-चरित पर तो मैं
प्रश्न लिए जाता हूँ।
धर्मराज! पर, तुम्हें एक
उपदेश दिए जाता हूँ।

शूर-धर्म है अभय दहकते
अंगारों पर चलना,
शूर-धर्म है शाणित असि पर
धर कर चरण मचलना।

शूर-धर्म कहते हैं छाती
तान तीर खाने को,
शूर-धर्म कहते हँस कर
हालाहल पी जाने को।

आग हथेली पर सुलगा कर
सिर का हविष् चढ़ाना,
शूर-धर्म है जग को अनुपम
बलि का पाठ पढ़ाना।

सब से बड़ा धर्म है नर का,
सदा प्रज्वलित रहना,
दाहक शक्ति समेट, स्पर्श भी
नहीं किसी का सहना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बुझा बुद्धिका दीप, वीरवर बात पूछने को विवेक से
आँख मूँद-चलते हैं, जभी वीरता जाती,
उछल वेदिका पर चढ़ जाते पी जाती अपमान पतित हो
और स्वयं बलते हैं। अपना तेज गँवाती।

सच है बुद्धि-कलश में जल है
शीतल सुधा तरल है,
पर, भूलो मत कुसमय में
हो जाता वही गरल है।

सदा नहीं मानापमान की उसने ही दो बुझा तुम्हारे
बुद्धि उचित सुधि लेती, पौरुष की चिनगारी,
करती बहुत विचार, अग्नि की जली न आँख देखकर खिँचती
शिखा बुझा है देती। द्रुपद सुता की साड़ी।

बाँध उसी ने मुझे द्विधा में
बना दिया कायर था।
जगूँ जगूँ जबतक तब तक तो
निकल चुका अवसर था।

(२)

फूलों के पूर्व जन्म

प्रिय की पृथुल जाँघ पर लेटी
करती थीं जो रँगरलियाँ
उनकी कब्रों पर खिलती हैं
नन्हीं जूही की कलियाँ।

पी न सका कोई जिनके
नव अधरों की मधुमय प्याली,
वे भौरों से रूठ झूमती
बन कर चम्पा की डाली।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तनिक चूमने से शरमीली
सिहर उठी जो कुसुमारी,
सघन तृणों में छिप, उग आई
वह बन छुई-मुई प्यारी।

जिनकी अपमानित सुन्दरता
चुभती रही सदा बन शूल,
वे जगती से दूर झूमतीं
सूने में बन कर बन-फूल।

अपने बलिदानों से जग में
जिन ने ज्योति जगाई है,
उन पगलों के शोणित की
लाली गुलाब में छाई है।

अबुध वत्स जो मरे हाय,
जिन पर हम अश्रु बहाते हैं,
वे हैं मौन मुकुल अलबेले
खिलने को अकुलाते हैं।

——

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दार्थ

कबीर

(१) साखी (ज्ञान और उपदेश के दोहे)

दोहा १–६—चौदह चंदा = चतुर्दश विद्याएँ। चौंसठि दीवा = ६४ कलाएँ। जोइ करि = जलाकर (विद्या और कलाओं के ज्ञान का प्रकाश कर) तिहि = उस। चानिणौ = प्रकाश। जिहिँ = जिस। साईं = स्वामी, भगवान्। पुहुपन = पुष्पों में। कस्तूरी कै...घास = मृग की नाभी में कस्तूरी रहती है, पर उसे ज्ञात नहीं रहता। अपनी कस्तूरी के गंध से मत्त वह अज्ञ उस गंध वाले घास को ढूँढ़ता फिरता है। उसी प्रकार ब्रह्म जीव में रमा है। पर जीव उसे इधर-उधर मंदिरों-मस्जिदों में ढूँढ़ता रहता है। कुंजा = (राजस्थानी) क्रौंच पक्षी जो सरोवर के किनारे रहते तथा झुंड बनाकर आकाश में उड़ा करते हैं। इनका स्वर बड़ा करुण होता है। कुरलियाँ = कुरली, करुण स्वर से बोले। गरजि = (उनके) करुण शब्द से, प्रतिध्वनि से। घनघट = मेघ, बादल। चातक ज्यों = क्योंकि वह केवल स्वाती नक्षत्र में बरसा-जल पीता है। आँथव्यो = अस्त हुआ। वा देश = प्रियतम, भगवान् की नगरी में। रैण = रजनी, रात। सूं = से। कदे = कभी।

दोहा ७–१२—छक्या रहैं = छके रहते हैं, मस्त रहते हैं (प्रियतमके रूप की प्रेममदिरा पीकर। दरस मधूकरी = दर्शन की मधुकरी (संन्यासियों की वह भोजनभिक्षा, जिसे थोड़ा-थोड़ा अनेक घरों से पका भोजन नित्य माँगकर वे खाते हैं), प्रियतम भगवान् की रूपमाधुरी के दर्शन की भीख। ऊभी = खड़ी। पंथ सिर = मार्ग पर, मार्ग के किनारे। सिर = (राज०) में, पर, बीच में। एक सबद = संदेश। पीव =

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रियतम, भगवान्। विरहिनि=भगवान् का विरही जीव। झाईं पड़ना=ज्योति मंद हो जाना। नैना नीझरि लाइया=आँखों के विरहाश्रु के झरने बह रहे हैं। रहट=पानी निकालने का यंत्र जिसमें बहुत से घड़े लगे रहते हैं और सदा पानी बहता रहता है। प्रिय-विरह में आँखों से निरन्तर आँसू बहता रहता है। रग=नसें। रबाब=तांत का एक बाजा। जो विरह से नित्य झंकृत होता रहता है। कै=या तो। दौ=दावाग्नि। लाई-लगाई। जिस गुरु ने विरह की आग प्रज्वलित की।

दोहा–१३–१६—हँसि-हँसि=हँसते-हँसते, बिना तपस्या के, बिना साधना के। दुहागिनि=दुर्भागिनी, पति-प्रेम-वंचिता। हिराइ=खो गया, भूल गया। बूँद=जीवात्मा। समँद=परमात्मा की ओर संकेत। हेरी=देखा। मैं था=अहं-भाव था, अहंकार था। मैं नाहिं=अहंभाव से उत्पन्न द्वैतबुद्धि का नाश हो गया। दीपक=ज्ञानज्योति, आत्मज्योति। बनराइ=बनराजि=जंगल। रोम रोम से तात्पर्य।

दोहा १७–२०—हरिया=हरा (परमात्मा के प्रेम से सिक्त, सरस) जाणै=जानता है। पाणी=पानी, जीव, प्राणी। सूका=सूखा, शुष्क, भगवद्भक्ति से हीन। बूठा=(राज०) वृष्ट, बरसा हुआ। बरखिया=बरसा। पाहँण=पत्थर, हृदयहीन, भगवत्प्रेमहीन मूढ़ की ओर संकेत। अमी=अमृत, प्रेम जल। दामिनी=बिजुली=ईश्वरीय ज्योति की ओर संकेत। भीजै=प्रेम रस से पूर्ण संसिक्त। सुभर=खूब भरा हुआ। जल=सर्वत्र परिव्याप्त ब्रह्म। हंसा=हंस पक्षी, ज्ञानी जीवात्मा। मानसरोवर=उक्त नाम का सरोवर, प्रेम रस पूर्ण मन रूपी सरोवर। मुगताहल=मोती, मुक्तिरूप फल। मुगता=जीवन्मुक्त, मोती। अनत=अन्यत्र।

दोहा–२१–२३—हरि-रस=भगवत्प्रेम रस। खुमारी=नशा की खुमारी, प्रेम का नशा। मैमंता=मस्त, मतवाला (प्रेम का)। सारि=

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुधि, खबर। अघट = न घटनेवाला, एकरस। पिंजर = पिँजड़ा, देह, पंजर। सहजै = परमात्मा को, सहज मार्ग को जो ब्रह्म तक पहुँचा देता है।

दोहा २४–२७—जाल्या = जलाया (अपने स्वार्थ और माया के प्रपंच अहंभाव को)। मुराड़ा = जलती लकड़ी, लुआठी (राज०)। तासका = उसका। परमात्मा तक पहुँचने और उसे पाने के लिए संसार के विषय सुखों और काम-क्रोधादि के बंधनों को नष्ट करने का संकेत। चलै = भगवत्प्राप्ति के लिए प्रेम साधना के पथ पर। तनमन...गीत = जैसे संगीत के प्रेम में तनमन की सुधि भूलकर बधिक संगीतज्ञ के पास हरिन पहुँच जाता है, वैसे ही प्रेम गीत से पागल होकर परम प्रियतम के पास पहुँचने का प्रयास करे। निराश = निराशा के बराबर, व्यर्थ। पानी माँहे...पियास = जो सर्वव्यापी परमात्मा की छाया में रह कर भी उस पर विश्वास नहीं करते वे उस मछली की भाँति हैं, जो पानी में रह कर भी प्यास से तलफती रहती है।

दोहा—२८–३३—दीवै बाति = शरीर में आत्मा का प्रकाश है, प्राण है। तेल = शक्ति। हरियर...सब = युवापुरुष भी काल के गाल बन गए। केरा = का। मानस = मनुष्य। जावसी = जायगी। परभाति = प्रभात में। झबूकती = प्रकाशित थी। जोति = ज्योति, आत्मा। हंस-बटाऊ = जीवात्मा रूपी पथिक। छोती = छूत (शव का) चक्की = संसार की, जन्म मरण की। दुई पाटन = पृथ्वी और आकाश।

दोहा—३४–३६—उत थैं = वहाँ से, स्वर्ग से, परमात्मा के यहाँ से। इत थैं = इस मर्त्यलोक से। भार = पापपुण्य का बोझ। झडंता = झड़ता हुआ। थली = सूखी भूमि। सौंण = बाधिक। मिरग लै = मृग को। इम तौ-सौंण = (मृग की उक्ति) हम तो दूसरे लोक यात्री चल पड़े (मनुष्य सब धनधान्य छोड़कर मर कर जा रहा है) अब जो हरी-हरी घास उगेगी (सांसारिक सुख) उसे कौन खायगा (भोगेगा)?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोहा—३७–४०—भँवरा = जीवात्मा की ओर संकेत। बेल = बल्ली, लता, काँटेदार बेल का पेड़ (विषय-वासना की ओर संकेत)। पगड़ा = प्रभात। उगवै तैं = उगने पर। थिर-थिर = दृढ़ समझ कर। सेती = से। रूसणा = रुष्ट होना, विमुख होना। हेत = प्रेम। कदै = कभी। नीपजै = उत्पन्न होता है। कालर = ऊसर, बंजर।

दोहा—४१–४५—बाग = वर्ग, झुंड। जिनि = मत। डाँवा डोल = वर्ग से बिछुड़ने से अत्यंत व्याकुल। सुअना = सुग्गा। ढेंढी = कपास आदि का डोड़ा। चटाक दै = चट-पट आवाज के साथ। सेमर...निरास = (जिस सांसारिक विषय और शरीर को अनेक सुखों की आशा में सेवित करता रहा वह नश्वर देह-सुख एक दिन अकस्मात् बेकार हो गया)। चुनाइ = बिनवा ली। ता चढ़ि = उस पर चढ़कर। बाँग दै-आवाज (नेवाज पढ़ने के समय) लगाता है। खुदाइ = खुदा।

दोहा—४६–५२—जना = आदमी। पाप = पाप का बोझा। लाया = पाप लाद लाया। फलंत = फलता रहता है। (नित्य आध्यात्मिक सुख की ओर संकेत, जहाँ मुक्तजीव, जीवनमुक्त नित्यानन्द में डूबे रहते हैं।) गहर = मीठा। केल = क्रीड़ा।

सबद = (ज्ञानके पद या भजन, अनहद नाद नामक ईश्वरीय शब्द-ब्रह्म के प्रकाश से युक्त पद।)

(१) सत्ता = परमात्मा। मेले जाय...लावै = साधु या मठाधीश की मृत्यु पर होने वाला साधुओं का बड़ा भोज (भंडारा) [इस भोज को मेला और दक्षिणा देने को पूजा देना कहते हैं] इन सबसे दूर रहनेवाला। परदा = माया का, अज्ञान का। साहब = भगवान्। अनहद सबद = अनाहत नाद, ब्रह्मरन्ध्र के पास होनेवाला ईश्वरीय संगीत। संग = आसक्ति। सुरत = ध्यान।

राचै = लगा रहे।... निरभय पद परसावै = निर्भय होकर परमात्मा के पद को पहुँचता है (निरभय का पद, ब्रह्मप्राप्ति)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद २—सबेरा = (सबेला) शीघ्र। झपट लेत = पकड़ लेता है (वासना आदि) उड़ पंछी...बसेरा = उड़ता हुआ पक्षी जैसे थोड़ी देर के लिए कहीं बसेरा लेता है वैसे ही मनुष्य-देह में जीवात्मा रहता है। या नगरी में = इस शरीर में। न = नहीं तो। घनेरा = घना। पैहो = पाओगे। फेरा = फिर।

पद ३—अवधू = अवधूत, नाथ पंथी साधु। जोग = योग। समावै = जावै। भुक्ति = भोग। अलख = अलक्ष्य; ईश्वर। सहज = परमात्मा। सुन्न = शून्य, ब्रह्मरंध्र का अवकाश, जो शून्य या बिन्दु [०] रूप होता है। इसी स्थान पर ब्रह्म का निवास बताया जाता है। प्राणायाम की स्थिति में चक्रों की साधना और भेदन करने के अनंतर इसी बिन्दु में शरीर-स्वतंत्र आत्मा सोऽहं का अनुभव करती है। वस्तु = परमात्मतत्त्व। घर = शरीर। ज्यों का त्यों ठहरावै = यथार्थ ज्ञान को समझ लेता है।

पद ४—पियरवा = प्यारे। आसिक = ईश्वर से प्रेम करके। गम = संतोष। सलोना = सुन्दर, मीठा। घनेरी = घनी।

पद ५—पियारी = जीवात्मा की ओर संकेत। अज्ञान अन्धकार से जगाने के लिए, उद्बोधन करने के लिए यह पद लिखा है। प्रिय = परमात्मा। तैं = तैनें। अपन = अपना। धन = धन्या; स्त्री; प्रियतमा। सबद-बान = गुरु का उपदेश रूपी बाण।

पद ६—बाल्हा = बल्लभ; बालम; प्रियतम; परमात्मा की ओर संकेत है। सबको = सब कोई। अँदेह = अँदेशा, शंका। एकमेक...ने हरे = जब तक जीवआत्मा अपने को परमात्मा में सर्वथा न मिला दे और अपना ईश्वर का भेद या अन्तर न भूल जाय तब तक उसका प्रेम व्यर्थ सा है। जिव = जिउ; प्राण। जाइ रे = जा रहे हैं।

पद ७—मतवाला = आत्मा की ओर संकेत। बिरध = वृद्ध। कफ बाय = कफ बात। खसका = खिसकना, हिलना, डुलना। नाभि कवँल = नाभि - कमल। चौरासी = चौरासी लाख योनियों से।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उबरा = उद्धार; बचना। चसका = चाट, मोह। विष... = यह शरीर नख से शिख तक विष से भरा है।

पद ८—भौंरा = जीवात्मा के प्रति संकेत। कँवल = सहस्रार कमल जिसमें ब्रह्म का निवास है। भौंरी = बुद्धि की ओर संकेत। भोग = भोग-विलास। बनस्पति = बन में। पुहुप पुराने...भूख = भोग करने की शक्ति नष्ट हो गई पर भोग-तृष्णा फिर भी बढ़ती रही। महुपराइ = मधुपराज। ले चल भवँरी = परमात्मा के पास बुद्धि ले चल। नाम बिना.....दाँव = परमात्मा के नाम के स्मरण किये बिना सब यम का दाँव चल जायगा।

पद ९—झीनी झीनी = अत्यन्त सूक्ष्म और जटिल। चदरिया = चादर; शरीर की ओर संकेत। इंगला-पिंगला सुखमन = शरीर में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा ये तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं। इड़ा शरीर में बाईं ओर, पिंगला दाहिनी ओर, और सुषुम्णा बीच में होती है और मेरुदंड के साथ साथ चलती है। आठ कवँल = अष्ट कमल, कमल नाड़ीचक्र का नाम है, मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र, सहस्रार कमल, सुरति कमल। पाँच तत्त = पंच तत्त्व, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि। गुन तीनी = सत्व, रज, तम। आतम-ग्यान = आत्मज्ञान। दस चरखा = दश इन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय।

पद १०—पानी = सर्वव्यापी परब्रह्म की ओर संकेत। मीन = जीव, जीवात्मा से तात्पर्य। जासी = जाती है।

जायसी

गोरा बादल युद्ध

(१) मतैं = मन्त्रणा करते हैं, सलाह करते हैं। कीज = कीजिए। काँची = कच्ची। नौशाबा = सिकंदरनामा के अनुसार एक रानी जिसके यहाँ सिकंदर पहले दूत बनकर गया था। उसने सिकंदर को पहचान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर भी छोड़ दिया। पीछे सिकंदर ने उसे अपना अधीन मित्र बनाया और उसने बड़ी धूमधाम से सिकंदर की दावत की। बँदेरी = अधीन, बन्दिनी। सुबुधि = चतुराई से। ससा सिंघ कहँ मारा = एक शेर ने एक जीव रोज़ खाने के लिए लेना तै करके अत्याचार करना छोड़ दिया। एक दिन एक खरगोश की बारी आई। पहुँचने में देर होने पर जब शेर ने कारण पूछा तो उसने बताया कि मार्ग में एक अन्य शेर ने पकड़ लिया। शेर क्रोधित हुआ। खरगोश ने उसे एक कुएँ के पास लाकर कहा—'रोकनेवाला इसमें' है। शेर गुर्राकर उसमें झाँका और अपनी परछाईं देखकर कूदकर मर गया। हारा = मर गया। देवहि छरा = राज को उसने (अलाउद्दीन ने) छला। आह अस आँटी = इस प्रकार अंटी पर चढ़कर अर्थात् कब्जे में आकर भी। भण्डा = भाँड़ा, बरतन। छरसाजा = छल किया। बर किए न आँट = बल से पार नहीं पा सकते।

(२) चंडोल = पालकी। कुँवर = राजपूत सरदार। सजोइल = हथियारों से तैयार। पदमावति कर.....जानैभानू = पद्मावती के लिए जो पालकी बनी थी उसके भीतर एक शस्त्रधर बैठा, इक बात का पता सूर्य्य को भी न लगा। ढारा = डुलाना। सुरंग ओहार = सुन्दर रंगीन पालकी ढँकने की खोली। कँवल...बली = जब पद्मावती ही नहीं रही तब और सखियों का क्या? ओल होई = ओल होकर; इस शर्त पर बादशाह के यहाँ रहने जाकर कि राजा छोड़ दिए जाँय। कोई व्यक्ति जमानत के तौर पर यदि रख लिया जाता है, तो उसे ओल कहते हैं। तुरि = घोड़ियाँ।

(३) सौंपना = देखरेख में, सुपुर्दगी में। अगमना = आगे, पहले। अँकोर = भेंट, घूस, रिश्वत। स्यो = साथ, पास। किल्ली = कुञ्जी। पानी भए = नरम हो गए। हाथ जेहि = जिसके हाथ से। मँदिर = महल।

(४) सत्त = सत्य, बल। ठाकुर = स्वामी, बादशाह। घिउभा = पिघलकर नरम हो गया। दरब-लोभ = द्रव्य का लोभ। न हेरा =

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तलाशी नहीं ली, जाँच नहीं की। चाँद = पद्मावती। नखत तराईं = पद्मावती रूपी चाँद की नक्षत्र-तारारूपी सखियाँ। जेति = जितनी। इहाँ-उहाँ कर स्वामी = मेरा पति, इसलोक-परलोक का राजा। कबिलास = स्वर्ग, यहाँ शाही महल।

(५) छूँछि...भरी = जो घड़ा खाली था, ईश्वर ने फिर भरा, अर्थात् अच्छी घड़ी फिर पलटी। जास = जैसे ही। खाँडे = तलवार, खड्ग। जिउ ऊपर = प्राण रक्षा के लिए। भई गोहार = समाचार पहुँचा। ससि औ नखत = रानी (चन्द्र) और उसकी सखियाँ (पालकी में नहीं हैं—वरन् सैनिक हैं।) छर कै...जाँहि = जिनपर छल से ग्रहण लगाया था वे ग्रहण लगाकर जाते हैं, जो छल में फँसे थे, अब स्वयं दूसरे को छलकर जा रहे हैं।

(६) गोहारी = ललकारा। कारी = कालिमा, अंधकार। लोपत = लुप्त या छिपाता हुआ। गोइ = गोय, गेंद। जोरा = खेल का जोड़ा या प्रतिद्वन्द्वी। गोइ लेइ जाऊँ = बल्ले से गेंद निकाल ले जाऊँ। चौगान = घोड़े से खेला जानेवाला गेंद का खेल-विशेष। सीसरिपु = शत्रु के सिर पर। चौगान = गेंद मारने का डंडा। सौंह = सम्मुख। हाल = हलचल, कंप।

(७) अगमन = आगे। सँकरे = संकट की स्थिति में। आउ भरी = आयु पूर्ण प्राप्त कर ली या भोग; तात्पर्य यह कि पूर्ण आयु होकर वृद्ध हो गया हूँ। भूँजी = भोग चुका। समदि = बिदा लेकर। पूरुष = योद्धा। मसि = अंधकार!

(८) गोई = गेंद। काकरि = किसकी। तुरी = घोड़ी। बाजी = खेलकी बाजी। हाल करे = हलचल मचावे, मैदान मारे। कूरी = धुस्स या टीला जिसे गेंद को लाँघना पड़ता है। पैज – प्रतिज्ञा। सुठि = अत्यन्त। अनकाढ़े = बिना निकाले।

(९) हाँका = ललकारा। गोरा = (क) गोरा सामंत; (ख) श्वेत। सोहित = सुहैल, अगस्त्य तारा। डुंगवै = टीला, धुस्स। पाछे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घालि.....राजा = राजा रत्नसेन का पहाड़ या धुस्स के पीछे रखकर। साँकरे = संकट में। निबाहौं = निस्तार करूँ। बेंड़ = बेंड़ा, आड़ा। टेकौं = रोकूँगा।

(१०) ओनई = अवनत हुई, उमड़ी। देव = दैत्य। आदी—पूरा, बिल्कुल। बादी = शत्रु। हरद्वानी = हरद्वान की प्रसिद्ध तलवार। सेल = भाला। बानी = कांति, चमक। गाजा = बज्र। इंदू = इंद्र। आइ न बाज .. हिंदू = कहीं हिंदू जानकर मुझ पर न पड़े। गोरै = गोरा ने। मैमंत = मस्त। उठौनी = पहला धावा। स्यौं = सहित। कूँड = लोहे की टोपी जो लड़ाई में पहनी जाती है। तुरय = घोड़ा, तुरग।

(११) ओनवत = झुकती और उमड़ती हुई। लौहे = लोहे से। सूझ = दिखाई पड़ती है। उघारी = खाली। तुरुक = तर्क। करहिं दुइ फाँके = चीरना चाहते हैं। बाँके = मस्त, अच्छे। पीलवान = महावत। जमकात = एक प्रकार का, खाँडा यम का खाँड़ा। भवाँ करहिं = घूमते हैं। अपसवाँ चहहिं = चल देना चाहते हैं। सेल = बरछे। सरप = सर्प। भुइँ लेइ = गिर पड़े। सूर = शूल, (त्रि-) शूल भाला। सुपुरुष = वीर योद्धा।

(१२) बगमेल = घोड़ों का बाग से बाग मिलाकर चलना, सवारों की पंक्ति का धावा। अधर धर मारे = धड़ या कबंध अधर में वार करता है। कंध = धड़। निरारै = बिल्कुल, यहाँ से वहाँ तक। भोगी = भोग-विलास करनेवाले सरदार। भारत = घोर युद्ध (महाभारत) निबरे = समाप्त हुये।

(१३) नियम = समीप। = सम्मुख। ठटा = ठट्ठ, झुंड। बिदारै = विदीर्ण कर देता है। करवारू = करवाल, तलवार। टूटै = कट जाता है। निनारे = अलग। मजीठ = लालरंग। जनहुँ = माने। फाग = होली। धूका = झुका। रुहिर = रुधिर से भभूका = अंगारे सा लाल। एहि हथ करहु = इसे पकड़ो। पदारथ = पद्मावती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१४) गूँजत = गरजता हुआ। टेका = पकड़ा। पलटि सिंह... आवा = जहाँ से आगे बढ़ता है वहाँ पीछे हटकर फिर नहीं आता। बोले बाहाँ = (वह मुँह से नहीं बोलता) बाहें खड़कती हैं। जाज, जँगदेऊ = जाजा और जगदेव कोई ऐतिहासिक वीर हैं। घिसियावा = घिसियावे, घसीटे। रतनसेन जो...गात = रत्नसेन जो बाँधे गए इसका कलंक गोरा के शरीर पर लगा हुआ है। रात = लाल, कलंकरहित।

(१५) मीर हमजा = मीर हमजा मुहम्मद साहब के चचा थे जिनकी वीरता की बहुत से कल्पित कहानियाँ पीछे से जोड़ी गईं। लँधउर = लंधौर देव नामक एक कल्पित हिंदू राजा जिसे मीर हमजा ने जीतकर अपना मित्र बनाया था। यह बड़े डील-डौल वाला था। मदद...अली = मानों इन सब वीरों की छाया उसके ऊपर थी। बर बाँधै = हठ या प्रतिज्ञा करके सामने आए। बादी = शत्रु। महामाल = एक क्षत्रिय राजा या वीर। जेइ = जिसने। सालार = शायद सालार मसऊद गाजी। बरियारु = बलवान्। हुमुकि = जोर से। काढ़ेसि हुमकि = सरजा ने जब भाले जोर से खींचा। खासी = गिरी। धनि = धन्य।

(१६) भुइँ = पृथ्वी। खेह = धूल। सरजै = सरजा ने। जनु परा निहाऊ = मानों निहाई पर पड़ा (अर्थात् साँग को न काट सका)। डाँढ़ा = दंड या खड्ग। ओड़न = ढाल। कूँड = लोहे का टोप। गुरुज = गुर्ज, गदा। काँधगुरुज हुत = कंधे पर गुर्ज था (इससे)।

(१५) बरिवंडा = बलवान। सदूर = शार्दूल। तस बाजा = ऐसा अघात पड़ा। गाजा = गाज = बिजली। ठाँठर = ठठरी। टूट = गिरा। फिरा संसारू = आँखों के सामने संसार न रह गया। नियराना = करीब, या समीप आया। सेस-फन = शेषनाग के फण। खेत = रण क्षेत्र। सुर पहुँचावा पान = देवताओं ने पान का बीड़ा अर्थात् स्वर्ग का निमन्त्रण दिया। चितउर = चित्तौड़।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूरदास

(१) नयन

पद—१–५ – सैन = चितवन। राजिव दल = लाल कमल। इंदीवर = नील-कमल। कुसेसय = श्वेत कमल (कुशेशय)। आगम = आगमन। बोहित = बड़ी नाव। बरजत-बरजत = रोकते-रोकते, मना करते करते। वह समुद्र ओछे बासन ये = कृष्ण की रूप-छवि तो समुद्र के समान है और कहाँ हमारे नेत्र, एक छोटे वर्त्तन के बराबर, भला ऐसे तुच्छ बर्त्तन में समुद्र कैसे समा सकता है। औरासी = विलक्षण। तटंक = कर्णफूल, कान का आभूषण। स्रवन = कान, श्रवण। अंजन-गुन = आजन-रूपी सूत्र से। पावस = वर्षा ऋतु (प्रावृट्) पनारे = नाला (दुख के आधिक्य और प्रबलता की व्यञ्जना के लिए)। परेखौ = पछतावा। अंबु = जल। बिनु ही रितु = असमय में ही। दोउ तारे = आँखों के दोनों तारे। सुख...द्रुम डारे = सुखों के अनेक वृक्षों को गिरा दिया। बदन-सदन मैं बसे बचन खग = मुख से बात नहीं निकलती, मौन रहती है।

पद—६–१०—ऐन = घर। निमिख = पलभर। रस-लंपट = रस के लोभी, विलासी। साँकरे ऐन = संकीर्ण आलय, संकरे निवास स्थान। बमि = वमन करके। आरि = हठ। बाँह थकी बायसहिं उड़ावत = बाहों के पूर्णतया थक कर शिथिल हो जाने पर भी कौओं को उड़ाती है इस आशा से कि प्रियजन अथवा उसका संदेश आता होगा। खंजन = नेत्र, पक्षी। बूड़त बारि = अश्रुजल से प्लावित या पूर्ण। सकैं न पंख पसारि = पंख पसार कर उड़ नहीं सकतीं, अपने को डूबने से बचा नही सकतीं, जब तब आप दर्शन न दें। सुधि करि = विचार कर, समझ कर। कहे चकोर...उड़ि जात = कवियों ने इन्हें चकोर की उपमा दी है परन्तु ये तो कृष्ण के मुख-चन्द्र के दर्शन के बिना भी जी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहे हैं। इन्हें भ्रमर कहा गया है पर ये उड़ नहीं जाते। ठाले = बेकार, बिना कृष्ण दर्शन के। पलात = पलायन करते, भाग जाते। भाजि...कोऊ घात = ये मृग-नयन सघन श्याम (कृष्ण रूपी) बन में क्यों नहीं भाग जाते जहाँ कोई आक्रमण नहीं कर सकता। सूरदास...छाँड़त = केवल मीन की उपमा ही उपयुक्त है, क्योंकि ये आँखें सदा सजल रहती हैं, जल का साथ नहीं छोड़तीं। बोल = ताने। परबस भई जु रहौं = परवश हो गई हैं, लाचार होकर सबकी बातें सुननी पड़ती हैं। अब बै...हरि पाँति = अब तो मेरी आँखें (मेरा चित्त या ध्यान) मुझे देखने से लज्जा सी करती हैं और कृष्ण के साथ एक पंक्ति में जा बैठती हैं। ढरि = (कृष्ण की ओर) ढरक कर, आकृष्ट होकर। अनत नहीं पतियातिं = दूसरी जगह उनका विश्वास नहीं जमता।

पद ११–१७—अनियारे = नुकीले। लकुट = लकुटी। चन्द्रिका-मोर = मयूर-चन्द्रिका जो कृष्ण ने मुकुट में धारण की थी। झकोर = झकोरे में, तूफानक हलचल में। पीरौ = पीला (पीताम्बर)। फुरैं = स्फुरित नहीं होता, (शब्द) नहीं निकलता। रूप-रस-राँची = रूप के रस से सिक्त या उसमें अनुरक्त। झूखी = खीजी। दूखी = दुखी हुई, दुखित। पतूखी = पत्तों का दोना। सिराति = शीतल या शान्त होतीं। बाइ = वायु। उघारी = खुली हुई। सलाकहिं = लोहे की सलाई (शलाका)। अंजन आँजि = आँजन लगाकर। आरति = पीड़ा। ये मधुकर = आँख रूपी भौंरे। रुचि-पंकज = कृष्णका सौंदर्य-रूपी कमल। कुण्डल मकर = मकराकृति (सुवर्ण) कुंडल कपोलों के पास ऐसे शोभित हैं जैसे प्रातःकाल का रवि। दुज = द्विज, दाँत। कोटि = पंक्ति, कोना। बज्र-दुति = हीरे की चमक वाले। अलीमुख = भ्रमर। पच हारी = हार कर थक गई। ढरि रीझै = अनुकूल होकर प्रसन्न हुए। अंतर = अलग रहना। टेक परै = जिद पकड़ ली है। नैसैं = तन्मय होकर; निष्ठा के साथ। आपुन ही = आप ही, अकेले ही। जैसे-तैसैं = बड़ी कठिनाई से। टेव = बान, आदत। वारिज = कमल। हटकि-हटकि = मना करके।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नग अंग = पर्वत का अंग। मंदराचल पर्वत जो समुद्र में है जिससे चौदह रत्न निकले थे। निधि सिगरी = सम्पूर्ण निधि।

(२) मुरली

पद १-९—ससि थक्यो निसि न घटाई = चन्द्रमा की गति मंद पड़ गयी जिससे रात्रि समाप्त ही नहीं होती। जो जन = जिस व्यक्ति ने, जिस बाँस ने (मुरली बाँस की होती है।) माँझ घर = घर में। भटकत = नाचते हैं। सभागी = सौभाग्य शालिनी। बजाइ = डंके की चोट। ठगौरी = जादूगरी। ढीठि = निर्लज्ज प्रगल्भा। अधिकाई = जबरदस्ती, बलपूर्वक। रंध्र चरन = वंशी के छेदों रूपी चरणों को। पलुटावत = पाँव दबवाती है। आजु महा चढ़ि बाजी बाकी = आज उसकी खूब बन आई है। बिराजै = शोभा देता है। गाजै = गरजती है। ढीठि = ढीठ, धृष्ट। रजाई = शासन, आज्ञा। तनु गारि = शरीर गलाकर (साधना में)। नैकहुँ = तनिक भी। सुलाखी जारि = अग्नि शलाखा से छेद किये जाने पर। अंग पुरकी = हिचकी विचलित हुई। अछय = अक्षय। सतराइ = इतराकर चले। आदि = आरंभ से।

(३) विरह और भ्रमर गीत

पद १–६ – कत = किसलिए, क्यों। हरे = हरे भरे। पुहुप = पुष्प। जुन्हैया = ज्योत्स्ना, चाँदनी। डसि = डँस कर। उलटी ह्वै जाति = नागिन डँस कर उलट जाती है तब सफेद दिखाती है, वैसे ही रात्रि डँस कर उलट जाती है तब चाँदनी छिटकती है। अर्थात् चाँदनी रात उनके लिए और भी भयानक होती है। लहरैं = नागिन आदि के काटने से लहर आती है। कहि आवै = निवेदन करती हूँ। लड़ैतिहिँ = दुलारे को, प्यारे को। विषम ज्वाल की पुंजैँ = भयानक ज्वालापूर्ण। घनसार = कपूर। भुंजैँ = भूँज रही हैं। लुँजैँ—लुंज या पंगु बना दिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुंजैं वरन भईं = घुँघुची के वर्ण की हो गई हैं। नावँ = नाम। बिरह जुर = बिरह-ज्वर। सोई पै जानै = वही तो जानता है।

पद ७–१२—सरक = शराब की खुमारी। उघारे = खोलने से। बिलमावत = फुसलाते हैं, बहकाते हैं। का पै लेहिं उघारे = अब किससे उधार लें। केहि रस मैं अभिलाषी = कैसी वस्तुएँ उसे अच्छी लगती हैं, उसकी कैसी रुचि है। गाँसी = लगनेवाली बात, व्यंग्य, कटूक्ति। ठगौरी = ठग विद्या, जादू। ऐसैं ही = बिना बिके ही। निबौरी = नीम का फल। हुतौ = था। जथा = जिस प्रकार, यथा। बरीस = वर्ष। पुरवौ मन = मनः कामकना पूर्ण करो। दाख = अंगूर, मुनक्का। अँगार अघात = अंगार से ही पेट भरता है। अगह गहि = जो ग्रहण नहीं किया जा सकता उसे भी ग्रहण करके। सचु पायौ = सुख प्राप्त किया, इष्ट लाभ किया। जिहिँ जिय जात जिआयौ = जिससे प्राणों की रक्षा हो सके।

पद—१३–१७—चकितवंत = आश्चर्य के कारण घबड़ाया हुआ। चेरौ = दास, अनुगामी। परस्यौ = स्पर्श किया। नेरौ = निकट से। घनेरौ = गाढ़ा, घनिष्ठ। बोरि = डुबाकर। बेरौ = बेड़ा। जिआवत = पोसती हैं। कुहकुहाय = कूककर। लगाय = लगन, प्रेम। पुहुमी = पृथ्वी। सेहि = साही, एक पशु। तोमरि = कड़वी लौकी। सचु = सुख, प्रसन्नता। ताँवरो = ज्वर, मूर्छा। गह्वर = गुफा। हूँकत = हुँकार मारती है। पछार खाय = पछाड़ खा, चेतना रहित होकर गिर पड़ना।

पद—१८–२१—जुर = ज्वर। बारू = बालू। उपचार चूर = दवा का चूर्ण। कजल = काली। पलिका = पलंग। तलफ = छटपटाहट, तड़पड़ाहट। ब्याज = बहाने से। मूल = जड़। निरवारौं = निवारण करूँ। छई = छा गई है। झई = झड़ी, रिमझिम-रिमझिम की लगातार वर्षा। सुफलक सुत = अक्रूर। मनिआरे = मणिवाले। माट = मटका। गुन न्यारे = निराले गुण श्लेष से सत्व, रज और तम से पृथक्। समोधे = समझा-बुझा दिया। खूँटी = खतम हो गयी। दौ = दावाग्नि। अंक = अक्षर। ताती = तप्त। लाड़ = प्रेम। बाल सँघाती = लड़कपन के साथी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुलसीदास

(१) रामचरित मानस

दोहा—१-५—(मंगल) द्रवउ = द्रवित हों, दया करें। तरुन = तरुण, पूर्ण विकसित, पूर्ण खिले हुए। वारिज = कमल। रमन = पति। अयन = घर, धाम। मयन-मर्दन = कामदेव का नाश करनेवाले। नररूप हरि = नररूप में विष्णु भगवान् (गोस्वामी तुलसीदास के गुरु का नाम भी नरहर्यानन्द कहा जाता है।) महामोह...निकर = जिनके वचन महामोह रूपी घनान्धकार के लिए सूर्य की किरणों के समूह के समान है।

दोहा—१-पद पदुम-परागा = चरण कमलों की धूलि (की)। समन = शमन, शान्त करनेवाला। भवरुज-परिवारू = सांसारिक समस्त रोगों के परिवार को। अमिय = अमृति। मूरिमय = मूल, जड़ी, संजीवनी बूटी। सुकृति = सुकृती, पुण्यवान्। बिभूति = विभूति, भस्म (वैभव)। मुकुर = दर्पण, मुँह देखने का शीशा। जोती = ज्योति। उधरहिं = खुल जाते हैं। ही के = हृदय के। भव-रजनी के = संसाररूपी रात्रि के, (अज्ञानांधकार की ओर संकेत)। सुअंजन = सुन्दर आँजन, गुणकारी आँजन। आँजि = (आँखों में) लगाकर।

दोहा—२—नयन-अमिय = (विवेक की) आँखों के लिए अमृत के समान। दृग = आँख। विभञ्जन = नाश करनेवाला। करि विमल = निर्मल करके। महीसुर = ब्राह्मण। सुभ = शुभ्र, उज्वल (शुभफल-दायक)। नीरस = रसहीन, सांसारिक सुख से हीन। विशद = उज्ज्वल निष्पाप। गुनमय = सदगुणों से युक्त, तन्तु (सूत) वाला। पर छिद्र = दूसरों का दोष, दूसरों का छेद, दूसरों को ढँकता है। सरसइ = सरस्वती (नदी) प्रयाग की त्रिवेणी की एक नदी। विधि-निषेधमय... करम कथा = विधि और निषेध रूपी कर्मों (आचरणों) की कथा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रविनंदिनी = यमुना। वेनी = त्रिवेणी। देनी = देनेवाली। बटु = वट, अक्षयवट। सद्य = तत्काल। चारिफल = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अक्षत तन = शरीर रहते ही। साधु-समाज-प्रयाग = साधु-समाजरूपी प्रयाग में।

दोहा—३—मज्जन = स्नान। पेखिय = देखा जाता है। बालमीक, नारद और घटयोनी (अगस्त्यऋषि)—तीनों ने सत्संगति के प्रभाव से महिमाशाली और आदरणीय हुए। जहाना = संसार में (हैं)। गति = सद्गति। भूति = वैभव। सोइ...फूला = सत्संग की सिद्धि (प्राप्ति) फल है, और सब साधन फूल हैं। परस = स्पर्श करके। कुधातु = लोहा। फनि...अनुसरहीं = जैसे साँप का संसर्ग पाकर भी सर्पमणि विष नहीं ग्रहण करती तथा मणि के गुणों को नहीं छोड़ती। कोविद = पंडित। कर दोइ = दोनों हाथों को।

दोहा—४—सति भाएँ = सच्चे भाव से। बिनु काज = बिना प्रयोजन। दाहिनेहु बाएँ = हितकारी के भी प्रतिकूल रहते हैं। हरि हर० = हरि और हर के यशरूपी चन्द्रमा के लिए राहु के समान है। सहसाखी = हजार आँखों से, अत्यंत ध्यान से। अकाज = हानि। भट सहसबाहु से = दूसरे की हानि करने के लिए वीर सहस्र बाहु के समान। माखी = (दूसरों के हितरूपी घृत के लिए) मक्खी के समान। महिषेसा = यमराज। धनेसा = (पाप और अवगुण रूपी धन के) कुबेर से (धनी हैं)। उदय० = जिनका उदय (बढ़ती) सभी का हितनाश करने के लिए पुच्छल तारे सा है। सोवत नीके = जिनके कुंभकर्ण के समान सोते रहने में ही भलाई है। जिमि० = जैसे ओले खेती का नाश कर स्वयं भी गल जाते हैं। (राजा पृथु ने भगवान् का यश सुनने को दस हजार कान माँगे थे) सक्र = इंद्र। सुरानीक हित = सुरों और (देवों, की अनीक (सेना) जिसके लिए हितकर है, सुरा (मदिरा) जिन दुष्टों को अच्छी और हितकारी जान पड़ती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोहा—५—दिसि = ओर से। निज ओर = अपनी ओर से। भोरा न लाउब = भूल न करेंगे, न चूकेंगे। उभय बीच = दोनों की (दुःखदता की) भिन्नता। सुधा सुरा० = साधु पुरुष अमृत सा लाभकर हैं, असाधु मदिरा के समान हानिकर हैं, यद्यपि समुद्र-मंथन में एक ही समुद्ररूपी पिता से दोनों उत्पन्न हुए। अपलोक = अपयश। कलिमल सरि = कर्मनाशा नदी।

दोहा—६—खल० – दुष्टों के अवगुण और पाप तथा सज्जनों के सुगुण—दोनों की कथाएँ अपार और अथाह समुद्र सी हैं। पोच = बुरा। विधि = ब्रह्मा ने। बिलगाए = अलग किया। माहुरु = विष। मीचू = मृत्यु। लच्छि = लक्ष्मी, संपन्नता। अलच्छि = दरिद्रता। मग = मगह। क्रमनाशा = कर्मनाशा। मरु मारव = मारवाड़ और मालवा। गवासा = कसाई।

दोहा—७—गुनहिं = गुणों में। राता = (मन) अनुरक्त (हो)। बरिआई = प्रबलता से। चुकइ = चूक जाते हैं। अभंगू = कभी न भंग होनेवाला, कभी न टूटनेवाला, न छूट। कालनेमि = जो संजीवनी बूटी लाने जाते समय हनुमान को नकली मुनि बनकर धोखा देते हुए मारा गया। रावण—सीता-हरण के समय का नकली तापस वेष। राहू—अमृत पीने में देवों के बीच देवता बनकर बैठने पर भेद खुलते ही विष्णुचक्र से छिन्न ग्रीव हुआ। जस अपजस दीन्ह = शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष कहे गए।

दोहा—८—चारि आकर = चार प्रकार के (स्वेदज, अंडज, उद्भिज, जरायुज)। किंकर = सेवक। उपाऊ = उपाय। राऊ = राजा। रुचि = चाह। आछी = है। जुरइ = प्राप्त है। छाछी = छाछ। भनिति = उक्ति = कविता।

दोहा—९—कलकंठ = कोयल। दादुर = मेढक। बतकही = बातों को, वाणी को। भोरि = भोली, अल्पज्ञ। खोरी = (हँसने में कोई) दोष (नहीं है)। हरिहर० = विष्णु और शिव के चरणों में जिनका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रेम है और बुद्धि कुतर्की नहीं है। अलंकृति = शब्दलंकार और अर्थालंकार। गुन एक = रामभक्ति से भूषित होने का केवल एक गुण।

दोहा—१०—बिधुबदनी = चन्द्रमुखी, सुन्दरी। बसन = वस्त्र। अगरु प्रसंग = अगुरु (धूपवत्ती में) के साथ मिल कर सुगंधि से भर जाता है और कटुआपन छोड़ देता है। भनिति भदेस = कविता ग्राम्य (भद्दी) है। वस्तु भल बरनी = (परन्तु) इसमें वर्णन की गई राम कथा भली (उत्तम) है। गति कूर = पाथकी = मेरी इस भद्दी कविता-नदी की गति पवित्र गंगा की चाल सी टेढ़ी है। कूरगति = कुटिल गति, टेढ़ा रास्ता, टेढ़ी चाल। पावन पाथ = गंगा नदी। पाथ — जल। भव = शंकर। भूति = भस्म। दारु = लकड़ी।

दोहा—११—अहि = सर्प। अनत = अन्यत्र। भगतिहेतु = भक्ति के कारण। विधि० = ब्रह्मा का भवन छोड़ कर। रामचरितसर = राम कथा रूपी सरोवर में। गिरा = सरस्वती। बरबारि विचारू = विचार-रूपी वारि (जल) यदि बरसे। चारू = सुन्दर। जुगुतिबेध = युक्ति से बेध कर। पोहिअहि = (रामचरित्ररूपी सुन्दर तागे में) पिरोकर।

दोहा—१२—छाँड़ि = छोड़ कर। कपट० = वे कपट मूर्त्ति हैं और कलियुग के पापों के भाजन (पात्र) हैं। धींग = धीँगाधीँगी करने वाले। धरमध्वज = धर्म की ध्वजा की ओट में पाखंड करनेवाले। धंधक = ढँग रचनेवाले, पाखंडी, कपटी। (कपट-प्रपंच को ढोनेवाले)। अलप = अल्प। तूल = रूई। केहि लेखे माहीं = किस गिनती में। कदराई = हिचकता है, डरता है।

दोहा—१३—एक = अद्वैत। अनीह = इच्छाहीन, चेष्टारहित। अज = जन्म-रहित। गई बहोर = जो वस्तु चली गई है, जा चुकी है उसको लौटानेवाले। गरीब-नेवाजू = गरीब पर दया करनेवाले। सहित = सब के स्वामी है। पिपीलिकउ = चूँटी भी।

दोहा—१५—बल मनहि देखाई = मन को बल (दिलासा) देकर। भये = हो चुके हैं। अहहिं = वर्त्तमान हैं। समाज = समाज में।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भनिति = कविता का। वादि = व्यर्थ (श्रम मूर्ख कवि करते हैं)। सियनि...टाट पटोरे = रेशम की सिलाई टाट में भी सुंदर लगती है (उसी प्रकार भद्दी कविता में भी रामचरित सुहावना लगेगा।) रघुवर ...मराल = रामचरितरूपी मानसरोवर के मंजुल हंस! मुनि = बाल्मीकि। रामायन = बाल्मीकि रामायण। सरवर = जो सरवर ('खर' राक्षस की चर्चा से युक्त होकर भी) सुकुमार पद और अर्थवाला है तथा दूषण सहित है दूषण, राक्षस की चर्चा युक्त होकर भी दूषण (दोषों) से रहित है। भव-सागर = संसाररूपी सागर। जहाँ अमृत, चंद्र और कामधेनु के समान संत उत्पन्न हुए और विष, मदिरा आदि के समान दुष्ट उत्पन्न किए। दिन दानी = नित्यदानी।

दोहा—१५—जो सिव सीतापति राम के सेवक, स्वामी और मित्र हैं। निरुपाधि = बिना उपाधि के, बिना शर्त के, निष्कपट भाव से। साबर = 'शावर' मन्त्र विशेष। अनमिल आखर = अक्षर बेमेल हैं। (शावर मंत्रों के अक्षर-क्रम समझ में नहीं आते, अर्थ भी समझ में नहीं आता, जप भी नहीं करना पड़ता है, पर वे सिद्धि देनेवाले बड़े प्रभावशाली हैं। पसाऊ पाइ = प्रसाद पाकर, कृपा पाकर। पसाउ-प्रसाद, प्रसन्नता, कृपा। फुर = स्फुट, प्रकट, सत्य।

(२) विनय-पत्रिका

(ब्रह्माजी लोगों का भाग्य बदलते-बदलते हैरान होकर पार्वती जी से जाकर कह रहे हैं) बावरो = बावला, पागल। रावरो = आपका। नाह = नाथ। दिन देत = सदा (प्रतिदिन) देते ही रहते हैं। भानी = भंगकर दी। सिहानी = स्पृहा करती हैं व्यंग्य करती हैं। नाक = (उनके लिए) स्वर्ग। नकबानी = नाकों दम। यह अधिकार = लोगों की भाग्य-लिपि लिखने और उसे बदलने का अधिकार। मेरिऔ = मेरी भी। द्याइबी = दिलाइएगा। (मेरी करुण-कथा छेड़कर हे सीता माता! मेरी भी याद दिलाइएगा। अधी = पापी। नाम लौ० =

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाम ले लेकर पेट भरता है। प्रभु-दासी-दास = आपकी दासी तुलसी का दास गज-काँच = शीशे के फर्श में। सेन श्येन, बाज पक्षी। छति = हानि, टूटने का (मुख के) भय। निज पन = अपनी प्रतिज्ञा, शरणागत वत्सलता। साधन-धाम = मनुष्य शरीर सभी साधनों का घर (उपकारक) है। कृपा डोरि = कृपा रूपी डोरी जो मछली के शिकार की बंसी में रहती है। बनसी पद अंकुस = चरण के चिह्न रूपी अंकुश को बंशी का काँटा बना कर। चारो = चारा। निहोरै = किस किस की बिनती करै। मोह-रजु – मोहरज्जु = मोह की डोर में। नसानी = नष्ट हुई। सिरानी = बीत गई, राम कृपा से मायारात्रि बीती। न डसैहों = (माया का बिछावन) न बिछाऊँगा। चिंतामणि = एक बहुमूल्य मणि (रामनाम का चिंतन रूपी मणि की ओर भी संकेत)। उर करते = हृदय रूपी हाथ से। न खसैहों = गिरने न दूँगा। श्यामरूप कसौटी = राम के श्याम रूप रूपी पवित्र कसौटी पर। परबस = इन्द्रियोंके वश में। निज बस = मन और इंद्रियों को जीत कर।

द्वैत-जनित = द्वैत भाव से जन्य। संसृति = संसार। मन कीन्हें० = मन ने बल पूर्वक इनकी कल्पना कर रखी है। त्यागन...नाईं = (क्रमान्वय, क्रमालंकार)। मनि महँ = मणि में (मणि के मूल्य के सब कुछ खरीदा जा सकता है)। पुतरिका-कठपुतली। छालित = क्षालित, धोया हुआ। चिद-विलास = चैतन्य परमात्म तत्त्व के विलास को।

खोरि = दोष। पुनाइबे पर = अपने को पुजवाने में। चोरि = छिपाकर रखा है। (अपने किए अच्छे कामों को सबको सुनाया) करौं जो कछु = जो कुछ अच्छा काम, कभी बन जाता है उसे खेत में पड़े हुए अन्न के दानों की तरह बटोर कर रख लेता हूँ। किन्तु हे दयानिधान! दम्भ जबरदस्ती हृदय में घुसकर—दम्भ बढ़कर—थोड़े बहुत सुकृत को भी नष्ट कर देता है। अचँई = पी गया। यहि रहनि = ऐसी जीवन-चर्या। जासों होय = जिसके सत्संग या उपदेश से। एतो = यही, इतना ही।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कवितावली

बासव-बरुन-बिधि-बन तें = इन्द्र, वरुण और ब्रह्मा के बन से भी (अधिक)। समय = समय से ही (पतझड़ के समय में ही)। बनाउ = बनावट। तिलोक-सोक-सारु = तीनों लोकों के शोक का सार-सा। तमीचर = राक्षस। खोरि-खोरि = गली-गली। दूर = तुरही। बालधी = पूँछ। व्योमबीथिका = आकाश मार्ग में। कृसान-सरि = आगकी नदी। प्रजारि है = जलाएगा। परानी = भागी। मँदोवै = मंदोदरी। मैं...कालि है = कल कितना कहा। घालि है = नष्ट करेगा। कोट-ओट = किला-प्राकार। अटनि = अटारी। झहरावै = झाड़ते हैं। लंक...पागि है = मानो लंका को पिघलाकर उसकी चासनी में (उस बुँदिया का) पाग पकावेंगे।

हाटकु = सोना। कनक-कराही...ताय सों = अग्नि-ताप से सोने की लंकारूपी कराही खदक रही है। भाय सों = प्रेम से। पाहुने... पवमान सों = अग्निरूपी पाहुँने को वायु द्वारा परसवाया। राजरोग = क्षय, यक्ष्मा। ओत = चैन। मनाक = (सं०) मनाक = तनिक। रसायनी = रसायन विद्या के ज्ञाता = रस भस्म बनाने में निपुण। सर-चाक् = कसोरा (जिसे घिसकर पारद, ताम्र आदि का भस्म बनाने के लिए जिसका पुट बनाया जाता है)। जातुधान बुट = राक्षसरूपी जड़ी-बूटी (के रस से)। जातुधान-बुट...मृगांक सो = राक्षसरूपी बूटियों के रस में लङ्का के सोने और रत्नों को यत्नपूर्वक पुटपाक में फूँककर 'मृगांक' (प्रसिद्ध रसौषधिका नाम जो क्षय रोग में दी जाती है।) बना डाला।

बाटिका...हनुमान सो = उस समय जाम्बवान् कहने लगे— "बाटिका को उजाड़ कर, अक्षयकुमार को मारकर लंकागढ़ को जलाकर सूर्यकुल-भानु श्रीराम के प्रताप-सूर्य की किरण के समान लोक-रूपी कमल और बानररूपी चक्रवाकों को शोकहीन करते हुए हनुमानजी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आ गए, आ गए।" नगर कुबेर को = कुबेर की नगरी, लंका। सौंज = सामग्री। चाकि राखी = चौंक लगाकर, चक्र की, परिधि की सीमा बाँधकर, सुरक्षित रखा। जाँगरु = डंठल, जो अन्न कण निकाल लेने पर बच जाता है।

गीतावली

दलि तृन = (नजर न लग जाय इसलिए) तिनका तोड़कर। बाल-बिनोद...जुन्हैया = बाल बिनोद के आनंदरूपी मनोहारी चन्द्रमा की ललित लीलारूपी चंद्रिका से। सींव = सीमा। तरनि-तरणि = सूर्य। अनुहरति = शोभित होती है। जित्यो लरनि = सौन्दर्य की लड़ाई (स्पर्द्धा) में। कहरनि = बिल। दुरि डरनि = डर से छिप गई। घुटुरुवनि चरनि = घुटनों के बल चलने से। जनु...धरनि = मानो धरणी (पृथ्वी) छवि को कमल के संपुट में भर-भरकर अपने हृदय में धारण कर रही है। मरकत = नीलमणि। अंसनि = कंधों पर। बिन...नव-सत = सोलहों शृंगार किए बिना ही। मनहुँ...भृंगनि = मानो देवता और मुनिजनरूपी भ्रमरों से सेवित आदि कमल (विष्णु-नाभि से निकला कमल जिससे ब्रह्माजी प्रकट हुए थे) विराजमान हो। आदि बराह = वाराह रूपधारी भगवान् (जिन्होंने हिरण्याक्ष नामक दैत्य द्वारा समुद्र के तल में फेंकी पृथ्वी को अपने दाँतों पर उठाकर बाहर लाकर पृथ्वी का उद्धार किया था)।

कीबी = कीजिए। पाँवरि = पादुका। बई = बोयी। घई = भँवर। (मानो घोर भँवर में पड़ गए हों। नट = नर्तक। गौंहैं = निशाना बेधने की घत, तरीका। मिति = मर्यादा, सीमा। हौं = मैं। 'हाँ' धुनि-खगी...मौन = मौनरूपी महाबधिक ने 'हा'-ध्वनिरूपी पक्षिणी को बल-पूर्वक लजारूपी पिँजड़े में बंदकर हृदय में ही रखा है। तिहुँ पौन = त्रिविध पवन। भोरेहु = भूल से (भी भेंट हो जाने पर) मुख करि = मुख द्वारा, शब्दों द्वारा। गौन = गौण। चैल-ज्यौं = कपड़े की भाँति। व्यालावलि = (अमृत की रक्षा रकनेवाले) सर्प-समूहों को।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केशवदास

रामचन्द्रिका

बालक = हाथी का बच्चा। मृणालनि = कमल नाल को। अकाल = अकस्मात, क्षण में। विपति हरत हठि = हठ करके अपने भक्तों की विपत्ति हरते हैं। भवशीश शशिसम = शिवजी के मस्तक पर रहनेवाले निष्कलंक द्वितीया के चाँद की तरह दोष रहित (करके)। वपुख = शरीर। साँकरे = संकट, कष्ट का समय। साँकरन = शृंखलाओं, कष्टों। दशमुख = ब्रह्मा—४ मुख; विष्णु १ मुख, महेश = ५ मुख। बानी = सरस्वती। उदार = विस्तृत, गम्भीर। ऋषिराज तप = तपस्या करते हुए वृद्ध हो गये हैं जो ऋषि। केहूँ = किसी ने। बखानी = पूर्ण रूप से वर्णन। पति = ब्रह्मा, चार मुख। पूत = महेश, पाँच मुख। नाती = षड़ानन, छः मुख। दरशन देत, जिन्हें दरशन समुझैं न = जिनको दर्शन भी पूर्णतः नहीं समझ पाते हैं वे ही अपने भक्तों को दर्शन देते हैं। पुनरुक्ति = काव्य में एक से अधिक बार उसी बात को कहना दोष समझा जाता है। रूप देहि अणिमाहि = उनका रूप का ध्यान अणिमा सिद्धि को देनेवाला है, अणिमा सिद्धि प्राप्त होने पर लघु से लघु रूप धारण किया जा सकता है। गुणदेहि गरिमाहि = उनका गुणगान गरिमा सिद्धि को देनेवाला है, इसके प्राप्त होने पर बड़े से बड़ा रूप धारण किया जा सकता है। भक्ति देहि महिमाहि = भक्ति महिमा देनेवाली सिद्धि देती है।

रामाश्वमेध

सौं = से। युतभूषण = आभूषणों से युक्त। रूपरयी = रूपवान्। शुचि = पवित्रता। शशिवर्ण = अश्वमेध का सफेद घोड़ा। अच्छत = अक्षत। पट्ट = घोषणा पट्ट। भूषि = भूषित करके। चतुरंग = चतुरंगिणी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल—चार अंग)। भेव = भेद, प्रकार। चमू = सेना। राजसिरी = राज्यश्री। स्रवे = टूटकर गिरती है। हुतासन = अग्नि। पंच प्रभूत = पंचतत्त्व। नाद = आवाज। तूरि = तुरही। उन्नत नवाइ = सर उठाये हुए को नीचे झुकाकर। जहीं = जबहीं। राँच्यौ = रचा, अनुरक्त हुआ, जीतने की इच्छा के वश हो गया।

एकवीरा च कौशल्या तस्याः.....बाजी गृहणात्विमं बली = एक वीर पुत्रवाली कौशल्या के पुत्र राम हैं। उन्होंने अश्वमेध का यह घोड़ा छोड़ा है। जो बली हो, इसे छीन ले।

कोदंड = धनुष। रोष छाये = क्रोधित होकर। नाराच = बाण। मोक्यो = (मोच्यो) छोड़ा। जुरौ = जुटो, लड़ो। राजतात = राजपुत्र शत्रुघ्न शत्रुहा = शत्रुओं का हनन करनेवाले। पत्री = बाण। यौं = इस प्रकार। गीता = हालत, दशा, अवस्था-वर्णन। चित्र को पुत्रिका = चित्र की पुतली, स्तब्ध। गाहियो = बाँध लिया। वर = वट वृक्ष। बर = बल से। सुर अंकुश दै = ललकार या टेर का अंकुश फँसाकर। फूलि = प्रसन्न होकर। गिरि ऊपर...कलेवर = पर्वत पर जिस प्रकार हाथी का शरीर हो। सोदर = सगा भाई। तरुमूल = पेड़ की जड़ में। चर्म अंग कुरंग = हिरन का चर्म उसके अंग पर था। बाल = सीता। भग्गुल = भगोड़। साँध्यों = धनुष पर बाण साधा, लक्ष्य को मारने के लिये चढ़ाया। ताकँह = उसको। हयो = मारा। लगि = लिये। वीर = लव। कानि = मर्यादा। काकपक्षधर = गले तक पीछे की ओर लटकते हुए सिर के केश। विचक्षण = विद्वान्, अद्भुत, चतुर। शोधु = खोजो, पता लगाओ। विशेख्यो = विशेष। आयुध = बाण। असु = प्राण। दुचितो = दुविधापूर्ण। इषुधी = तरकस। यूथप यूथ = राज की सेना। बात = हवा, आँधी। रोष रसै = क्रोधित होकर। तेहि बार = उस समय। न बारभई = देर नहीं हुई। कुम्भ = हाथी का मस्तक। पूर = धार। निरंकुशैं = अंकुश से नहीं मानने वाले। इंद्रजीत = मेघनाथ, जिसे लक्ष्मण ने मारा था। मकराक्ष = एक राक्षस। उत्तमगाथ = उत्तम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यशवाले। बालवयक्रम = बाल्यावस्था। दाहु = जलन। बरु = चाहे। लजौं = लजित होता हूँ। चर्म बर्म = चमड़े का कवच। धूमभिन्न = धूम से रहित। पौनचक्र = बात्याचक्र, बवण्डर। विराम = देर। अदेव = राक्षस। मुनिबार = मुनि बालक। जै = जिन, मंत। निज पातक-वृन्दन = अपने पाप के वृन्दों के। विघ्नहि = बाधा उपस्थित हो, उनके बल से कार्य होने में बाधा हो। विहानहि = विहीन, बिना दोष, निर्दोष। तीरथ = रण रूपी तीर्थ। अशेष = अनन्त। रोदसी = भूमि और आकाश। नृपता = राजाओं का समूह।

सेनापति

ऋतु

बृख को तरनि = वृष-राशि का सूर्य, लगभग १४ मई को सूर्य वृष राशि पर आता है। तचति = तपती है। झरत = बरस रही है। झरनि = अग्नि। सीरी = ठंढी। धमका विषम = गहरा सन्नाटा।

उपबन-बन = वन तथा वन के समान बाटिका, उपवन उस वाटिका को कहते हैं जिसमें वन की भाँति ही पेड़-पौधे उगते हैं और उनकी देख-भाल होती है। तपन = तपने, जलने। भूत = पंचभूत; पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश। सीकर = जल की बूँदे। तचाइकै = तपाकर। चपत = दबकर जा छिपता है, दबकर तहखानों में चला जाता है।

पटै = वस्त्र। धूँधि = मलिन, धुंध हो रहा है। भारु को भसम = भाड़ की जलती राख। पुटपाक = भीतर ही जलाना। झरनि = ज्वालाएँ। तरनि = सूर्य ताप की तरनि...झरति है = ग्रीष्म का सूर्य मानों अग्नि बरसाता है ही-तल = हृदय।

चपक = चकपकाहट। धुखान = भूरें-भूरें बादल। घोर = बाढ़। कलापी = मोर। जुर = ज्वर। दरकी = फट गई, दरार पड़ गई। छोह-भरी = प्रेमभरी। खरकी = खटकने लगी। औधि = अवधि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाँवन की डग = वामन के विराट स्वरूप के पग की भाँति लम्बी; पहले तो शीघ्र आने की आशा थी किन्तु बाद में वह थोड़ी अवधि बहुत लम्बी हो गई।

घूमरत = घुमड़ते हैं। तोइ = पानी। सोभा सरसाने = शोभा फैला रहे हैं। तिमिर = अंधकार। चारि मास...भरममानि = वर्षा के चतुर्मास्य में भगवान् बादलों के कारण अंधकार रहने से रात्रि समझकर।

घान = क्षण-क्षण में। छिछि कैं = छितराता है, छिटकता है। छछारे = फैलाता है, वृष्टि का शब्द, छहर-छहर। अछिन = लगातार। उछार के = उछाल कर, उत्साह के साथ। पवन अधार के = वायु का आधार लेकर। गग गग = गड़गड़ाहट। घनकार = बादल के गरजने के शब्द। लेस = थोड़ा। बिरिध = वृद्ध। अनगन = अगणित। अध-ऊरध = नीचे-ऊपर। राम के सो जस = मानो राम का यश है, साहित्य में यश को श्वेत माना है। तेई = वे ही। छपाइकै = छुपाकर। सों—से। अघटाई = नहीं घटना। बरनि = वर्णन करना। महतु = बढ़ना। तप-तालै = ताप का सरोवर। कहलाइकै व्याकुल होकर। तुखार = तुषार, पाला (जैसे बुखार निकाला जाता है, वैसे ही शिशिर पाले को उड़ा रहा है।) कोक = कोकी = चकवा-चकवी, रात में बिछुड़ जाते हैं। झाँईं = छाया। झुमकति = झलकती है। दृग छोर = आँख की कोर। पंकजिनी = कमलिनी। संक = शंका, संदेह से। टेसू = पलास। बिलास = शोभा के साथ। माधव = चैत्र। बकुल = एक वृक्ष, उसका फूल। सुरति = (१) प्रेम (२) विहार (३) स्मृति। दवन = जलन। जऊ = जो। साल = (१) साल वृक्ष (२) सालना, कष्ट देना।

बिहारी

भव-बाधा = सांसारिक विघ्न, जन्म लेने का कष्ट। झाईं = (१) परछाँहीं, आभा (२) झाँकी, झलक (३) ध्यान। हरित-दुति = (१) हरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रंग वाला (२) हरा भरा अर्थात् प्रसन्न बदन (३) तेज हीन या प्रभा-शून्य। विकट जटे = अत्यन्त दृढ़ जड़े हुए। खुटैं = छुटैं, खुले। मति = संभवतः, शायद। मोख = मोक्ष। निरधार = निश्चय, सिद्धान्त बनाकर। कुबत = बुरी बात, निंदा, बुराई। त्रिभंगी लाल = कृष्ण भगवान की मुद्रा-विशेष जिसमें वे तीन जगह से टेढ़े हैं। दीन-रट = करुण-कातर-पुकार, दीन वाणी में। जग-नाइक = जगन्नायक। पानि परि = दूसरे के हाथ में होकर। पच्छीनु = पक्षियों को, स्वपक्षी, स्वजातियों। आब = जल, कान्ति, चमक, आभा। गवँई गाँव = गवाँरों के गाँव या वासस्थल में। हाथिनु के = हाथियों के, गुणों के। ओड़ = उड़ीसा प्रान्त की एक अधम जाति, निकृष्ट जन। अपतु भऐँ = झड़े बिना निर्लज्ज और अपमानित। अपत = पत्र रहित, संपत्ति-विहीन। बै-नै = नदी की भाँति। वय नदीरूपी आयुक्रम। मधुअंध = मकरंद पान करके मत्त हुए। सुमनु = सो मन, पुष्प। सफलु = सफल, पूर्णकाम। अतप रोसु = ताप देने वाला गुस्सा, दुख दायी रोष, प्रचंड घाम। बारी = अनुभव-हीन नायिका, बगीचा। वारी = नायक के आने की पारी, वाटिका। सुहृदता = प्रेम, सहिष्णुता; उपयोगिता। गोधन = गोवर्द्धन, गोबर से बनी प्रतिमा जिसकी पूजा अन्नकूट को की जाती है। परेखौ = पश्चात्ताप, चिन्ता। खरैं = बहुत। पटु = वस्त्र। सपर = सुलभ। परेई = कबूतरी। पुहुमि = पृथ्वी। तंत्रीनाद = तार के बाजे की ध्वनि। राग = गीत। अनबूड़े = अर्ध बूड़े। बूड़े = नष्ट हुए। बूड़े = निमग्न हो गए। सब अंग = पूर्णतया, सर्वांग। सदन-तन = घर के भीतर। सरद = शरद रूपी सुंदरी। माह = माघ का महीना। त्यौं = और। बिरमाह = विराम करके, विश्राम करके। बाइ = पवन। झकुरातु = झकोरे लेता हुआ, झूमता। खूँदतु = रौंदता हुआ। रनित = गूँजते हुए। दान = हाथी का मद।

बेंदी = बिंदी। आँकु = मूल्य (रूप), अक्षर। नए = नम्र हुए। आँटैँ = दुख, अमर्ष, दावँ। करौट = करवट। साजियतु = सुशोभित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते, बढ़ाते। तरयौना = कान का एक भूषण जिसे बोलचाल की भाषा में तरकी कहते हैं। बेसरि = नाक का एक आभूषण। सोनजुही = पीली जुही, सुनहरी। बतरस-लालच = बात-चीत करने के लालच से। नटि जाइ = मुकर जाती है। कुटुम = कुटुम्ब के सम्बन्ध। गाँठि = ईर्ष्या। सीतकर = चंद्रमा। धुरवा = धुआँ। चहुँ ओर = चारों छोरों या दिशाओं से। प्रथमपयोद = प्रथम बादल। झुरसी = जली। झर = ज्वाला, लपट। झालरति = नए-नए डाल और पत्तों से सम्पन्न। सुशोभित हो जाती है।

मायक = मादक या मायावी। घरी = पल भर, निमिषमात्र, समय सूचक जल यंत्र की कटोरी। मैन = कामदेव। अहेरी = शिकारी। कानन-चारी = कानों तक विचरनेवाले, बन-चारी। कंजनु = कमलों को। भंजनु मान भंग करनेवाले। गंजनु = तिरस्कार कर। नेहु = प्रेमरूपी तेल। प्यास = दर्शन की लालसा। अच्छ छवि = उज्ज्वल छवि। पायंदाज = पाँव-पोंछना। सिरज्यौई = बनाया गया। मुँह-दिखरावनी = मुँह-दिखाई। ललन = प्रियतम, नायक। चटक = चटकीलापन, गाढ़ा रंग। लटकती = झूमती हुई, मतवाली। चल-चख = चंचल नेत्र। रिझवार = सौन्दर्य पर रीझनेवाले, सौन्दर्य के गुणग्राहक। उझकि = झाँककर (झरोखे में से उसे देखकर)। नंदित = आनंदित। ललन-चलनु = नायक का विदेश गमन। छिनकु = क्षणमात्र। (हृदय का तवे की तरह तप्त होने के भाव का संकेत)

भूषण

(१) शिवाजी का शौर्य

जृंभ = जृंभासुर नामक दैत्य जिसे इन्द्र ने मारा था। बाड़व = बड़वाग्नि, सुअंभ = श्रेष्ठजल अर्थात् समुद्र। बारिवाह = बादल। रतिनाह = कामदेव। राम द्विजराज = परशुराम। दावा = दावाग्नि विडुंड = हाथी। तमअंस = अंधकार के समूह। मलेच्छ = यवन। नाग = सर्प। नाग जूह = हाथियों का समूह। पुरहूत = इन्द्र। पछाँह =

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पश्चिम। पातसाही = बादशाही, शासन। दावा = अधिकार, धावा। जुत्थ-जुत्थ = जत्थे के जत्थे। दिगम्बर = शङ्कर। दर बर = सेना के बल से। भुवकंप = भूकम्प। परसिद्ध = ज्ञात, प्रसिद्ध। झारन = ज्वाला से। खग्ग = खड्ग। देवल = मंदिर। दिवाल = मर्यादा (यहाँ)। गाजी = धर्म पर लड़नेवाला। चकत्ता = चगताई वंशज औरंगजेब। दुग्ग = किला, दुर्ग। दहसत = भय। बिलात = नष्ट होते हैं। उग = आकाश, गगन। उग्ग = शिवजी (उग्र)। सरके = भाग गये। पनारे वारे = पनारे वाले। उद्भट = भयंकर, महाबली। तारे लागे फिरन = आँखों में तारे घूमने लगे। दाडिम = लाल अनार।

(२) छत्रसाल-दशक

चन्दवान = अर्ध अन्द्राकार बाण, पूरे, खिंचे हुए। घन बान = बादल के समान छा जानेवाले बाण, बाणों की झड़ी। कुहूक बान = अँधेर में चलनेवाले बाण। कमान = तोप। जतडाढ़ैं = एक प्रकार की टेढ़ी तलवार। बाढ़वारै = तेज धारवाली, पैनी, चमचमाती। हाड़ा = हाड़ावँशीय। नौरंग = औरंगजेब। लोह-लंगर = हाथी के पैर में पहनाई जानेवाली लोहे की जंजीर। मयूखैं = किरणें। तमतोम = अंधकार का समूह। करबाल = तलवार। कलेऊ = आहार, जलपान बखतर = कवच। पाखरिन = लोहे की झूल। परवाह = प्रवाह, धारा। पच्छी .....खलन के = तेरी बरछी ने शत्रुओं के बल का ऐसा नाश किया है कि वे परकटे पक्षियों की भाँति निकम्मे और असमर्थ होकर बैठ रहे। बैहर = स्त्रियाँ। बगारन = सीमा। समद = समुद्र। समद = अब्दुल समद नामक दिल्ली का एक प्रसिद्ध सरदार जो कि सन् १६६० ई० में बेतवा नदी के किनारे महाराज छत्रसाल से हारा था। सेल = बरछी, माला, पंक्ति कत्तार। हैबर = श्रेष्ठ घोड़े। हरट्ट = हृष्ट-पुष्ट। गैबर = बड़ा हाथी, गजवर। गरट्ट = समूह, झुंड। रंजक = बारूद। सैद अफगन .....तोपखाने की = सैयद अफगन की सेना रूपी सगर के पुत्रों को तोप के गोले कपिल [illegible] के शाप की तरह लगे। चाक-चक = पूर्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुरक्षित। अचाकचक = अचानक। थप्पन = बसाना, स्थापना। उथप्पन = उजाड़ना। कीबे को = करने के लिए। समान = सादृश्य के लिए। पंचम = बुन्देलों के पूर्वज। छत्ता = छत्रसाल आफताब = सूर्य। गजतुरी = हाथी-घोड़ा।

पद्माकर

भक्ति

आढ़ो है = पकड़ रखा है, पकड़ कर अड़े हैं। नेक-नेक = तनिक-तनिक। ठाकुर = स्वामी। लहरा लग्यौ होन = (समुद्र में) ऊँची-ऊँची लहरे उठने लगी। भीर = भीड़, बोझा। झाँझरी = पुरानी, जीर्ण-शीर्ण नौका (पाप के बोझ से जर्जर जीवन नैया)।

गंगा लहरी

कूरम = कछुआ। कोल = वाराह (अवतार)। कुण्डली = सर्प की गेंडुली। सुफन = सु + फण। छुटी है = फैली हुई है। थान = स्थान (नरक का)। फरद = लेखा। जोयन = स्त्रियों को। जोइ = देखकर। अंगन = आँगन। अंगन = अंगों को। हुतो = थे। प्रचंड जौ परैगो = यदि प्रचंड होकर मुझसे लड़ने आओगे। लहर = उमंग। फैल = विस्तार। फहर = फैलाव। छहर = छिटकाव। कहर = आफत ढानेवाली, नाश करने वाली। हौं = मैं। भूतन कौ पति = शंकर। ग्यारह तनु = एकादश रुद्र रूपात्मक। त्रिसूल देत = त्रिशूल वाला। रेनुका = बालू। रासन = राशि। लदाउ = लदाव, भराव धौरी = धवल। बारन = वारि जल। अपान में = अपनेपन के भाव वश, घमंड, रोष। दिगंबर = नग्न, महादेव होकर। नासै = नष्ट हुए (पुण्य को उत्पन्न करती है।) तनै = फैलाती है। सुभंगा = सुन्दर तरंगवाले। गाढ़ = बिपत्ति। बुटि-बुटिगे = भाग गए। घुटि-घुटिगे = घुट-घुट कर मर गए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फुटफल

तारापति = चन्द्रमा। ताती = तप्त (विरह से)। काम... काती सी = काम कत्ल करनेवाला है और कुञ्ज कटार हैं। अबाती = बिना वायु की, भीतर-भीतर जलने वाली बिना बत्ती की। नेह = तेल, स्नेह। किलकंत = किलकता। पंगत = पगा है, छाया है। झरसत = झुलसता है। मवासो = किला, घर। अवास = आवास, घर ['अवासो' द्वारा आँवा-(कुम्हार का) की भी व्यंजना है।] तालन = ताड़वृक्ष। छाज = छानी, छप्पर। छता = छत्र। रागती = अनुराग करती है। पिचकी = पिचकारी। घाली = डाल दिया। पैठ = बाजार। अभीरन = अहीरों में

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(१) शरद् की रास-क्रीड़ा (प्रिय-प्रवास से)

कमनीयता = सौन्दर्य, (रूप-लावण्य)। ककुभ = दिशाएँ। कांतार-काश = जंगली मार्ग का कास। बीचिशीला = लहरोंवाली। प्लावन-कूल-हारी = किनारों की मर्यादा को भंग कर भूमि प्रदेश को डुबानेवाली। विमलांबुवती = निर्मलजलशालिनी। अवर्त्त-जाल = जल की भौरियाँ। कांतार = वन। कर्दम = कीचड़। सुगह्वरों = बड़े गड्ढों। अजस्र = सर्वदा, निरन्तर। प्रान्तरों = प्रदेशों, भूमिभागों। स-बाम = स्त्री-सहित, हंसिनी सहित। न्यारी-कला० = चन्द्रकिरणों की निर्मलता की अपूर्व ज्योत्स्ना व कला। प्रथित-पारद-प्रकिया = प्रसिद्ध चंचल गतिवाले पारे का रंग चढ़ गया था। प्रिय अंशु = प्रिय किरण। दिव्यांम्बरा = (१) दिव्य वस्त्रवाली, (२) दिव्य आकाशवाली। बिहार-रुचि = क्रीड़ा की लालसा, रास की स्वाभाविक इच्छा या प्रवृत्ति। सदंगुलि = कुशल अँगुलियों। रागांगना = रागरूपी स्त्री का। असेत-सी = यमुना। उलही-लता = उमंग से भरी हुई लता। विमोहित = मुग्ध। प्रमोदिता = आनन्दित। अभिमंत्रिता = मंत्र ने अभिमंत्रित।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋजु = सरल, मंजुल। रंध्र सातों = सप्त स्वरों के सात छेद। चावों = रुचियों। अर्कजा = यमुना। छपा-पती = चन्द्रमा, छपा (रात) के पति। पति-रता = पतिव्रता। तटिनी = नदी। निशीथिनि = रात्रि।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

गंगावतरण

(इस सर्ग में राजा भागीरथ की तपस्या तथा वरदान मिलने की कथा का वर्णन है)। नृपति = राजा भागीरथ। अलान = हाथी के बाँधने का खम्भा। सिद्धि-छेत्र = सिद्धि प्राप्त करने का क्षेत्र। सोधि = खोजकर। मनि-खानि-सोत = मणियों की खान का स्रोत। तोष के घोष = तृप्तिसूचक शब्द। विद्याधर = देव-योनि-विशेष। मैँ = समीप, पास। इष्ट-साधन = गंगा को पृथ्वी पर लाने की साधना। ठिक ठान्यौ = ठीक निश्चित किया। छेत्र-पति = क्षेत्र-पाल, पूजित देव विशेष, भूमिक्षेत्र के देवता। पुहुमी = पृथ्वी। टेरे = आर्त्त वाणी में पुकारना। भावना के लेखा = कल्पना के रेखा के समान। अत्यन्त कृश से भाव हैं)। अस्ति नास्ति = है अथवा नहीं है। गनित-कल्पित रेखा = ज्यामिति की कल्पित रेखा। बिधि-मंत्रे = ब्रह्मा के मंत्र को। तरैँ = उद्धार हो। पुरहूत = इन्द्र। टेक = निश्चय, मन्तव्य। टारी = दूर की। ताकैँ = राजा के। अखंडल = इन्द्र। कहलाने = व्याकुल हो गए। हहलाने = घबड़ाकर चक्कर लगाने लगे। तमकि = क्रोध करके। मन भाय भगत कौ = मन में भक्त का ख्याल करके। तपत = तप कर रहे थे।

कृपा-छलक-छबि = कृपा की कांति छलक रही थी। बरदान-उमंग-तरंगनि = बरदान देने की उमंग से तरंगित। भूप-काल-कमल.....प्रभाकर = राज-वंश रूपी निर्मल कमल को 'विकसित करने के लिए निर्मल सूर्य के समान। उघारे = खोले। बिबुधनि-वलित = देवताओं से घिरे हुए। तप तापैँ = तपस्या में तपाए हुए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उबरि = अधिक होकर। ढरि = ढलकर, गिरकर। सरक्यौ = सरक गया, चला गया। छरक्यौ = फैल गया, छलक गया। ढरक्यौ = फट गया। पानि = हाथ। सुमूल फल = सुन्दर फल, मूल।

पूजे = पूर्ण होते हैं। तारन-बिरद-उतंग = उद्धार करने में विख्यात। बास = स्त्री। भव-विभव = संसार के ऐश्वर्य। उमाहैं = उल्लसित हों; ललचाएँ। ताही सौं = इसी से। जुड़ै हैं = जुड़ाना, प्रसन्न होना। परै हैं = भागना, मिटना। धरा-धर = शेषनाग। धमकि धूम = धमाके की आवाज से। धाइ धँसै = दौड़कर घुसेगा। ब्रह्मद्रव = गंगा। थापै = स्थापित रखे। अर्थ-दायक चित-चाहे = मनोनुकूल अर्थ को देने वाले जोहि = देखकर। छोहि = स्नेह करके। चिर-जीवन = अमर। जीवन। मारकंडे = शिव ने इनको अमर जीवन का बरदान दिया। चोप = उत्साह। ओप = कांति। निर्धारि = निश्चय करके। गाढ़ = कठिन गम्भीर। देवधुनि = गंगा। आधि-हर = मानसिक दुःख अथवा कष्ट को दूर करनेवाले। आनि = लाकर। कसकि = दुःखित होकर। बरदहु = नन्दी बैल को भी। हर बर = हड़बड़ाहट में। कृसित = क्षीण। सृंगी-नाद = शिवजी के वाद्य विशेष का शब्द। निपट चकाए = अत्यन्त चकित हुये। हेम-वरन = सोने का वर्ण। कटा-घटा = कटाक्ष की घटा। फनि-पति-घर-बिहार-भूमि = सर्पराज रूपी हार की क्रीड़ा भूमि जो वक्षस्थल है वह शोभायमान हो रही है। चाम दुरद-दुवन कौ = गजासुर के मारनेवाले, शिवजी। जानु = जंघा। बिभूति भूति = जो भभूत लगाए हुए हैं वह त्रिभुवन की सम्पत्ति है।

तूठे = तुष्ट, प्रसन्न। भायनि = भाव। छनक = एक क्षण। बरुनिनि = बरौनियों। बाँकुरौ-बिरद = अनोखा यश। ज्वै = देखकर। दंद उम्मस = कष्ट की गर्मी।

मैथिलीशरण गुप्त

पंचवटी की सुषमा

'पंचवटी' एक खण्डकाव्य है। इसमें सूर्पणखा के नासिका छेदन की कथा है। राम और सीता पर्णकुटी में सो रहे हैं और लक्ष्मण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहरा देते हुए पंचवटी की शोभा का वर्णन कर रहे हैं) कुसुमायुध = कामदेव (सुन्दरता के कारण, पर योगी, संयम के कारण)। गंधवह = वायु। नियति-नटी = प्रकृति रूपी नटी। वसुन्धरा = संपत्ति-शालिनी पृथ्वी। मोती = ओस बिन्दु रूपी मोती। तात = पिता, दशरथ। पशुता का आरोप = मनुष्य के घृणित, क्रूर, निंदनीय कर्म देखकर उसे पशु या उसके कर्म को पशुता कह देते हैं। निसर्ग नियम = स्वाभाविक नियम (पशु स्वाभाविक नियमों को नहीं त्यागता, चाहे सिंह ही क्यों न हो)। वैतालिक = यश के गायक, (पक्षी रूपी स्तुतिपाठक। गौरव गंध = गौरवरूपी गंध (जैसे गुलाब को मिला है)। व्यजन = पंखा। मनःप्रसाद = मन की प्रसन्नता। प्रासाद = महल। पुण्य-गृहता = पवित्र गृहस्थ धर्म का पालन और आचरण। विकृति = विकार। सब...क्षेत्र = प्रेमी अपने प्रिय का आँखों से दूर रहना, चाहे वह कितने सुख में भी हो, नहीं सह सकता। प्रखर ज्योति० = सूर्पणखा, जिसमें तीक्ष्णता और जलन थी, शान्ति नहीं। प्रफुल्ल = फूली हुई। बल्ली = लता।

गोपियों के प्रति उद्धव का वचन

(द्वापर से)

(यह भी गुप्तजी का एक नए ढंग का खंड काव्य है। विरहिणी गोपियों को देखकर उद्धव सोच रहे हैं) ससंभ्रम = घबराहटभरी शीघ्रता। स्खलित = खिसकी हुई। भूषा = वस्त्राभूषण का शृंगार। मर्म = रहस्ययुक्त। मृषा = झूठ। अचलता-सी = निश्चलता के समान जो भावाकुलता के कारण उत्पन्न हो। एणी-सी = हरिणी के समान। वेणी = चोटी, केशपाश। विलोड़े = विलोड़ित करे, आन्दोलित कर दे। झंझा = आँधी-पानी साथ-साथ। सम्पुटिकता = संपुटीभाव। वृन्त = पुष्प-बन्धन, फूल की गाँठ। उत्कर्णा = सुनने के लिए कान लगाए। प्रोषित पतिका = जिसका पति परदेस गया हो। आगत पति का = जिसका पति आ गया है और स्त्री उससे मिलनेवाली है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसाद

वे दिन

(इस कविता में कवि 'प्रसाद' ने वर्षा के प्रतीकात्मक रूपक के बहाने जीवन के प्रणय-कालीन उन रंगीन स्मृतियों की चर्चा की है जब प्रेम की मधुमयी कल्पनाओं और चेष्टाओं से, प्रिय की सुखमयी स्फूर्ति से हृदय चंचल रहा करता था, स्नेह की जब वर्षा होती रहती थी।)

इन आँखों की छाया भर थे = जब आँखों की प्रेममयी छाया के साथ प्रकृति रस-वर्षा सी करती रहती थी। सुरधनु-रंजित = इन्द्रधनुष से रंग विरंगा (विविध रँगीनी कल्पनाओं से सुशोभित)। मिले चूमते० = जब मधुर मादकताएँ मिलन सुख से उल्लसित थीं। प्राण-पपीहा = प्राणरूपी पपीहा जो प्रियतम को पुकार रहा था। चपला = स्मृति की चपल रेखा। विरला = अनोखी, एकाकिनी। हरियाली = हरियाली की जननी वर्षा। स्वरवाली = स्वरयुक्त।

खोलो द्वार

(इस कविता में कवि ने दिखाया है कि जीव, जो बहुत दिनों से प्रियतम भगवान् से बिछुड़कर इधर-उधर भटक रहा था, वह मानों सारी रात भटकने के बाद ऊषा के पूर्व, ओस से भींगी कमली ओढ़े, काँटें-बिँधे पावोंवाला धूल-धूसरित होकर प्रियतम के द्वार पर आ पहुँचा है और द्वार खोलने का आग्रह कर रहा है।)

कमली = ओढ़ने का पुराना कंबल। तार = रोएँ-रोएँ। कबरी = केश-पाश। अरुण = प्रातःकालीन सूर्य। धूलि = संसारी पापों की मलिनता। छारों = छारों से, (भस्मीभूत), नगण्य और अकिंचन धूलि। पद निर्धार = सुगति प्राप्त कर लूँगा। प्राप्य = जिसे पाना इष्ट हो। सुप्रभात = दुःख, दैन्य, विरह की रात्रि बीत जाय।

किरण

(इस कविता में 'किरण' को कवि अलक्ष्य प्रियतम, परम सत्ता के अनुराग से अनुरक्त, लाल देख रहा है। कवि ने मूर्त्त रूप में किरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को देखा है और उसकी अनुराग भरी चेष्टाओं में रहस्यात्मक प्रेरणा पाई है।)

अनुराग = काव्य में अनुराग का रंग लाल है। किरण अलक्ष्य गूढ़ प्रियतम के अनुराग से लाल है। स्वर्ण० = सोने के कमल के सुनहले केसर की भाँति सुनहली। परमाणु०—प्रभात कि किरणों में दिखाई पड़नेवाली धूल के कण। विकल-वेदना-दूती = अज्ञात विश्व की विरह वेदना सुनाने वाली। अरुण-शिशु = प्रातः कालीन लाल सूर्य (के मुख पर)। कोकनद = लाल कमल। सूर्य रूपी कोकनद की किरणें मकरंद धारारूप हैं। स्वर्ग और भूलोक को एक में बाँधने-वाली किरणें हैं। बना दोगी० = जैसे स्वर्ग दुःख-दैन्य विहीन है, वैसे ही पृथ्वी को भी पाप और शोक हीन बना दोगी क्या? सुदिन-मणि-वलय-विभूषित = सूर्य रूपी मणि-कंकण कंगन से विभूषित (हाथ के) द्वारा उषा-सुन्दरी किसी को मधुर संकेत करती हुई प्रणय-निकेतन दिखा रही है मानो। सुमन० = फूलों के कोमल पंखुरियों के द्वार खोल दो जिससे उपवन का सोया वसन्त फिर से जग जाय। (२) मन के द्वार को खोलकर वहाँ का अंधकार दूर कर दो जिससे वहाँ प्रकाश, प्रसन्नता, उल्लास भर उठे।

मनु और श्रद्धा

यह अंश 'कामायनी' से लिया गया है। अतिविलासिता के कारण देव-सृष्टि का नाश जल-प्रलय से हुआ। मनु केवल देवों में से बचे। देव-वैभव के नाश के कारणों का विश्लेषण करते हुए मनु का हृदय चिन्ता के अन्धकार से भर गया। उन्हें विराग हो गया। पर धीरे-धीरे आशा का उदय होने लगा। इतने में ही श्रद्धा से भेंट हुई।

कौन···एक = प्रलय के समय समस्त सृष्टि जलमय हो जाती है। मनु सृष्टि-सागर से निकले हुए (मणि) रत्न से प्रतीत हुए। संसृति = सृष्टि, संसारी लहरों के घात-प्रतिघात से अनायास फेंकी हुई मणि के सदृश। मणि = (१) सुन्दरता और दीप्ति के कारण (२) मणि सभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है। (३) सागर से रत्न निकालना, सहज स्वाभाविक है। प्रभा की धारा = सूनेपन में तेज की आभा।

मधुर विश्रान्त एकान्त = मनु के हृदय की व्यग्र चपल चिंता थक कर एकान्त में विश्राम कर रही है। जगत का सुलझा हुआ रहस्य = जल-प्लावन के कारण सृष्टि का रहस्य नहीं समझ में आ रहा था किन्तु मनु उस उलझन के सुलझाव से प्रतीत हुए। एक.....रहस्य = मौन सुन्दर नहीं लगता किन्तु मनु एकाकी होने के कारण विवश मौन थे और इसी लिए सुन्दर जान पड़े। मधुकरी = भ्रमरी। प्रथम..... छन्द = वाल्मीकि के मुख से क्रौञ्चवध पर सहज रूप से फूट पड़नेवाला प्रथम श्लोक मानव-सृष्टि रूपी काव्य के रचयिता परम कवि की प्रथम वाणी थी। कुतूहल० = चिन्ताजन्य निराशा पूरी हो गई और संसार के प्रति विरक्ति के स्थान पर उत्सुकता मानो मुखरित होकर फूट पड़ी। नयन .....अभिराम = नेत्रों को अभिभूत कर लेने वाली शोभा, वह मनोरम, इन्द्रजाल। श्रद्धा का दर्शन इन्द्रजाल सा मोहक और आश्चर्यजनक था। कुसुम...घनश्याम = फूली हुई लता की तरह, चाँदनी में लिपटे हुए मेघ खण्ड जैसा। हृदय...उदार = हृदय की विशालता के अनुरूप (उसके अनुकूल) ही उसका शरीर भी विशाल था। शिशुसाल = सालका नन्हा वृक्ष। मेघों के = मेढ़ों के। वर्म = वस्त्र, कवच, सौन्दर्य का रक्षक।

नील परिधान = नीला वस्त्र। खिला...गुलाबी रंग = नीले वस्त्रों में श्रद्धा का गुलाबी गोरा शरीर मेघों के बीच बिजली के फूल सा प्रतीत हुआ। पश्चिम के व्योम = पश्चिम का आकाश-मण्डल। नव...शृंग = नवीन इन्द्रनील मणि की नन्हीं चोटी। नील० घन-शावक = नीले बादलों के बच्चे। शावक कहने में अधिक सौकुमार्य और सरलता व्यञ्जित है। रक्त किसलय = लाल पल्लव (अरुण अधर)। अंस अवलंबित = कंधे तक लटकते। और.....अभिराम = श्रद्धा की मुस्कान अरुण-रश्मि की तरह उज्वल, रम्य और विकार रहित थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरुण-अधर-पल्लवों की मधुरिमा में वह उज्वल किरण इतनी खो गई कि अलसा कर वहीं रह गई। स्पर्श के० = जड़ को भी, जड़ के समान अनुभूति-शून्य को भी अपने स्पर्श के आकर्षण से चेतन, अनुभूतिशील बनाती हुई आकर्षणमयी (जैसे चुंबक स्थावर लोहे को जंगम बना देता है।)

उषा की० = उषा की प्रथम सुंदर किरण जैसे मानो लज्जा की ललाई लिए रात के अन्तिम प्रहर में तारों के बीच उदित होती है वैसी ही। कुसुम कानन० = पुष्प बन के मध्य में मन्द पवन से प्रेरित सौरभ-पराग के परमाणुओं से निर्मित शरीर जैसे साकार हो उठे और उस पर जिस प्रकार चन्द्र की किरणें मन की साधों के समान फैली हों उसी प्रकार श्रद्धा के मुख पर (जो पुष्प-पराग-निर्मित-सी सुकुमार, मधुर और मादक थी) सहज, पवित्र भोली हँसी नाच रही थी।

कहा मनु ने० = मनु ने बताया, जैसे शून्य आकाश में उल्कापिंड निरुद्देश्य जलता हुआ चक्कर लगाता है, अथवा वह बर्फ की चट्टान जो गल कर न तो झरना ही बनी और न दौड़कर समुद्र से ही मिली उसी भाँति निरुद्देश्य जीवन बिता रहा हूँ। एक विस्मृति का स्तूप अचेत = मेरा अतीत मुझे विस्मृत हो रहा है और मैं शून्य होता जा रहा हूँ, जड़ता बढ़ रही है। घन-तिमिर में = काले बादलों में। (श्रद्धा का दर्शन मनु के शून्य, चिन्ता-संतप्त हृदय को नवीन आशा का संदेश देता जान पड़ रहा है।) मुक्त व्योम-तल = खुले मैदान में। हृदय सत्ता का सत्य = जो ललित कलाओं में बसता है। संभार = तैयारी, सजावट (प्रकृति की)। भूत-हितरत = जीव-दया की प्रेरणा से भरे हृदय (वाले का)। कर रहा वंचित० = विरक्ति तुम्हारे मन में लुभावनी कल्पना का रूप धारण कर वंचित तो नहीं कर रही है। दुःख के डर से० = कहीं वह विरक्ति संसार के संघर्षमय जीवनके कष्टों से भयभीत मन का विकार तो नहीं है? कहीं 'काम' (चार पुरुषार्थों में से एक और सृष्टि का कारण) से तुम्हारा यह झिझकना भविष्यत् के प्रति अज्ञता से उत्पन्न तो नहीं है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काम मंगल से० = लोक कल्याण की भावना से मंडित काम श्रेयस्कर है। सृष्टि भी भगवान् की एक से अनेक होने की इच्छा (काम) का परिणाम है। उसका तिरस्कार करना मानव लोक को, संसार को व्यर्थ बनाना है।

मधुर मारुत ये उछ्वास० = तुम्हारी मधुर वाणी, जिसमें उत्साह का उछ्वास भरा है, मेरे हृदय में मनोहर उत्साह तरंग उत्पन्न कर रही हैं। प्रकृति के यौवन का० = जैसे मुर्झाए फूल प्रकृति की पूर्ण सुन्दरता का शृंगार नहीं करते उसी प्रकार मुर्झाए मन से सृष्टि की शोभा, मानव सृष्टि की सुन्दर प्रतिमा नहीं सज सकती। निर्मोक = केचुल। समर्पण = जिसका सार (मूलतत्त्व) सेवा है। सजल संसृति का यह पतवार = दुःख और पीड़ा से भरे अश्रुमय संसार को पार कराने वाला समर्पण है, पीड़ितों की सेवा है। हमारा हृदय रत्न निधि = हृदय रूपी खजाना जिसमें रत्न के समान दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध-विश्वास सँजो कर रखे हुए है। संसृति = संसार, सृष्टि। वेल = सृष्टि रूपी लता। (जिसके सुगंध-सद्भाव से)। सुमन के = सुष्टु मन के, सहृदयता के, दया ममता आदि के (सुमन से फूल की कोमलता, निःस्वार्थ परोपकारिता की ओर संकेत है)।

निराला

तरंगों के प्रति

(इस कविता में जड़ तरंग को चेतन मानवी के रूप में कवि ने चित्रित किया है। तरंग की चेष्टाओं के प्रति कवि के हृदय में जिज्ञासा है। अतएव रहस्यात्मक संकेत भी है।)

अनंत = समुद्र, आकाश, परमात्मा की ओर संकेत। नीला अंचल = नीले जल का अंचल। गीत उदार = स्वच्छन्द गीत, बंधन हीन भावनाओं की अभिव्यक्ति। अंबर शैवाल = सेवाररूपी वस्त्र। मृणाल = कमलनाल, (कमलनाल मयी भुजाएँ)। अवसान = अन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(मिलकर विलीन होना)। मिलन-मुखर = मिलन की आकुल आकांक्षा वाला। नवरता की कृतियाँ = मनुष्य।

[तरंग की सभी चेष्टाएँ मानो रहस्यमय अज्ञात प्रियतम (ब्रह्म) से मिलने की आकुलता प्रकट कर रही हैं।

विफल वासना

(इस कविता में उस अलक्ष्य प्रियतम के प्रति साधक प्रेमी की प्रेममय उपासना का वर्णन है, प्रेमी साधक ने जिसका उपहार प्रिय को बड़ी साध से भेंट की। पर मनोरथ पूर्ण न हुआ।)

गूँथे...ही हार = विरह के गरम अश्रु-बिन्दु की धारा। बैठी हुई...गोद पर = पुरानी धुँधली दुःख भरी स्मृति से घिरी हुई। रुद्ध द्वार = (प्रियतम के भवन का) जो द्वार मेरे लिए (मानो) बंद था। दग्ध-हृदय = विरह-व्यथा से जला हुआ हृदय। नूपुर सी मैं बजी = नुपुर की ध्वनि के समान अपने हृदय की विरह भावनाओं को तुम्हारे सामने प्रकट किया। अनुरागिनियाँ = जिन्हें तुम प्यार करते हो। छिन्न = (हो जाते हैं क्रिया का पूरक है)। 'हँसता हुआ...पृथ्वी पर सो जाते हैं"—इस अंश द्वारा आकांक्षाओं से भरे बसंत का आगमन और अंत में सब कुछ खोकर फूलों की वासना का विफल होकर नष्ट हो जाना—वासना की विफलता का साम्य प्रदर्शित किया गया है।

वन कुसुमों की शय्या

(इस कविता में निराला जी ने ऋतुरूपी प्रकृति को चेतन, सुंदरी और करुणाभरी नायिकाओं के रूप में चित्रित किया है।]

त्रस्त विश्व = ग्रीष्म की ज्वाला से पीड़ित संसार। धूलिधूसरित = दुःखिनी के समान लू के कारण धूलि-मलिन। चिन्ता-लोल = चिंता-कातर। श्वास० = ग्रीष्म के कारण पीड़ित विश्व के दुःखमय श्वास = उछ्वास मानो अपने हृदय के भीतर की उमसभरी कहानी करुण स्वर में वर्षा से कहते हैं, और तब वृष्टि होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दाह = पतन = उतप्त० = जब ग्रीष्म के प्रखर ताप से दुःख-सागर खौल कर भाप बन उड़ता और बादल बनकर बरसता है तब धरा की ज्वाला को शीतलता मिलती है। किन्तु वर्षा जले दिल को शान्त नहीं कर पाती। क्योंकि उसे ठंढक चाहिए तथा चाहिए कुसुमित शान्त वन प्रान्त आदि।

सोती हुई० = शरद् और शिशिर कमल की गोद में जब सोती रहती हैं और सुखविलास के मद से शिथिल उनके अंगों पर जब पद्मपत्र पंखा झलते थे—अंतिम झोंका०—हस्त नक्षत्र की स्नेहभरी मेघध्वनि के द्वारा वर्षा ने शरत्-शिशिर को जगाया।

क्योंकि नींद = क्योंकि उनकी मदमाती आखों में उचटी नींद छाई हुई थी।

सन्ध्या सुन्दरी

(इस कविता में कवि ने उस सन्ध्या का, जो अरुणाभा को धीरे-धीरे अंधकार में और दिन के कोलाहल को रात्रि की नीरवता में डुबोती आती है—परी-सी चेतन रमणी के रूप में चित्रण किया है।)

तिमिरांचल = उस सन्ध्यासुन्दरी के तिमिररूपी नील-वस्त्र के अंचल में। दोनों अधर = दोनों छोर, क्षितिज। तारा एक = सन्ध्या का शुक्र तारा। गुँथा० = मानों सन्ध्यासुन्दरी के नीलाकाशरूपी कृष्ण-केशों में गुँथा हुआ फूल है। सखी-नीरवता = नीरवतारूपी अपनी सखी (के)। नहीं बजती० = चारों ओर निस्तब्धता का साम्राज्य छाया हुआ है। सोती० = शान्त सरोवर पर सोई हुई कमलिनी में भी भ्रमरों का गुंजार नहीं है।

मदिरा० = दिन भर के कार्य और श्रम से थके लोगों को श्रान्ति-हरिणी निद्रा-मदिरा की प्याली पिलाकर...। अर्धरात्रि० = धीरे-धीरे संध्या, रात्रि और अर्धरात्रि में विलीन हो जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गीत

(इस गीत में कवि ने अध्यात्मलोक, रहस्यमय प्रिय के अलक्ष्य लोक को गंतव्य लक्ष्य बताया है। और इस लोक के साथ उसकी तुलना करते हुए उस लोक की विशेषता बताई है।)

ज्योति के रूप = अलौकिक ज्योति की सुन्दरता अपना लोक-विलक्षण प्रकाश फैलाती रहती है। कामना० = वहाँ कामना के बन्धन भङ्ग होता रहता है। वहाँ अधरों को० = वहाँ सदा आनन्द छाया रहता है, प्रेम छाया रहता है।

डोल सहसा० = इस संसार में प्राणों में संशय, प्रेम में मान और ज्ञान में मोह रहता है, पर वहाँ यह सब कुछ नहीं है।

वहाँ के० = वहाँ प्यार की निश्छलता व्यक्त करनेवाली चंचल आँखों के प्यार का ही बल है।

सुमित्रानन्दन पंत

(१) प्रार्थना

(कवि भगवान् से आनन्द और ज्योति को बरसने की प्रार्थना कर रहा है।)

उर्वर आँगन = उपजाऊ स्थल। अव्यय = कभी नष्ट न होने वाले। स्मिति स्वप्न = हल्का स्वप्न। मृत कण = मट्टी के कण, जड़। मृन्मरण = मृत्यु और मरनेवाले को। बरसो जग जीवन के घन = संसार के जीवन-स्वरूप बादल बरसो। संसृति के सावन = संसार को हरा भरा (प्रसन्न) करने के लिए।

(२) प्रथम रश्मि

(उषा के प्रथम किरण के आने के पूर्व ही उसका आभास पाकर स्वागत गान करने वाली विहंगिनी के प्रति चकित होकर कवि की जिज्ञासा से प्रेरित कुतूहल पूछ रहा है।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे रंग-बिरंगी विहग-बालिके ! तूने यह किस भाँति जाना कि सूर्य की पहली किरण आ रही है। तूने यह गाना किससे सीखा ? (तू बड़ा मधुर गाती है।) तू तो अपने अंगों को पंखों के नीचे समेटकर सुख से स्वप्न-नीड़-शयनगृह—अर्थात् घोंसले में सो रही थी। अभी तो रात ही थी, क्योंकि तेरे घोंसले के आस-पास जुगनू (रात्रि के अंतिम पहर में) चौकीदार की तरह घूमकर उँघ रहे थे। चंद्र-किरणों के द्वारा पृथ्वी पर उतरकर इच्छा-अनुसार रूपधारी नभचर नई कलियों के कोमल मुँह चूमकर उन्हें हँसना सिखा रहे थे, क्योंकि थोड़ी ही देर में उन्हें हँसना पड़ेगा। बिना तेल के तारा-रूप दीपक जल रहे थे। पेड़ों की पत्तियाँ साँस नहीं ले रहीं थी अर्थात् हवा से हिलती न थीं। पृथ्वी में स्वप्न घूम रहे थे। अंधकार ने अपना शामियाना फैलाया था। (उषःकाल से पहले खूब घना अंधकार छाया रहता है।) ऐसे ही समय में, जब कि पहली किरण के आने का कोई लक्षण न था, हे पेड़ पर बसनेवाली ! तू अचानक स्वागत का गान गाने लगी। तूने कैसे जाना कि किरन आने वाली है !

सृष्टि के अंधकारमय गर्भ-रूप रात्रि से निकलकर बहुत से दुष्ट भूत-प्रेत, जिनका शरीर छाया का बना होता है और जिनकी छाया नहीं पड़ती, अपने जादू-टोने चलाकर षड्यंत्र रच रहे थे। (मानो इन्हीं के भय से) रात्रि के परिश्रम से क्लांत शोभा-हीन जुन्हैया अपना मुँह छिपा रही थी (चंद्रमा अस्त हो रहा था)। (लोगों के सोए रहने के कारण उनकी) इंद्रियाँ मूर्छित (निर्जीव सी) पड़ी थी। सृष्टि शून्य सी मालूम पड़ रही थी मानो उसमें कोई है ही नहीं। केवल जीव-जन्तु साँस ले रहे थे, यदि जीवन का कोई चिह्न था तो बस इतना ही।

हे विहंगिनी ! तूझे दूर की सूझी, सबसे पहले तूने ही प्रभाती की तान छेड़ी, और, हे आकाश-विहारिणी ! इस प्रकार तूने ही शोभा, सुख और सुगंधि का संमेलन कराया। मानो अचानक आकार-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहित तम (परमात्मा का भी कोई आकार नहीं है) प्रकाश के प्रसार में साकार हो शीघ्र ही अनेक नाम और रूप धारण कर जगत् बन गया। पेड़ों के पत्ते हर्ष से रोमांचित होकर काँप से उठे। सोई हुई हवा ने धैर्य छोड़ दिया। फूलों के दल पर ओस की बूँदे हिलकर मोती के दानों के समान चमकने लगीं। उस समय ऐसा मालूम होता था मानों फूलों के ओठों के दलों पर हँसी झलक रही हो। सबकी पलकें खुलीं। सूर्य्य की सुनहली किरणों से सारी सृष्टि सुनहली हो गई। सुगन्धि फैलने लगी, भौंरे उड़ने लगे (डोलने में एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ जाने का भाव है) धड़कन, गति और नया जीवन इनको जगत् ने अपनाना सीखा अर्थात् अपनाया (सारी प्रकृति में जीवन के लक्षण दिखाई देने लगे)। स्वर्गिक = स्वर्ग का।

(३) कुसुम जीवन

(इस कविता में प्राकृतिक कुसुम-जीवन और अप्राकृतिक मानव-जीवन का तुलनात्मक वैषम्य प्रदर्शित किया गया है।)

पल = प्रत्येक क्षण। इन = अर्थात् मेरे। स्मिति = मुसकुराहट। बन की... = कली दुःख की गोद में पलकर भी सुखी रहना जानती है। जीवन के... = जीवन के सुख की उत्पत्ति दुःख से ही है। काँटे = दुःख। तपता = कष्टों में पड़ता है। तपता... = सोना तपाने से ही उज्ज्वल निकलता है, उसी प्रकार दुःख-रूपी आँच में तपकर ही जीवन उज्ज्वल होता है। दावा—दावाग्नि। अंकुर पाता = सूर्य की गर्मी से अंकुर फूटते हैं। गर्जन = मेघों की गर्जना की भाँति दुःखी जनों का भीषण करुण रव। नव-जीवन = (१) नया पानी, (२) नया जीवन।

शुभाशंसा

(विश्व-बन्धुत्व और समानाधिकार की समाजवादी भावना इसमें व्यक्त है।) शुभाशंसा = शुभ-कामना। विश्वमूल = सृष्टि के मूल में। उपादान = साधनों। हो मुक्त कर्म, वाणी, विचार = कर्म करने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में, विचार प्रकट करने में तथा विचार को वाणी द्वारा स्पष्टतः व्यक्त करने में, स्वतन्त्रता। श्रेय-प्रेय = श्रेयस्कर तथा प्रिय। मुक्त स्राव = नियन्त्रण रहित वितरण।

बापू

(बापू का आदर्श रूप अंकित है।) पूर्ण इकाई जीवन की = जीवन के पूर्ण वा चरम आदर्श। समासीन = लीन, स्थिर। निःस्व = निजत्व। भस्मकाम = काम को भस्म करनेवाला। पूर्णकाम = कामनाओं के पूर्ण होने से निष्काम नव-संस्कृत-मनुजत्व-पूत = नयी संस्कृति की मानवता जहाँ पूर्णता को पहुँची हो। अछूत = छूत रहित, गांधीजी। विकृति भूत = विकृत हो गया है। मनोज = मन से उत्पन्न, मनःकल्पित। जड़ता हिंसा स्पर्धा = इनके विरोधी भाव चेतना, अहिंसा, नम्र ओज हैं। यमुना = एक नदी विशेष, यहाँ व्यंग्यार्थ प्रयुक्त हुआ है। नत-पद-प्रणत शान्त = झुकी हुई या विनम्र, स्थिर और अचंचल।

महादेवी वर्मा

सपने-सपने में सत्य पला

(इन पंक्तियों में कवि ने बताया है कि संसार के भीतर बहनेवाली एकता के रहने पर भी बाह्यरूप और धर्म, सबके भिन्न रहते हैं, दीप में जो प्रकाश बना है, फूल में वही सौरभ-मकरंद। फिर भी दोनों में एक ही मूलतत्त्व की बाह्य अभिव्यक्ति स्वभाव-धर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न है।)

जिसने = जिस नियन्ता या प्रकृति ने। मकरंद = फूल का रस। सौरभ = सुगंधि। वह = पर्वत। निर्झर = झरनों द्वारा अ ने हृदय की आकुलता व्यक्त करता हुआ। उर्मिल = तरंगों से व्याप्त। यह = हीरक। क्षुरधारा = छुरी की धारा (डाइमंड कट बनाने वाली छुरी की)। अंगारों का मधुरस पी = अग्नि की मल-दाहिनी ज्वाला तप कर = निर्मल खरा सोना होकर। केशर = किरणों० = केशर के किरण के समान केसरिया रंग का खरा सोना। (रहस्यात्मक संकेत।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रश्मि

(प्रभात की रश्मियाँ मानों 'चतुर चितेरा' के अरुण बान हैं जिनके प्रहार द्वारा संसार को वह अज्ञात कलाकार नया रूप, नयी छवि, नयी चेतना देता रहता है। समस्त प्रकृति इस मादक वेला में आनंदमत्त हो उठी है।)

मधु के निर्झर से =मधु (सुख और मोद) के झरने के समान। इन० =इन सुनहली किरनों में जागकर रात्रि का अंधकार रूपी समुद्र हिलोरा लेता है और उस हिलोर में पक्षियों के कलरव उसी प्रकार भर उठते हैं जैसे तरंगों में बुद्बुद्। बनती प्रवाल० =क्षितिज पर दिखाई पड़नेवाली जो रेखा अंधकार के कारण मलिन और म्लान दिखाई पड़ती थी, वह अरुण हो उठी, मानों प्रवाल (मूंगा) का तट हो, तीर हो। बादल इन्द्रधनुष से रंगबिरंगे हो उठे। पत्तियों पर पड़ी ओस की बूँदें नाच रही हैं।

धो स्वर्ण० =सुनहले प्रभात में अपने अंधकार से काले शरीर को धोकर। अलि =भौंरे। समीर-परियाँ =सुगंधित मलयानिलरूपी परियाँ। मर्मर० =पल्लव भी मानों मर्मर ध्वनि में गा रहे हैं। फैला० =निद्रारूपी सुन्दरी परी स्वप्नरूपी पंखों को फैलाकर (मानों स्वप्नों के समाप्त होने पर निद्रा जाने कहाँ चली गई)।

परिचय क्या !

(इस गीत में रहस्यभावना की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हुई। प्रियतम जब रोम-रोम में बस गया है, जब संसार प्रियमय हो गया है, तब प्रेयसी और प्रियतम का भेद भी विलुप्त होता जा रहा है, दोनों में भेदभाव बढ़ता जा रहा है।)

तारक =आँखों की पुतली। लघु उर० =हृदय में पुलकानुभूति होती है। (समस्त संसार प्रियमय हो रहा है।) सहास =हास्ययुक्त। तेरा अधर-विचुम्बित० =जब प्याला प्रिय के ओठों से चूमा हुआ है, मदिरा मुस्कुराहट से मिश्रित है। प्रियमानस ही मदिरालय है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रियतम ही मधुबाला है तब 'वह विषमय या अमृतमय पेय दे रहा है,—इसे पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। (मैं तुम्हारा ही अंग, अंश हो गया हूँ)

बसन्त-रजनी

(इस कविता में बसंत-रजनी को सुन्दरी मानवी के रूप में चित्रित करते हुए कवयित्री ने उसके अंग-प्रत्यंग के मानव-सौंदर्य का आलंकारिक वर्णन किया है। इसमें मानवीकरण की सुन्दर अभिव्यक्ति है।)

तारकमय० = तारों से भरा आकाश मानों सुन्दर केशपाश है, फूलगुँथी चोटी है। चंद्र मानो शीशफूल (आभूषण, शीश का फूल) है। अपनी चितवन से ओस-कनरूपी मुक्ताफल पृथ्वीपर बिछा दे। मर्मर = पत्तों का शब्द। किंकिणि = घुँघुरू। तरल रजत की धार = रुपहली चाँदनी। दुकूल = साड़ी, वस्त्र।

मैं

(रहस्य भावना प्रियतम के प्रति मुखर हो उठी है। साधक प्रियमय हो उठा है। वह प्रिय की बीणा भी है, बीणा में झंकृत रागिनी भी है, नाश भी है, विकास-क्रम भी है।)

नींद थी० = मेरी ही नींद कण-कण में निस्पंदता थी और मेरा ही जागरण जगत् के प्रथम स्पंदन में प्रकट हुआ, सृष्टि के प्रारंभ में आविर्भूत हुआ। कूल = किनारा। कूलहीन = असीम। हिमजल = ओंस की बूँदे। प्रस्तर = पत्थर, पहाड़; पत्थर से कठोर हृदय में।

पिक से

(कवयित्री कोयल से कह रही है कि वह धीरे-धीरे बोले। नहीं तो संसार जग जायगा, भौंरे, कलियाँ सब कलरव करने लगेंगी और तब वह रहस्यमय प्रियतम, जो रात के नीरव स्वप्न सी मूर्छना में आता है, लौट जायगा।)

जाग = जोर से बोलने पर जगकर। अम्र० = आम में बौर, मंजरियाँ निकलने लगेंगी, बसन्त के लक्षण प्रकट होने लगेंगे। समीरण = वायु, बासन्ती बयार। 'आता कौन'० = नीड़ों से निकलते हुए पक्षियों का कूजन मानो पूछेगा—"कौन आ रहा है?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निमिष =पलकों के गिरने की आवाज। घड़ियाँ अनमोल = प्रिय के आगमन की बेला होने से। मेरे श्रावण० = पलकों में छिपे कान उसकी पदध्वनि सुनने की प्रतीक्षा में हैं।

दिनकर

महाभारत की ज्वाला

(यह अंश 'कुरुक्षेत्र' से लिया गया है, जिसमें बाणशय्या पर सोए भीष्म ने उन कारणों का, भस्मावगुंठित अंगारे के समान हृदय में धीरे-धीरे सुलगती द्वेषाग्नि का वर्णन किया है जो अन्त में भीषण संहारकारी महाभारत युद्ध के रूप में प्रकट हुई।)

यज्ञान्त काल का० = युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अन्त में की हुई भविष्यवाणी। महासंगर = महायुद्ध। कुंड से = यज्ञकुंड से, (सर्वजयी राजसूय यज्ञ का परिणाम ईर्ष्याग्नि थी, क्योंकि वहाँ कृष्ण की अग्रपूजा हुई थी।) अहंमय = घोर अहंकारी। रागदीप्त = आसक्ति से उद्धत। इन्द्र प्रस्थ० = जुए के खेल में।

बिँधा चित्रखग = जिस दिन चित्र-खग को बेधकर अर्जुन की बाण-विद्या श्रेष्ठ बनी थी, उसी दिन दुर्योधन के हृदय में ईर्ष्या की आग जल उठी थी।

भरी सभा में = कौरव-सभा में द्रौपदी का चीरहरण इसी ईर्ष्याग्नि का परिणाम था। कर्षित = खींचे जाते हुए। तुम हारे० = संस्कृति, समाज और भारतीयता का अपमान देखकर भी हम सबका चुप रहना हमारा पराजय था। लज्जावसन = लाज ढाँकने का कपड़ा। राजवधूटी = राजवधू, द्रौपदी। शाणित = सान चढ़े हुए। असि = तलवार।

फूलों के पूर्वजन्म

(कवि ने फूलों के पूर्वजन्म के कल्पना-समुद्भूत कारणों की उद्भावना की है।)

पृथुल = विशाल। शूल = काँटा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu